संयुक्त-प्रान्त, मध्य प्रदेश और, बम्बई प्रान्तों के शिक्षा विभागों-द्वारा स्वीकृत

शालोपयोगी भारतवर्ष

अथवा

हिन्दुस्तान का संक्षिप्त इतिहास

प्रकाशक—
साहित्य भवन लिमिटेड
प्रयाग

मुद्रक—
के० पी० दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबा

FOREWORD

(By G S Sardesai B A, Author of Musalmani Marathi and British Riyasats)

Man is as he has made himself man will be as he will made himself This is a simple and self evident proposition which explains the working of history through ages and supplies the basis of all education During my onerous but pleasant duties as a tutor to the sons of *H H* the Maharajah of Baroda, I was called upon to teach the subject of Indian History, and realising the need of a suitable text book on the subject, for the use of primary and secondary schools, leading up to the matriculation standard, I produced with that object, nearly thirty years ago, a work in Marathi, which has, as time went on, run into fifteen editions each embodying the results of my reading, travel and experience The book has now been largely used by students in the Bombay Presidency and has been spoken of, by experts and educationists, in such commendable terms, that I am now strongly persuaded to bring out its Hindi and Urdu versions, in the hope

that if it has any merits, they may be equally shared by the large number of Hindi and Urdu speaking students, in Central and Northern India

While I believe I have spared no pains in making this text-book, as up to date and comprehensive in its character, as its size and price would permit, I must put down a word of warning to all students and teachers, as a piece of my personal experience not to depend entirely upon any text-book as such, if they wish to obtain a real insight into the subject No single text-book can meet all the needs of school going students In History, as in other subjects of educative value, it is the effort of the student that counts, and not the actual output of information, compressed in a single volume, of limited scope A text book has, therefore, merely to be used as a useful guide, suggestive of the various channels of thought, and research, into which the students' efforts could be profitably directed and in this sense, I trust, my labours in the present production may prove of some help and guidance in this vital subject, which of all others possesses a nation building importance

Time and space, which are the soul of *history*, will be found sufficiently marked throughout the

treatment and the arrangement of the subject *The Source Method also by its means can be* followed as much as possible, with the help of the illustrations and maps, supplemented by suitable questions from the teacher, so as to create interest for the student The geographical peculiarities of India, explained in the introductory lesson and the chronological chart of the world's celebrities should be clearly noted and supplied by the teacher, *so as to lead the student ultimately to view* the world's history as a comprehensive whole

The book *being originally meant for Marathi* students only, naturally contained such feature as would appeal to their environment, in the peninsular part of India In this Hindi edition, however, I have tried, as far as I could to bring in the special features of the North Indian History, through the various stages Indeed, in the present atmosphere of the constitutional reforms what the *student needs to realise most, is the prominent* idea of a united India of the future, in which all the harmful provincialisms will have to be specially elemimated *Let us hope this* subject of national history will be helpful in the achievement of this much desired unity of India

सर देसाई रचित

शालोपयोगी भारतवर्ष

अर्थात्

भारत का संक्षिप्त इतिहास

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग—प्राचीन भारत

पहला अध्याय

प्राचीन काल

दूसरा अध्याय

बौद्ध काल—ई० स० पू० ६००-३२३

तीसरा अध्याय

हिन्दू-साम्राज्य—काल ई० स० पू० ३२२—ई० स० ५१०

चतुर्थ अध्याय

माडलिक राज्यों का प्रसार—ई० स० ६०० ११९३

दूसरा भाग—मुस्लिम शासन-काल

पहला अध्याय

पठानों का शासन—सन् ९९९-१५२५

दूसरा अध्याय

मुगल वंश

तृतीय अध्याय

पराक्रमी अकबर

चतुर्थ अध्याय

जहाँगीर और शाहजहाँ

पाँचवाँ अध्याय

औरंगजेब

छठाँ अध्याय

मुगल वंश का ह्रास काल

सातवाँ अध्याय

मुगलशाही का अंत

तीसरा भाग—महाराष्ट्र-शासन-काल

पहला अध्याय

स्वराज्य स्थापन की शक्ति

दूसरा अध्याय

शिवाजी का पूर्व चरित्र

तीसरा अध्याय

राज्य स्थापन

चौथा अध्याय

शिवाजी की योग्यता और राज्यव्यवस्था

पाँचवा अध्याय

छत्रपति संभाजी

छठाँ अध्याय

छत्रपति राजाराम व द्वितीय शिवाजी

सातवाँ अध्याय

छत्रपति शाहू, पेशवा बालाजी विश्वनाथ

आठवाँ अध्याय

छत्रपति शाहू, पेशवा बाजीराव व नाना साहब

नवाँ अध्याय

छत्रपति रामराजा पेशवा नाना साहब

दसवाँ अध्याय

छत्रपति रामराजा, पेशवा माधोराव

ग्यारहवाँ अध्याय

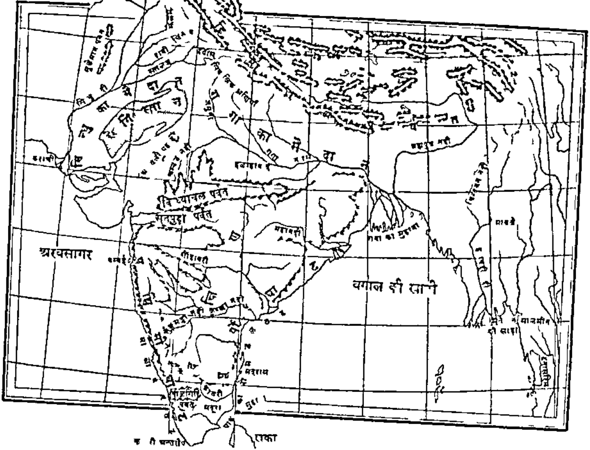
नारायणराव और सवाई माधवराव

बारहवाँ अध्याय

छत्रपति द्वितीय शाहू, पेशवा द्वितीय बाजीराव

तेरहवाँ अध्याय

महाराष्ट्र शक्ति का अंत



भारतवर्ष (प्राकृतिक विभाग)

शालोपयोगी भारतवर्ष

अर्थात्

भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास

१—भौगोलिक स्थिति

कोई भी देश क्यों न हो, उस देश की भागोलिक स्थिति का असर उस देश के इतिहास पर जरूर पड़ता है। इसलिए बिना भारत का भूगोल भली भाँति समझे यहाँ के इतिहास की घटनायें ठीक तरह समझ में नहीं आ सकतीं। यह भारत का भूगोल उस विषय की पुस्तक से अलग समझना चाहिए। यहाँ इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली केवल आवश्यक भौगोलिक बातें ही दिखाई जायँगी।

१—भारत एक बहुत लम्बा-चौड़ा देश है। यद्यपि यह एशिया का ही एक खंड है, तो भी एशिया के अन्य खंडों से, समुद्र और पर्वतों के बीच में आजाने से, यह बिलकुल अलग है, अर्थात् उन देशों का आदमी भारत में नहीं आ सकता। केवल पश्चिमोत्तर-सीमा में बाहर से आने के लिए कुछ इने गिने दुर्गम पहाड़ी मार्ग हैं।

२—समुद्र की यात्रा आज-कल जैसी सरल न थी। परन्तु इधर दो-चार सौ वर्षों से भारत के जल मार्ग भी खुल गये हैं।

३—भारत के समुद्री किनारों पर अनेक बन्दरगाह हैं। ये भारत के प्रवेश द्वार हैं। ऐसे बन्दरगाह पश्चिम-तट पर अनेक हैं, लेकिन पूर्वी तट पर केवल इने गिने ही हैं और वे भी पश्चिमी बन्दरगाहों के समान अच्छे नहीं हैं।

४—व्यापार की सुविधा के लिए पूर्व काल में बड़े बड़े नगर केवल बड़ी बड़ी नदियों के किनारे बसाये जाते थे। लेकिन योरपीयों के भारत में आने से बड़े बड़े जहाजों के सुभीते के लिए कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कराँची इत्यादि नगर व्यापार की बड़ी से बड़ी मंडी बन रहे हैं। इसीलिए ये बड़ी बड़ी रेलवे लाइनों के केन्द्र बनाये गये हैं।

५—खंभात की खाड़ी से लेकर महानदी के मुहाने तक जो जंगल पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है उसके बीच में विन्ध्याचल पहाड़ की श्रेणी है। इस श्रेणी ने भारत को उत्तर और दक्षिण—इन दो भागों में बाँट दिया है। भारत के ये दो विभाग बहुत प्राचीन काल से माने जाते हैं। प्राचीन काल में यह जंगल इतना सघन था कि इसको पार करना बड़ा कठिन काम था।

६—उत्तर-भारत एक लम्बा चौड़ा मैदान है। इस भाग में सिन्धु और गंगा दो बड़ी नदियाँ तथा इनकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं, जिससे यह देश बड़ा उपजाऊ बन गया है। इसी देश को पहले 'आर्यावर्त' कहते थे, यहीं 'आर्य-सभ्यता' की उन्नति हुई थी। इसलिए इन नदियों की रचना और देश पर पड़नेवाले प्रभाव की बात जाननी और समझनी ज़रूरी है।

७—भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत माला है और दक्षिण में

अगाध भारत महासागर है। इसलिए उत्तर-भारत में निश्चित रूप में वृष्टि होती है। उपजाऊ भूमि और सिंचाई के लिए जल सुलभ होने से इस देश का मुख्य धंधा खेती है। अन्य धंधे इसी के सहारे पनपते हैं।

८—अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि और उद्योगशील तथा बुद्धिमान लोगों के बसने से यह देश पूर्व-काल में ही अपार सम्पत्ति का घर बन चुका था। यहाँ अनेक विद्याओं तथा कलाओं की उन्नति हुई। इसीलिए यह सारे संसार में इतना प्रसिद्ध हो गया कि विदेशों की दृष्टि इसी पर गड़ गई।

९—भिन्न भिन्न प्रकार के जल-वायु, फल-फूल, वनस्पतियाँ, पक्षी एवं अन्य प्राणी, खनिज-सम्पत्ति इत्यादि सभी इस देश में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसलिए पश्चिमी तट के बंदरगाहों पर विदेशों के जहाज़ इन चीजों को लेने के लिए आते थे। इससे यहाँ का व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था। इस व्यापारिक उन्नति के कारण ही इसे लोग 'सुवर्ण-भूमि' कहते थे। श्रीकृष्ण की सोने की द्वारका नगरी और सुदामा को दी गई सोने की सुदामापुरी (पोरबंदर) की कथायें उस समय का वैभव आज भी हमें बताती हैं।

२—स्थल-निर्देश

आज-कल रेल-पथों के खुल जाने से यात्रा के प्राचीन कालीन मार्ग और लड़ाई तथा प्रबंध के स्थानों का महत्त्व कुछ भी नहीं रह गया। इसलिए पहले की घटनाओं को यथावत् समझने के लिए उस समय की स्थिति को ध्यान में रखना जरूरी है। हिमालय-पर्वत-श्रेणी के दक्षिण का भूभाग गंगा की ओर दक्षिण में ढालू

३—भारत के समुद्री किनारों पर अनेक बन्दरगाह हैं। ये भारत के प्रवेश द्वार हैं। ऐसे बन्दरगाह पश्चिम-तट पर अनेक हैं, लेकिन पूर्वी तट पर केवल इने गिने ही हैं और वे भी पश्चिमी बन्दरगाहों के समान अच्छे नहीं हैं।

४—व्यापार की सुविधा के लिए पूर्व काल में बड़े बड़े नगर केवल बड़ी बड़ी नदियों के किनारे बसाये जाते थे। लेकिन योरपीयों के भारत में आने से बड़े बड़े जहाज़ों के सुभाते के लिए कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कराँची इत्यादि नगर व्यापार की बड़ी से बड़ी मंडी बन रहे हैं। इसीलिए ये बड़ी बड़ी रेलवे लाइनों के केन्द्र बनाये गये हैं।

५—खंभात की खाड़ी से लेकर महानदी के मुहाने तक जो जंगल पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है उसके बीच में विन्ध्याचल पहाड़ की श्रेणी है। इस श्रेणी ने भारत को उत्तर और दक्षिण—इन दो भागों में बाँट दिया है। भारत के ये दो विभाग बहुत प्राचीन काल से माने जाते हैं। प्राचीन काल में यह जंगल इतना सघन था कि इसको पार करना बड़ा कठिन काम था।

६—उत्तर-भारत एक लम्बा चौड़ा मैदान है। इस भाग में सिन्धु और गंगा दो बड़ी नदियाँ तथा इनकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं, जिससे यह देश बड़ा उपजाऊ बन गया है। इसी देश को पहले 'आर्यावर्त' कहते थे, यहीं 'आर्य-सभ्यता' की उन्नति हुई थी। इसलिए इन नदियों की रचना और देश पर पड़नेवाले प्रभाव की बात जाननी और समझनी जरूरी है।

७—भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत माला है और दक्षिण में

अगाध भारत महासागर है। इसलिए उत्तर भारत में निश्चित रूप में वृष्टि होती है। उपजाऊ भूमि और सिंचाई के लिए जल सुलभ होने से इस देश का मुख्य धंधा खेती है। अन्य धंधे इसी के सहारे पनपते हैं।

८—अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि और उद्योगशील तथा बुद्धिमान लोगों के बसने से यह देश पूर्व काल में ही अपार सम्पत्ति का घर बन चुका था। यहाँ अनेक विद्याओं तथा कलाओं की उन्नति हुई। इसीलिए यह सारे संसार में इतना प्रसिद्ध हो गया कि विदेशों की दृष्टि इसी पर गड़ गई।

९—भिन्न भिन्न प्रकार के जल-वायु, फल-फूल, वनस्पतियाँ, पक्षी एवं अन्य प्राणी, खनिज-सम्पत्ति इत्यादि सभी इस देश में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसलिए पश्चिमी तट के बंदरगाहों पर विदेशों के जहाज इन चीज़ों को लेने के लिए आते थे। इससे यहाँ का व्यापार बहुत चढ़ा-बढ़ा था। इस व्यापारिक उन्नति के कारण ही इसे लोग 'सुवर्ण-भूमि' कहते थे। श्रीकृष्ण की सोने की द्वारका नगरी और सुदामा को दी गई सोने की सुदामापुरी (पोर बंदर) की कथायें उस समय का वैभव आज भी हमें बताती हैं।

२—स्थल-निर्देश

आज-कल रेल-पथों के खुल जाने से यात्रा के प्राचीन कालीन मार्ग और लड़ाई तथा प्रबंध के स्थानों का महत्व कुछ भी नहीं रह गया। इसलिए पहले की घटनाओं को यथावत् समझने के लिए उस समय की स्थिति को ध्यान में रखना जरूरी है। हिमालय-पर्वत श्रेणी के दक्षिण का भूभाग गंगा की ओर दक्षिण में ढालू

होगया है। पंजाब में भूमि दक्षिण ओर कराँची तक ढालू होती चली गई है। इसीलिए पंजाब की सभी नदियाँ दक्षिण की ओर मुँह करके बहती हैं। लेकिन सतलज और यमुना के बीच का मैदान थोड़ा ऊँचा होगया है। इसलिए दिल्ली से पूर्व यमुना और गंगा पूर्व की ओर बहती हैं। और दक्षिण की ओर से मालवे के पठार से निकल कर चम्बल, बेतवा, केन यमुना मे और कर्मनाशा और सोन गंगा मे आकर मिलती हैं। अर्थात् मालवा का भूभाग ऊँचा होगया है और वह उत्तर की ओर ढालू है। सारांश यह कि गगा-यमुना का प्रवाह-मार्ग बहुत नीचा है। इसलिए पूर्व-काल में यह मार्ग यात्रा के लिए अधिक सुभीते का था। पहले इसी मार्ग पर बड़े बड़े क़िले और मोर्चे बने थे। यहाँ के कन्नौज, आगरा, कालिंजर, इलाहाबाद, जौनपुर, चुनारगढ़, रोहतासगढ़, बक्सर, मुङ्गेर इत्यादि अनेक स्थानों का उल्लेख मुसलमानी शासन-काल के तथा उसके बाद के इतिहास में बारबार हुआ है। भागलपुर के आगे गंगा-नदी राजमहल की पहाड़ियों से टकरा कर मणिहारी के पास मुड़ कर दक्षिण-वाहिनी हो जाती है। उस स्थान से उसका बंगाल का मार्ग शुरू होता है। इसी से पूर्व काल में जो सेनाएँ लड़ने के लिए वहाँ जाती थीं उन्हें इसी राह से होकर जाना पड़ता था।

३—पृथिवी का क्षेत्र-फल और जन-संख्या

(वर्ण और धर्म)

देश	क्षेत्रफल वर्ग मील	जन-संख्या	पृथिवी भर की वर्ण-संख्या	
ग्रेट ब्रिटेन व आयर्लैंड	१ ला० २१ ह०	४ क० ७० ला०	गौर (काकेशियन)	७७ करोड़
इतर ब्रिटिश राज्य	१ क० २५ ला०	३९ क० ८५ ला०	पीत (मंगोलियन)	५४ करोड़
ब्रिटिश साम्राज्य का योग	१ क० २७ ला०	४४ क० ५५ ला०	कृष्ण (इथिओपियन)	१७॥ करोड़
ब्रिटिश भारत	१० ला० ९३ ह०	२४,६९,९७,११२	ताम्र (अमरीकन)	२ करोड़ ७० ला०
भारतीय राज्य	७ ला० ९ ह०	७,१२,३९,०८९		५० करोड़ ७० ला०
कुल भारत	१८ ला० २ ह०	३१,८९,३६,९०१	कुल जोड़	

योरप	३७ लाख	३८ करोड़	पृथिवी भर के धर्म	संख्या
एशिया	१६८ लाख	८० करोड़	ईसाई	४७ करोड़
अफ्रीका	१२० लाख	२० करोड़	बौद्ध	४२ करोड़
अमरीका	१६५ लाख	१२ करोड़	हिन्दू	२१ करोड़
आस्ट्रेलिया	३० लाख		मुसलमान	२० करोड़
कुल पृथिवी	५२० लाख	१५० कोटि	यहूदी	८० लाख
पानी का भाग	१४५० लाख	?	अन्य	२० करोड़
पृथिवी	१९७० लाख		कुल योग	१५८ क०

४—भारत की जन-संख्या

(१) प्रान्तानुसार

(सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार)

प्रान्त	संख्या	देशी रजवाड़े	संख्या
बङ्गाल	४,६६,९५,५३६	हैदराबाद	१,२४,७१,७७०
संयुक्त प्रान्त	४,५३,७५,७८७	मैसूर	५९,७८,८९२
मद्रास-प्रान्त	४,२३,१८,९८५	ट्रावनकोर	४०,०६,०६२
बिहार और उड़ीसा	३,४०,०२,१८९	काश्मीर	३३,२०,५१८
पञ्जाब	२,०६,८५,०२४	ग्वालियर	३१,८६,०७५
बम्बई प्रान्त	१,९२,४८,२१९	बड़ोदा	२१,२६,५२२
ब्रह्मदेश	१,३२,१२,१९२	राजपूताना	९९,४४,३८४
अन्य सब	२,५३,५९,१८०	अन्य सब	३,०९,०४,८६६
कुल ब्रिटिश भारत	२४,६९,९७,११२	कुल देशी रजवाड़े	७,११,३९,०८९

कुल भारत ३१,८०, ३६,२०१—पुरुष १६,३९,९१,१४१, स्त्रियाँ १५,४९,४५,०६०

(२) भारत की धर्मानुसार जन-संख्या

(सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार)

हिन्दू*	२१,६७,३४,५८६	ईरानी (पारसी)	१,०१,७७८
सिख	३२,३८,८०३	मुसलमान	६,८७,३५,२३३

* अस्पृश्य जातियों की जन-संख्या अनुमान से ५ करोड़ है।

जैन	११,७८,५९६	ईसाई	४७,५४,०७०
बौद्ध	१,१५,७१,२६८	जङ्गली	९७,७४,६११
यहूदी	२१,७७८	इतर	१७,१८९
		कुल योग	३१,६१,२८,७२१

(३) भारत के नगरों की जन-संख्या

(सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार)

कलकत्ता	१३,२७,५४७	नागपुर	१,४५,१२२
बम्बई	११,७५,९१४	श्रीनगर	१,४१,७३५
मद्रास	५,२६,९११	मथुरा	१,३८,८९४
हैदराबाद (दक्षिण)	४,०४,१८७	बरेली	१,२९,४५९
रंगून	३,४१,९६२	मेरठ	१,२२,६०६
दिल्ली	३,०४,४२०	त्रिचनापली	१,२०,४२२
लाहोर	२,८१,७८१	जयपुर	१,२०,२०७
अहमदाबाद	२,७४,००७	पटना	१,१९,९७६
लखनऊ	२,४०,५६६	ढाका	१,१९,४५०
बंगलोर	२,३७,४९६	सूरत	१,१७,४३४
करांची	२,१६,८८३	अजमेर	१,१३,५१२
कानपुर	२,१६,४३६	जबलपुर	१,०८,७९३
पूना	२,१४,७९६	पेशावर	१,०४,४५२
बनारस	१,९८,४४७	रावलपिण्डी	१,०१,१४२
आगरा	१,८५,५३२	बड़ोदा	९४७१२
अमृतसर	१,६०,२१८	इन्दोर	९३,९५१
इलाहाबाद	१,५७,२२०	मैसूर	८३,९५१
मडाले	१,४८,९१७	ग्वालियर	८०,३८७

५—विद्यार्थियों के लिए काल-परिज्ञान

चाहे किसी भी देश का इतिहास हो, उसका कुछ न कुछ सम्बन्ध समस्त संसार के इतिहास से अवश्य रहता है। इसलिए प्राचीन काल की घटनाएँ किस प्रकार घटित हुईं और बाद को उनका किस तरह विभाग हुआ, यह समझने और उनका स्मरण रखने के लिए मुख्य मुख्य घटनाओं की समय-सूचक सूची की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नीचे दी हुई समय सूचक सूची के भारत के इतिहास के साथ साथ ध्यान में रक्खे जाने से संसार में होनेवाले भिन्न भिन्न स्थानों के समकालीन प्रसिद्ध व्यक्ति तथा घटनाएँ विद्यार्थी की समझ में आ जायँगी। इस पाठ के प्रारम्भ का कुछ अंश एच० जी० वेल्स की पुस्तक से लिया गया है। इसके अलावा बहुत सी बातों का काल-निर्णय अभी नहीं हुआ है।

ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व की घटनाएँ

३० हजार—वर्त्तमान संसार का पहला पूर्ण मनुष्य फ्रांस-स्पेन की भूमि में तैयार हुआ। इसके बाद का युग प्राचीन पाषाण युग कहलाता है। सभी मानव-जातियों की उत्पत्ति एक ही स्थान में नहीं हुई। जल-वायु के योग से और अन्य पोषक सुविधाओं के योग से पृथिवी के अनेक भागों में भी मानव जाति की उत्पत्ति हुई।

१० हजार—नवीन पाषाण-युग—खेती करने तथा जानवरों के पालने का प्रारम्भ, जोतना, पेरना, काटना, दलना, टोकरी इत्यादि बिनना, काठ के हल व चरखे, मढ़ी हुई

छोटी नावें काम में लाना, देवता के संतोष के लिए मनुष्य की बलि देना इत्यादि बातों का प्रारम्भ।

७ से ६ हजार—पश्चिमी एशिया और मिस्र में दीवारों से घिरे हुए नगरों का बसाना, विशेषत मेसोपोटामिया या ईराक में उनके कपड़े विनने का प्रारम्भ, मछली पकड़ने के लिए नावों का बनना।

५ से ४ हजार—दजला (Tigris) और फुरात (Euphrates) नामक नदियों के बीच के प्रदेश सुमेरिया तथा नील-नदी के तट पर मिस्र-देश में ज्यामिति विद्या की उत्पत्ति, अन्य विषयों में सुधार, आर्यों के वेद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का समय। ४२४१ मिस्र की वर्ष-गणना का आरम्भ।

४ से ३ हजार—मिस्र-देश म पिरामिड् का निर्माण। अयोध्यापति श्रीरामचन्द्र का समय। सुमेरिया में नहरों का बनना (सिन्धप्रान्त में मोहेंजोदारो और मुल्तान के पास हराप्पा नाम के दो प्राचीन नगरों का पुरातत्त्वविदों द्वारा हाल में पता लगा है, उनके खंडहरों से उनकी मूल-रचना ईसाई सन् से पूर्व तीन हजार वर्ष प्राचीन सुमेरियन के समकालीन अनुमान की गई है। इस सम्बन्ध में अभी मत बदलना सम्भव है) रेशमी वस्त्र का उपयोग चीन में होने लगा।

३१०१—युधिष्ठिर के सवत्सर का प्रारम्भ।

२७५०—सुमेरिया का पहला राजा सार्गन।

२५००—असीरियाई साम्राज्य की स्थापना। आर्यों की पूर्व बस्ती केस्पियन समुद्र के पास से पश्चिम की ओर योरप में डाइन नदी के तट तक थी। वहाँ से उनका आग्नेय

५—विद्यार्थियों के लिए काल-परिज्ञान

चाहे किसी भी देश का इतिहास हो, उसका कुछ न कुछ सम्बन्ध समस्त ससार के इतिहास से अवश्य रहता है। इसलिए प्राचीन काल की घटनाएँ किस प्रकार घटित हुई और बाद को उनका किस तरह विभाग हुआ, यह समझने और उनका स्मरण रखने के लिए मुख्य मुख्य घटनाओं की समय-सूचक सूची की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नीचे दी हुई समय सूचक सूची के भारत के इतिहास के साथ साथ ध्यान में रक्खे जाने से संसार में होनेवाले भिन्न भिन्न स्थानों के समकालीन प्रसिद्ध व्यक्ति तथा घटनाएँ विद्यार्थी की समझ मे आ जायँगी। इस पाठ के प्रारम्भ का कुछ अश एच० जी० वेल्स की पुस्तक से लिया गया है। इसके अलावा बहुत सी बातों का काल-निर्णय अभी नहीं हुआ है।

ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व की घटनाएँ

३० हजार—वर्त्तमान ससार का पहला पूर्ण मनुष्य फ्रास-स्पेन की भूमि में तैयार हुआ। इसके बाद का युग प्राचीन पाषाण युग कहलाता है। सभी मानव-जातियों की उत्पत्ति एक ही स्थान में नहीं हुई। जल वायु के योग से और अन्य पोषक सुविधाओ के योग से पृथिवी के अनेक भागों में भी मानव जाति की उत्पत्ति हुई।

१० हजार—नवीन पाषाण-युग—खेती करने तथा जानवरों के पालने का प्रारम्भ, जोतना, पेरना, काटना, दलना, टोकरी इत्यादि बिनना, काठ के हल व चरखे, मढी हुई

छोटी नावें काम में लाना, देवता के संतोष के लिए मनुष्य की बलि देना इत्यादि बातों का प्रारम्भ।

७ से ६ हजार—पश्चिमी एशिया और मिस्र में दीवारों से घिरे हुए नगरों का बसाना, विशेषत मेसोपोटामिया या ईराक में उनके कपड़े बिनने का प्रारम्भ, मछली पकड़ने के लिए नावों का बनना।

५ से ४ हजार—दजला (Tigris) और फुरात (Euphrates) नामक नदियों के बीच के प्रदेश सुमेरिया तथा नील-नदी के तट पर मिस्र-देश में ज्यामिति विद्या की उत्पत्ति, अन्य विषयों में सुधार, आर्या के वेद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का समय। ४२४१ मिस्र की वर्ष-गणना का आरम्भ।

४ से ३ हजार—मिस्र-देश में पिरामिड का निर्माण। अयोध्यापति श्रीरामचन्द्र का समय। सुमेरिया में नहरों का बनना (सिन्धप्रान्त में मोहेंजोदारो और मुलतान के पास हरप्पा नाम के दो प्राचीन नगरों का पुरातत्त्वविदों द्वारा हाल में पता लगा है, उनके खंडहरों से उनकी मूल-रचना ईसाई सन् से पूर्व तीन हजार वर्ष प्राचीन सुमेरियन के समकालीन अनुमान की गई है। इस सम्बन्ध मे अभी मत बदलना सम्भव है) रेशमी वस्त्र का उपयोग चीन म होने लगा।

३१०१—युधिष्ठिर के संवत्सर का प्रारम्भ।

२७५०—सुमेरिया का पहला राजा सार्गन।

२५००—असीरियाई साम्राज्य की स्थापना। आर्यों की पूर्व बस्ती कैस्पियन समुद्र के पास से पश्चिम की ओर योरप में डाइन नदी के तट तक थी। वहाँ से उनका आग्नेय

कोने से उत्तर-अफगानिस्तान के मार्ग द्वारा भारत में प्रवश। दक्षिण में ईरान और पश्चिम में बाल्कन प्राय द्वीप से होकर इटली में आर्यों को तीन शाखाओं का प्रयाण। भारतीय युद्ध ३०००—२५००० के बीच में। वराहमिहिर इस युद्ध का समय २४४८ वाँ वर्ष बताता है।

२०००—१५००—आर्यों की उन्नति। गेहूँ, लोहा, और घोड़ों का व्यवहार।

१६००—मिस्र मे फेरोह राजा का ऐश्वर्य उसका असीरिया वालों के साथ युद्ध।

१५००—१०००—असीरिया और बेबीलोनिया में सुधार की बाढ, यहूदी धर्म संस्थापक मोज़ेज़ (मूसा) का समय, कपड़ा, लोहा तथा काँच का उपयोग होना और लोगों का रहन सहन लगभग आज-कल जैसा समृद्धिपूर्ण होना। भारत में आर्यों के ऋग्वेद की ऋचाओं का सग्रह होना और उनका जीवन सुसम्पन्न बनना, उपनिषदों की रचना। पेलेस्टाइन-देश में यहूदी लोगों के पूर्वज अब्राहम के वंश का उदय।

१०००—९६०—हिब्रू राजे डेविड और सालोमन का जेरुसलम में शासन।

१०००—८००—ग्रीक जाति का उत्तर में विस्तार, भारत में आर्यों का आग्नेय में विस्तार, मिस्र का उद्धार और वहाँ की लिपि का विकास।

८००—सिसली के सामने उत्तर-अफ्रीका के तट पर कार्थेज नगर की उन्नति। इसकी जन-सख्या १० लाख थी। पारसी ज़रथोस्ती धर्म के संस्थापक जरथोस्त का समय।

७५३—रोम-नगर की स्थापना।

७४५ से ६७०—असीरिया की उन्नति और उसका मिस्र पर अधिकार।

८००—७००—व्यास के भारत ग्रन्थ की पहली रचना। पाणिनि का जीवन काल। होमर द्वारा इलियट व ओडैसी की रचना।

६०६—बैबीलोन के खाल्डिया लोगों ने असीरिया जीता।

६०६—५३९—खाल्डिया की उन्नति, इष्का-लेख के ग्रन्थ।

६००—चीनी धर्म संस्थापक लाओटज (Laotse)।

६००—५००—ग्रीक-सभ्यता और तत्त्व-ज्ञान का उदय काल।

५५१—४७८—चीन के धर्म शास्त्रकार और प्रधान नेता कन्फ्यूशस का जीवन-काल।

५४७—४६७—जैनाचार्य महावीर वर्धमान।

५८२—५५८—राजा बिम्बसार, ५३८ में ईरानी शाह साइरस ने खाडिला जीता।

५६७—४८७—गौतम बुद्ध

५०० ४००—ईरान के बादशाह डेरियस का विस्तृत साम्राज्य, उसने मिस्र और सीरिया जीता। घोड़े और रथों का व्यवहार एवं साम्राज्य में मार्गों का तैयार होना। ऊँटों और गधों का पहले का उपयोग बन्द, सिक्कों का प्रचार और व्यापार की वृद्धि। उसकी राजधानी सूज़ा (बगदाद के समीप पूर्व की ओर), सांख्यकार कपिल इस शताब्दी में हुए।

४९०—माराथान की लड़ाई में ग्रीकों द्वारा डेरियस की हार।

४८९—डेरियस के पुत्र जर्जीस का ग्रीकों के द्वारा प्लाटिया में पराभव।

४६६—४२८—पेरिक्लीज का शासन, एस्किलीस, साफोक्लीज युरिपिडस के ग्रन्थों की रचना।

४३९—हिरोडोटस के पहले इतिहास की रचना। वाल्मीकि रामायण की रचना।

४२३-३८७—प्लेटो और अरिस्टाटल, व्याकरणकार वररुचि और कात्यायन।

८००—वायवल का प्राचीन भाग तैयार हुआ, होका-यन्त्र का उपयोग चीन-देश में प्रारम्भ हुआ। वैशेपिककार कणाद का जीवन काल।

८००-३००—३३६-३२३—बादशाह सिकन्दर।

३१२ २९०—सेल्यूकस (वैक्ट्रिया का राजा)

३९९—साक्रेटीज का वध।

३२० २९८—चन्द्रगुप्त मौर्य और आर्य चाणक्य तथा उसका अर्थ-शास्त्र, जैमिनी की पूर्वमीमासा, वादरायण व्यास।

२७२ २२६—चक्रवर्त्ती अशोक।

२१४—चीन की दीवार और अजटा की गुफा का निर्माण।

१५०—महाभाष्यकार पतजलि और मनुस्मृति।

१४६—कार्थेज का विध्वस।

१००—चीनी इतिहास का सुमाचियेन।

५६—विक्रम-सवत् का आरम्भ, जूलियस सीजर ने इंगलैंड जीता।

४८—ज्यूलियस सीजर का वध।

२७-१४—आगस्टस सीज़र।

ईसवी सन् के प्रारम्भ होने के वाद की घटनायें

१—क्राइस्ट-वर्ष-गणना का आरम्भ, क्राइस्टोत्तर काल

१—१००—पुरुषपुर अर्थात् पेशावर के राजा कनिष्क का शासन काल, उनका राजवैद्य चरक, नैयायिक गौतम, सेनापति पेथिस्येला का इङ्गलैंड जीत कर दीवार बनाना, ग्रीस के ज्यामितिकार यूक्लिड का समय।

७८—शालिवाहन शक का प्रारम्भ।

१०० २००—बुद्धचरित्रकार अश्वघोष।

११७—रोमन साम्राज्य की उन्नति की चरमावस्था, बादशाह ट्रेजन की मृत्यु, हेड्रियन का राज्यारोहण।

१३०—ज्योतिषी टॉलेमी का जीवन-काल।

२००—विष्णु-स्मृति, कवि भास, सुश्रुत।

३५०—याज्ञवल्क्य, मुद्राराक्षस के लेखक विशाखदत्त का जीवन काल।

१६१-१८०—मार्कस आरेलियस।

७३ २२५—पैठण का शालिवाहन-वंश, भाजें, कार्ले, नासिक, कान्हेरी इत्यादि गुफाओं का बनना।

३१२ ३३७—सम्राट् कान्स्टेंटाइन दि ग्रेट की ईसाई धर्म में दीक्षा।

३००-४००—कवि कालिदास का जीवन काल, बुद्ध-धर्म का चीन में प्रवेश, वाग्भट।

३२० ५१०—गुप्तवंश, मगध के पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, (३७५ ४१३) विद्या कला का परमोत्कर्ष, अजंटा, सारनाथ, देवगढ इत्यादि में गुफाओं का बनना,

३५०—वेरूल की गुफा।

३५०—बीजगणित का यूरोप में व्यवहार, ३९९ ४१४ फाहियान की भारत-यात्रा।

४७६—बीजगणित का प्रथम रचयिता आर्यभट्ट, ४९५ ५८७ वराहमिहिर।

किया, उसके लड़के राजेन्द्र चोल ने ब्रह्मदेश के पेगु प्रान्त को जीता।

९९९-१०३०—महमूद गजनवी, अल्बेरूनी।

१०२५—सोमनाथ का मन्दिर ध्वस हुआ।

१०१०-१०५३—धार का राजा भोज।

१०६६—नर्मांडी के विलियम ने इंग्लंड जीता।

११००—अनन्तवर्मा चोल ने जगन्नाथपुरी का मन्दिर बनाया।

११००-१२००—

१०७६-११२६—विक्रमादित्य चालुक्य और उसका प्रधान धर्मशास्त्रकार विज्ञानेश्वर।

११७५—नैषधकार श्रीहर्ष कवि।

११९९—मध्वाचार्य।

१११४ ११८४—भास्कराचार्य।

१११९—गीतगोविन्दकार जयदेव।

१११५-१२६२—ईसाइयों और मुसलमानो का धर्मयुद्ध।

११५०—रामानुज।

११५९ ११९३—पृथिवीराज चोहान।

११६०-११६७—बसवा का लिंगायत पथ।

१२०० १३००—

९००-१३००—देशी भाषाओं का उदय, सस्कृत का परमोत्कर्ष।

११७६-१२०६—मुहम्मद गोरी।

११७४—जैन पडित हेमचद्र सूरि की मृत्यु।

११७९-१२१७—गुजरात में भीमदेव का शासन काल।

११६२ १२२७—चगेजखाँ मुगल।

१२१०—कुतुब मीनार का निर्माण।

१२१५—किंग जान द्वारा लोगों को मेग्नाचार्टा मिलना।
१२१० १२४७—सिंघण यादव शिराऱ (शिंगनापुर का संस्थापक)।
१२७२—महानुभाव चक्रधर।
१२७१-१२९५—मार्को पोलो की यात्रा।
१२९६-१३९६—अलाउद्दीन खिलजी, रामदेवराव यादव, ज्ञानदेव, हेमाद्रि और हेमाडपत।
१३०० १४००—
१३२५-१३५९—मुहम्मद तुगलक।
१३३६—विजयनगर की स्थापना।
१३४७—बहमनी राज्य की स्थापना।
१३५०—नामदेव।
१३३५-१४०५—तैमूर लंग।
१३४० १३८७—माधवाचार्य और सायणाचार्य।
१४०० १५००—
१३८० १४२०—कबीर।
१४११—रामानंद की मृत्यु।
१३९४-१४६०—नौका-शास्त्रवेत्ता हेनरी के सुधार।
१४५५ १४८५—वार्स आफ दि रोजेज।
१४३१—जोन आफ आर्क की मृत्यु।
१४५२-१४९८—ईसाई धर्म सुधारक सावानरोला
१४२४ १४४७—विजयनगर का देवराय।
१४५३—सुल्तान मुहम्मद (द्वितीय) ने कुस्तुन्तुनियाँ जीती। बारूद का प्रयोग।
१४६८-७५—दुर्गादेवी की मृत्यु, दामाजीपत।
१४८५-१५३३—चैतन्य का जीवनकाल।
१४५०—मुद्रणकला की उन्नति। चीन में इस कला का उदय

ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व ही हो चुका था।
१४५८—गुरु चरित्रकार नृसिंह सरस्वती।
१४९२—कोलम्बस द्वारा अमरीका की खोज।
१४९८—वास्कोडिगामा का समुद्र मार्ग से भारत पहुँचना।
१४९०—बहमनी राज्य का बँटवारा।
हिन्दुस्तान में तोपों का प्रयोग।
१४७३-१५४३—कोपर्निकस।
१५००-१६००—
१४६० १५३८—गुरु नानक।
१४८३ १५३०—बादशाह बाबर।
१५१०—अल्बुकर्क का गोवा पर अधिकार।
१५०९ १५२९—विजयनगर का कृष्णदेव राय।
१५१९-१५२२—मगेलान की पहली पृथिवी-परिक्रमा।
१५२० १५६६—तुर्क-बादशाह सुलेमान की बगदाद से हंगेरी तक राज्य-सीमा।
१४८३ १५४६—लूथर।
१५४८-१५९९—एकनाथ।
१५५६-१६०५—अकबर।
१५५१-१६१५—दासोपंत।
१५५८-१६०२—रानी एलिजबेथ।
१५९५-१६००—चाँद बीबी का पराक्रम।
१५६४-१६४२—गेलीलियो की मृत्यु तथा न्यूटन का जन्म।
न्यूटन की मृत्यु १७२७।
१५३२ १६२३—तुलसीदास।
१५६५—तालिकोट की लड़ाई।
१४९८-१५८३—ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ।

१५६०—गोवा में इन्क्विजिशन की स्थापना।
१५८८—स्पेनिश आर्मेडा की हार।
१४८३ १५४६—मार्टिन लूथर।
१५६१-१६२६—लार्ड बेकन।
१५७१-१६३०—केप्लर।
१५९२ १६६६—शाहजहाँ।
१५९९-१६५८—क्रामवेल।
१६०० १७००—
१५६४ १६१६—शेक्सपियर।
१५७६ १६१५—दासोपंत।
१५९४ १६६४—शाह जी भोंसले।
१६०७-१५५२—तुकाराम।
१६०८ १६८२—रामदास।
१६०९ १६५३—मुक्तेश्वर।
१६२० १६७० —पण्डितराज जगन्नाथ।
१६१८ १७०७—औरंगजेब।
१६२५—भट्टो जी दीक्षित।
१६२७ १६८०—शिवाजी।
१६३१-१६४३—ताजमहल का निर्माण।
१६२५ १६४९—पहला चार्ल्स।
१६६६—मुम्बई द्वीप अँगरेजों को मिला।
१६७४—शिवाजी का राज्याभिषेक।
पाण्डिचेरी का बसाया जाना।
१६६० १७२८—गुरु गोविन्दसिंह।
१४४०—मद्रास की स्थापना।
१६८८—इग्लैण्ड में राज्य क्रान्ति।

इसके आगे दो शताब्दियों के वृत्तान्त विद्यार्थियों को इस पुस्तक में विस्तार से मिलेंगे, इसलिए उनकी समय-सूची उन्हें अपने प्रयत्न से बनानी चाहिए। जैसे सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु, शाहू का छुटकारा, इग्लैंड व स्काटलैंड का एकतन्त्रीकरण (Scottish Union), सन् १७४८ में निज़ाम व मुहम्मदशाह की मृत्यु, अगले वर्ष में शाहू को मृत्यु, अब्दाली का भारत में आना। इसी प्रणाली से सन् १७६१ में पानीपत का युद्ध, सन् १७७६ में अमरीका में स्वातन्त्र्य-स्थापन, सन् १७८२ में सालबाई व पैरिस की संधियाँ और अँगरेजों की अनेक विजयें, सन् १७८९ में फ़्रासीसी राज्य क्रान्ति। उसी प्रकार इधर के अनेक वैज्ञानिक शोध इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ध्यान में रखनी आवश्यक हैं।

"Whosoever commands the sea, commands the trade, commands the riches of the world, and consequently the world itself"

—Raleigh

प्रथम भाग

प्राचीन ऐतिहासिक काल

(ई० स० १०० तक)

पहला अध्याय

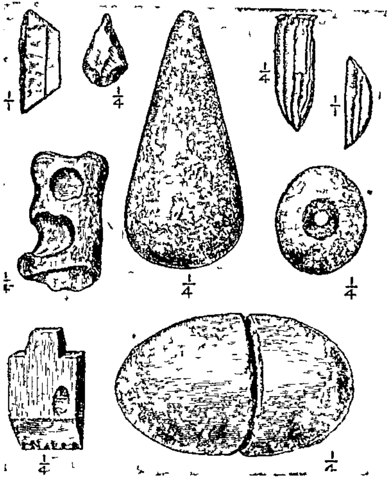
प्राचीन काल

ऐतिहासिक युग निर्णय—ऐतिहासिक खोज—प्राचीन वद, रामायण और महाभारत

(१) ऐतिहासिक विभाग—पृथिवी के अन्य समस्त राष्ट्रों की अपेक्षा भारतीय राष्ट्र अत्यन्त प्राचीन है। इसके बराबर का पुराना प्रौढ़ राष्ट्र केवल चीन का है। मिस्र (इजिप्त), वेबिलोनिया, असीरिया इत्यादि राष्ट्र भी प्राचीन काल के ही हैं। लेकिन इनमें से एक भी इस समय वर्त्तमान नहीं हैं। भारत या हिन्दुस्तान का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है—आर्यों का आवर्त्त अर्थात् निवास-भूमि। यहाँ जिस समय आर्य आकर बसे, उन्होंने इसे अपना देश माना। इसलिए इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। प्राचीन समय में इस देश में भरत नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। इस राजा के नाम से भी यह देश भारतवर्ष कहलाया। "वर्ष"

राष्ट्र-द्वारा किये गये कार्यों पर संसार के इतिहास का अच्छा प्रकाश पड़ेगा और उसके कार्यों का मूल्य भी संसार को विदित होगा।

(४) **प्राचीन आर्य**—भारत के निवासियों में अनेक जाति के लोगों का मिश्रण है। लेकिन उनमें *मुख्यत आर्य और अनार्य का भेद* है। इस देश मे आर्यों के प्रवेश के बहुत समय पहले अनार्यों का प्रवेश हो चुका था। इन अनार्यों में पहले जो लोग आये उनका कद कुछ ठिगना और रंग काला था। इसलिए वे "निग्रटो" अर्थात् निग्रो जाति के कहे जाते हैं। इस जाति के लोग अब भी करॉची के पश्चिम, स्याम, आराकान, तिनासिरिम इत्यादि में समुद्र-तट पर पाये जाते हैं। मछली पकड़ना ही उनका परम्परानुगत कार्य है। इसमें वे आज भी अत्यन्त निपुण हैं। इनके पूर्वज धातुओं का व्यवहार नहीं जानते थे। केवल पत्थर को पेना करके उससे वे लोग हथियार का काम लेते थे। इसी कारण इन लोगों को पाषाण युगीन का नाम मिला है। इस निग्रटो जाति के बाद भारत में ईशानकोण की घाटियों से एक दूसरी जाति आकर वसी। इस जाति के लोग यद्यपि पत्थर के हथियारों का ही उपयोग करते थे, तो भी वे अधिक प्रवल थे। गोफनों-द्वारा नोकदार पत्थर फेंक कर वे अपने शत्रु को मारते थे। उनके पास पत्थर के हथौड़े व मिट्टी के वर्तन थे। इसलिए उन लोगों का नाम "नव-पाषाण-युगीन" जाति पडा। इस जाति के वंशधर आज भी भिन्न भिन्न जङ्गलों में रहते हुए मिलते हैं। मध्य भारत के सथाल, कोल, मुण्डा, कुरूं और दक्षिण में मिलने वाले शवर इत्यादि की गिनती इन नवपाषाण युगीन जातियों में की जाती है। ये लोग पहले वडी वडी नदियों के किनारों पर



पाषाण-युग के हथियार

रहते थे। परन्तु अन्य नये लोग वहाँ आकर बस गये और इन्हें जङ्गलों में खदेड़ दिया। इन नये लोगो को ताँबे इत्यादि धातुओं का उपयोग ज्ञात था। इसलिए इन लोगों का नाम "ताम्रयुगीन" जाति पड़ा। इनका निवास प्राय गङ्गा और सिन्ध के किनारे किनारे रहा है। इसलिए इनका प्रवेश दक्षिण में नहीं हुआ।

इसके बाद ईसवी सन् के लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व वायव्य कोण के समीपवाली घाटियो मे तथा पश्चिम दिशा से द्रविड लोग भारत में आये। ये लोग पहले क बसे हुए लोगों की अपेक्षा बहुत कुछ बढे-चढे थे। पत्थर और धातुओ से वे अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुएँ बनाते थे। पत्थर के घर और किले बनाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन लोगों की अधिक उन्नति बिलोचिस्तान में हुई थी। द्रविड़ लोगों का मूल-स्थान पश्चिम एशिया या पूर्व-यूरोप था। यही द्रविड़ आजकल तमिल कहलाते हैं। इस जाति का विस्तार दक्षिण-भारत में है। तामिल, तेलगू, कनाड़ी या मलाबारी इत्यादि इनकी भाषायें हैं, जो अन्य आर्य-भाषाओं से सर्वथा भिन्न हैं।

कई शताब्दी पहले मध्य एशिया से पश्चिम के नीचे मैदानी भागों में कुछ बलवान् व बुद्धिमान् लोग घूमते फिरते आये और वहाँ रहनेवालों को जीत कर उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसाईं। कालांतर में इन लोगों में से कुछ लोग यूरोप की ओर बढ गये। इन लोगों से ही प्राचीन ग्रीक, रोमन और आज कल की प्रबुद्ध जर्मन और अङ्गरेज़ जातियों की उत्पत्ति हुई। इन लोगों की एक दूसरी शाखा भारत में आई। इन्हीं मध्य-एशिया के निवासियों की एक तीसरी शाखा प्राचीन ईरान-देश में जा पहुँची। इन सभी शाखाओं का विकास मध्य एशिया के आर्यों की बस्तियों

से हुआ है, अतएव इन विभिन्न देशों में बसनेवाले लोगों के आदि पुरुष आर्य कह कर पुकारे जाते हैं और उनकी विभिन्न भाषायें भी आर्य भाषा से निकली हैं।

प्रवास में इन आर्यों के पास गौवों के बड़े बड़े व्रज थे। बाद में ये लोग पंजाब में आकर बसे। वहाँ इनकी बड़ी जल्दी वृद्धि हुई। निस्सन्देह बात तो यह है कि इन आर्यों की अनेक टोलियाँ हिन्दूकुश पर्वत को पार कर खैबर-घाटी की राह से समय समय पर पंजाब में आईं। पंजाब में आने के बाद इन लोगों ने खेती का काम शुरू किया। उनको इस काम में अधिक सहारा पंजाब की पाँचों नदियों की उपजाऊ भूमि से मिला। इससे उनकी सब तरह उन्नति हुई। इस उत्कर्ष का ज्ञान हमको "आर्य" शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि आर्य का अर्थ ही श्रेष्ठ है। इन लोगों ने अपने सर्वसंग्राहक स्वभाव से और युद्धों की सहायता से, कुछ अपनी उच्च संस्कृति से, इस देश में पहले से बसे हुए द्रविड़ आदि लोगों पर अपना प्रभाव जमा लिया और उनसे ये लोग अभिन्न रूप में मिल गये।

ईरानियों का आवेस्ता और आर्यों के वेद एक दूसरे से इतने मिलते जुलते हैं और कितनी ही यूरोपीय भाषाओं से इनकी एकता इतनी मिलती है कि फिर इन विभिन्न जातियों के आदि-पुरुष के एक होने में संदेह नहीं रह जाता। आवेस्ता और वेदों में तो और भी अधिक घनिष्ट सादृश्य है।

यद्यपि आर्य और अनार्य का भेद शुरू से है, तथापि उनमें इन पिछले अढाई हज़ार वर्षों में और भी अनेक विदेशी लोगों का प्रवेश हुआ है।

दिग्विजयी सिकन्दर के आने से पहले ईरानी साम्राज्य पूर्व

में सिंधुनदी तक फैला था। उन्हीं के संसर्ग से यहाँ खरोष्ट्री-लिपि का प्रचार हुआ। प्राचीन लेखों में देवनागरी लिपि के साथ साथ इस खरोष्ट्री लिपि का सम्बन्ध भी अधिक मिलता है। इसीसे यह कहा जाता है कि पंजाब के लोगों में ईरानी मिश्रण अधिक हुआ है। इसके बाद सिकन्दर के साथ साथ इस देश में ग्रीकों का अर्थात् यवनों का प्रवेश हुआ। और बाद को आर्यों का इनके साथ रोटी बेटी का भी सम्बन्ध शुरू हुआ। ईसवी सन् के सौ दो सौ वर्ष पहले ही मध्य एशिया की ओर से शक, यूची, कुशान, गुर्जर इत्यादि लोगों की अनेक टोलियाँ इस देश में आईं। इनमें से अनेक लोगों ने इस देश में अपने राज्य भी स्थापित किये। विदेशी लोग हूण और सीथियन के नाम से साधारणतया प्रसिद्ध हैं। मुसलमानों का प्रवेश होने पर अरब, तुर्क, मुगल इत्यादि अन्य विदेशी लोग भी इस देश में आकर अपनी बस्तियाँ बना कर बस गये। इनका खुलासा हाल आगे दिया जायगा। सारांश यह कि भारत की वर्तमान प्रजा में विदेशी लोगों का किस प्रकार मिश्रण हुआ है, यह इससे समझ लेना चाहिए।

आर्यों के आने का विचार करने के विषय में एक दूसरी बात का भी ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि भारत की पश्चिमोत्तरी सीमा सिन्धुनदी नहीं थी। संस्कृति अथवा जाति निर्णय की दृष्टि से खैबर-घाटी के उस पार अफगानिस्तान का प्रदेश भी भारत में शामिल था, अर्थात् पहले भारत की सीमा अमू नदी (आक्सस) तक थी। पहले खैबर घाटी के पार के प्रदेश में गांधार इत्यादि आर्यों के अनेक राज्य थे। यहाँ के निवासियों की भाषा वेद-काल की आर्यभाषा से निकली हुई

'महाभारत' की गणना है। पुराण अठारह हैं। इतिहासों और पुराणों में आर्यों के राजवंशों का इतिहास दिया गया है और साथ ही प्रजा के लिए उपयुक्त राजनीति का भी वर्णन किया गया है। श्रुति, स्मृति और पुराण इत्यादि मुख्य ग्रन्थों पर हिन्दू-समाज की जड़ जमी है। स्मृति का आधार श्रुति है, और पुराणों का आधार श्रुति और स्मृति दोनों हैं। पुराणों की अपेक्षा स्मृति अधिक प्रामाणिक और श्रुति सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक मानी गई है। यह सब ग्रन्थ-रचना किस समय और किस क्रम से की गई, इसका निर्णय आज तक नहीं हो सका है। वेदों के सूक्तों में लड़ाइयों के और सृष्टि-सौन्दर्य के फुटकर वर्णन मिलते हैं। इनसे आर्यों के शारीरिक उत्साह और उनके प्रौढ़ विचारों का पता चलता है। उनका विशेष ध्यान खेती की ओर था। अत उन लोगों ने जङ्गलों को साफ कर गाँव और शहर बसाये और नहर व कुएँ इत्यादि बना कर खेती का कार्य बढाया। पशु और अन्न यही दो उनकी मुख्य सम्पत्ति थीं। गेहूँ और जौ की खेती ही उनकी मुख्य खेती थी। उनके पास घोड़े भी थे। नाव का उपयोग भी वे जानते थे। उनमें मांसाहार का निषेध नहीं था। जुआ खेलना इत्यादि उनमें कई बुराइयाँ भी थीं। बढ़ई और कपड़े बुनने का काम भी उन्हें अच्छी तरह विदित था। उनके पास लोहे या हिरन के सींग के हथियार थे। उनके बाण लोहे या हिरन की सींग के नोक के बने होते थे। जिरह-बख़्तर, टोप, बर्छी, और पैनी धार की तलवारों का वे उपयोग करते थे। वे सोने-चाँदी का मूल्य और उनका व्यवहार जानते थे। शिल्प-कला का भी उनमें प्रचार था। लेकिन पच्चीकारी, नक़्क़ाशी इत्यादि महीन कामों का ज्ञान उन्हें न था। कुटुम्ब के सभी

आदमी एक स्थान पर मिलजुल कर रहते थे। स्त्रियों को परदे में रखने की परिपाटी उस समय न थी। उनका घरों में विशेष सम्मान होता था। विवाह के योग्य होने पर कुमारी अपना वर प्राय स्वय चुन लेती थी। आर्य लोग स्वातन्त्र्य प्रिय थे। वे लोग सुख से अपना निर्वाह करते थे। आर्यों की धर्म-कल्पना अधिक लम्बी चौड़ी थी। अग्नि, सूर्य, मेघ इत्यादि शक्तियों का ससार पर अधिक प्रभाव पडता है, इसलिए ऐसे देवताओं की स्तुतियाँ वेद के सूक्तों में अधिक मिलती हैं। सृष्टि का पालन करने के लिए जिस जगन्नियन्ता ने इन शक्तियों की उत्पत्ति की है वह परमात्म तत्व इस सृष्टि में भरा हुआ है—यह भाव आर्यों के ग्रन्थों से व्यक्त होता है। इसका विवेचन उपनिषदों में किया गया है। इन आर्यों में पहले मूर्त्ति-पूजा का प्रचार न था।

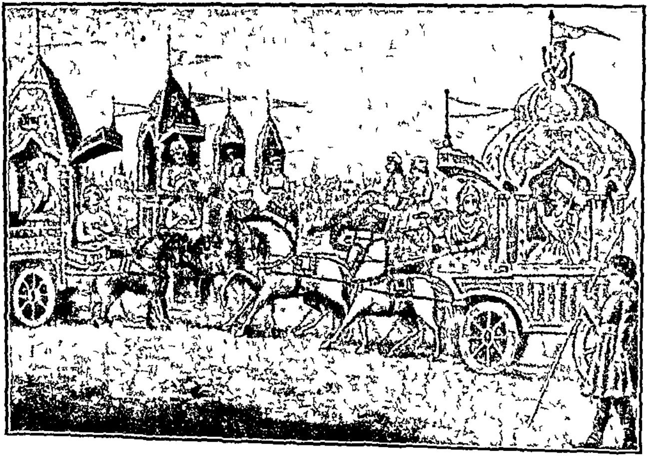
सामाजिक विषयों में आर्यों की वर्ण-व्यवस्था मुख्य थी। आर्यों का समाज चार वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्रवर्ण में बँटा था। और उनके काम भी अलग अलग निर्धारित कर दिये गये थे। बुद्धिमान ओर सुसस्कृत मण्डली को शिक्षा देने का कार्य दिया गया। ये लोग ब्राह्मण बने। युद्ध इत्यादि करने का काम जिन लोगों के हाथ में रहा वे लोग क्षत्रिय कहलाये। कालान्तर में खेती और व्यापार का काम एव लोकहित से सम्बन्ध रखनेवाले कार्य करनेवाले वश्य बन गये। उसी प्रकार यहाँ के जिन मूल-निवासियों को जीत कर आर्यों ने अपने यहाँ रख लिया उन्हें सब प्रकार की सेवा करने का अधिकार दिया गया। ये लोग दास या शूद्र कहलाये। आरम्भ में वर्ण-व्यवस्था कार्य के अनुसार रक्खी गई। लेकिन आजकल यह व्यवस्था जाति-बन्धन का कारण बन गई है। इनमें से पहले

तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। इनके जीवन के चार भाग किये गये हैं। इनमे से पहले भाग का नाम ब्रह्मचर्य, दूसरे का नाम गृहस्थ, तीसरे का नाम वानप्रस्थ और चौथे का नाम सन्यस्थ है। ये चारों भाग आश्रम कहलाते हैं। इसी सामाजिक और जीवन-सम्बन्धी व्यवस्था का नाम **वर्णाश्रम-व्यवस्था** है। प्राय सभी विद्वान् शूर, सत्यप्रिय और धर्मनिष्ठ होते थे। प्रत्येक कुटुम्ब में अग्नि की पूजा होती थी। बड़े बड़े राजा यज्ञ करते थे। ऐसे यज्ञों में दूर दूर के विद्वान् लोग एकत्र होते थे, और वे अनेक गूढ विषयों पर वाद-विवाद करते थे। ऐसे वाद विवादों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं। जनक नाम का एक राजा बड़ा तत्ववेत्ता था। उसकी राज-सभा में वेदान्त विषय की ही चर्चा हुआ करती थी। याज्ञवल्क्य ऋषि और जनक का संवाद उपनिषद् में दिया गया है। यह संवाद बड़ा ही आकर्षक, वक्तृत्व-कलापूर्ण और विस्तृत है। अनेक स्थानों में ऋषियों के आश्रम थे। वहाँ छोटे-बड़े विद्यार्थी जाकर विद्या पढते थे।

(६) **रामायण व महाभारत**—ये दोनों ग्रन्थ भारतीय राष्ट्र को सदैव स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे। इनकी कथाएँ अनेक स्त्री-पुरुषों को विदित हैं। रामायण में लगभग चौबीस हज़ार श्लोक हैं। महाभारत उसके चौगुने से भी अधिक बड़ा है। रामायण वाल्मीकि ऋषि का रचा है और महाभारत को कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने लिखा है। हिन्दू इन्हें बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते हैं। आर्यों के राजकीय परिवर्तन, उनके कलह और पराक्रम इत्यादि का वर्णन महाभारत में दिया गया है। उनके धार्मिक व्यवहार



पञ्चवटी म राम, सीता ओर लक्ष्मण



कुरुक्षेत्र

और उनके गृह-जीवन का वर्णन रामायण में किया गया है। इन दोनों ग्रन्थों से तत्कालीन आर्यों का सम्पूर्ण चरित्र हमें मालूम होता है। प्राचीन वैभव और सभ्यता का इतना हृदयग्राही, विस्तृत और सरस वर्णन अन्य किसी राष्ट्र के ग्रन्थों में नहीं मिल सकता। दोनों ही ग्रन्थ सरल और स्वाभाविक शैली में लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों का अनुवाद भारत की प्राय सभी भाषाओं में हो चुका है। भारतीय युद्ध ई० स० के पूर्व ३००० वर्ष से १५०० वर्ष के बीच में हुआ है।

वैदिक काल में आर्यों ने अपना उपनिवेश पञ्जाब में बसाया था। भारतीय काल में उन्होंने गङ्गा-यमुना के कठ प्रदेश में अपनी बस्ती बसाई और बाद को हिमालय की तराई से ले कर समुद्र तक वे बस गये। वे जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ अपना धर्म, राज्य, आचार विचार, रीति-नीति, कलाकौशल साथ लेते गये। इन सभी भागों में उन्होंने भिन्न भिन्न राज्य स्थापित किये। उन राज्यों के भिन्न भिन्न नाम रक्खे। गङ्गा के किनारे कुरु का राज्य था और हस्तिनापुर नगर था। गङ्गा के उस पार आजकल के अवध प्रान्त में कोशल राज्य था। इस राज्य की राजधानी का नाम अयोध्या था। आजकल की दिल्ली के पास पाण्डवों का राज्य था। उनकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। अयोध्या के पूर्व में विदेहों का राज्य था। इसकी राजधानी मिथिला थी। इससे दक्षिण मगध, वग, चेदि, विदर्भ इत्यादि अनेक राज्य थे। मथुरा, कान्यकुब्ज (कन्नौज), कौशाम्बी (प्रयाग के समीप), काशी, अवन्तिका इत्यादि महाभारत-काल में सुप्रसिद्ध थे। साराश यह कि प्राचीन आर्यों की यह उन्नति मोटे तौर से ई० स० के १००० वर्ष पूर्व तक होती रही। इसके बाद इनके

आचार-विचार, धर्म-कर्म और समाज निर्माण में बड़े-बड़े परिवर्तन होने लगे और भाषा, तत्त्वज्ञान व धर्माचार में नवीन विचार, नवीन शोध व उलट फेर होने लगे।

नोट—इस पाठ के साथ साथ बाल्मी को रामायण की मूल-कथा और महाभारत का संक्षिप्त वर्णन अध्यापक बतादें।

द्वितीय अध्याय

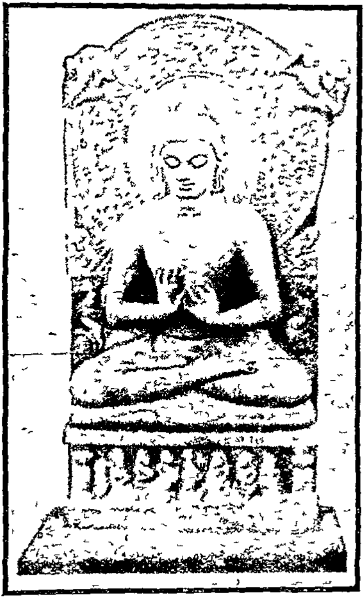
बौद्ध-काल

ई० स० पू० ६००-३२३

१—आर्यों की विद्योन्नति, २—जैनियों का उदय, महावीर वर्धमान ३—बौद्धों का उदय, गौतमबुद्ध, ४—सिकन्दर का भारत पर आक्रमण

(१) आर्यों की विद्योन्नति—ई० स० पू० ६०० से इधर का इतिहास बहुत कुछ क्रमबद्ध मिलता है और कई प्रसिद्ध राजपुरुषों के नाम भी मिलते हैं। मगध-देश में प्रद्योत नाम का राजवंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस वंश का आदि-पुरुष शिशुनाग और चौथा पुरुष बिम्बसार दोनों ही अपने पराक्रम और परोपकार के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं (ई० स० पू० ५९२-५५४)। बिम्बसार ने मगध राज्य की राजधानी राजगृह में स्थापित की। बिम्बसार के लड़के अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र (पटना) को बसाया और ७७ वर्ष तक शासन किया। अजातशत्रु के लड़के का नाम दर्शक था। यह वही पुरुष है जिसका नाम कविभास ने अपने नाटक में दिया है। दर्शक के लड़के का नाम उदय था, जिसने कुसुमपुर बसाया था। यह नगर वर्त्तमान पटना के समीप ही था। उसके बाद नन्दिवर्धन और महानन्दी ने ८३ वर्ष तक राज्य किया। ई० स० पू०

अवस्था में शरीर-त्याग किया। उनके अनुयाइयों की संख्या १४ हजार थी। बाद में चन्द्रगुप्त के शासन-काल में उनके सारे उपदेशों का संग्रह किया गया। उस संग्रह का कुछ भाग आज-कल भी पाली भाषा में उपलब्ध है। उस भाग का नाम अंग है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने भी जैनियों का अच्छा सम्मान किया था। उसकी आज्ञा से भद्रबाहु नाम का एक जैन-विद्वान् जैनियों का एक बड़ा संघ अपने साथ लेकर दक्षिण भारत में गया और वहाँ जैन-पंथ का प्रचार किया। कुछ समय बीतने पर वे लोग मगध-राज्य को फिर लौटे। उस समय उत्तर के जैनियों से उनका घोर मत भेद हो गया, जिससे दक्षिण के जैनी दिगम्बर और उत्तर के जैनी श्वेताम्बर—अर्थात् सफेद वस्त्रवाले कहलाये। भारत में कुछ काल तक दिगम्बरों का प्रचार बहुत बढ़ा-चढा रहा। दक्षिण में दिगम्बरी जैनियो की संख्या अधिक है और उत्तर में राजपूताना आदि प्रान्तों में श्वेताम्बर जैनी अधिक हैं। तीर्थ स्थानों में दोनों सम्प्रदायों की धर्मशालाएँ बडी सुविधा-जनक बनी हैं। जैन मतानुयाई इस देश में सभी प्रान्तों, सभी जातियों और सभी भाषा भाषियों में मिलते हैं। ये लोग स्वभाव से ही सात्विक, परोपकारी और व्यापार प्रवीण होते हैं। स्थान स्थान पर इनके विशाल देव मन्दिर और धर्मशालाएँ तथा लोकोपयोगी अनेक संस्थाएँ खुली हुई हैं। आबू पहाड़ पर बने हुए जैन-मन्दिर को जिसने देखा है वह तत्कालीन जैनियो की शिल्पकला-सम्बन्धी उन्नति का अनुमान कर सकता है। जीव-हिंसा से बचने के लिए ये लोग दिन ही दिन में भोजन कर लेते हैं। पर्यटन करते समय मुँह पर कपड़ा बाँधने का इनका नियम प्रसिद्ध ही है।



गौतमबुद्ध

(३) बौद्धों का उदय, गौतम बुद्ध—दूसरे धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध थे। उनका जन्म बिहार प्रान्त में नैपाल की तराई में हुआ था।

काशी के उत्तर रोहिणी नदी के किनारे कपिलवस्तु में शुद्धोदन नाम का एक शाक्य-वंशी राजा था। ई० स० पू० ५६७ में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम सिद्धार्थ था। यही सिद्धार्थ आगे चलकर बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए। गौतम उनके कुल का नाम था, बुद्ध का अर्थ ज्ञानी है। यह गौतम बुद्ध की पदवी उन्हें बाद को प्राप्त हुई। बाल्यकाल से ही उनके पिता ने उन्हें इतनी सावधानी से सुख ही सुख में रक्खा कि वे दुःख का नाम तक न जानते थे। बाल काल के समाप्त होने पर सिद्धार्थ का विवाह हुआ। उनकी स्त्री का नाम यशोधरा था। इससे उनके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम राहुल पड़ा। एक दिन जब सिद्धार्थ बाहर घूमने गये तब राह में उन्होंने लोगों को शोक-सतप्त देखा। उनकी दुस्सह अवस्था देख कर उनके चित्त में ससार से विरक्ति हो गई। अतएव रात्रि में अपने सद्योत्पन्न बालक और पति-परायण पत्नी का त्याग कर वे महल से बाहर निकल गये। जङ्गल में जाकर उन्होंने कठोर तपश्चर्या की। फिर उन्होंने घर लौटने का नाम भी न लिया। यह देख उनके पिता ने अपने कुल के पाँच लड़के उनके साथ रहने के लिए भेज दिये। इस प्रकार उन्होंने वन में रह कर ६ वर्ष तक तपस्या की, परन्तु जिस ज्ञान सिद्धि की उन्हें आवश्यकता थी वह न मिली। उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि वह उपवास आदि देह के कष्टों से नहीं प्राप्त हो सकती।

अतएव उन्होंने तपस्या करनी छोड़ दी। यह देख उनके पाँचों साथी अपने घरों को चले गये और सिद्धार्थ अकेले ही गया के समीप वन में रह कर अपना कालयापन करने लगे। इसी समय वे गया के दक्षिण में उरुवेला नामक स्थान में गये। वहाँ एक अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे उन्हें परम ज्ञान की प्राप्ति हो गई। इससे उनकी सारी शंकाओं का समाधान हो गया। इसीसे उस वृक्ष का नाम बोधि-वृक्ष और उस स्थान का नाम बुद्ध गया पड गया। यहाँ का बुद्ध का मन्दिर भूमि में दब गया था। वह अब खोद कर बाहर निकाला गया है और उसका जीर्णोद्धार भी हो गया है। गया से गौतम बुद्ध काशी के समीप सारनाथ नामक स्थान को गये। वहाँ उन्होंने मृग-दाव नामक बाग में अपने धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया। उस स्थान पर उन्हें पहले पाँच शिष्य मिले। फिर उत्तरोत्तर शिष्यों की संख्या के बढ़ जाने से उनकी शिष्य-मण्डली बहुत बड़ी हो गई। कोशल-राज्य का राजा प्रसेनजित् और मगध-राज्य का राजा बिम्बसार गोतम बुद्ध के शिष्य बन गये। उनको आश्रय देकर इन राजाओं ने अपने राज्य में उनके धर्म का प्रचार किया। नेपाल की तराई में कुशी नगर नामक स्थान में ई० स० पू० ४८७ के लगभग गौतम बुद्ध ने शरीर त्याग किया। कपिलवस्तु, बुद्ध गया, सारनाथ का "मृगदाव" बाग़ और कुशीनगर बौद्ध-धर्म के तीर्थ-स्थल समझे जाते हैं।

बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में परस्पर अधिक साम्य है। वास्तव में दोनों ही धर्मों को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। हिन्दू-धर्म से इनको भिन्न मानने का कोई कारण नहीं है। हिन्दू धर्म के तत्वों को ही महावीर तथा गोतमबुद्ध ने

अधिक स्पष्ट रूप में जनता के सामने रक्खा और उनके अनन्तकाल तक के जो विशिष्ट तत्त्व-ग्रन्थ थे उनको हिन्दुओं ने अपने तत्त्व-ज्ञान में सम्मिलित कर लिया। उपनिषदों में दिये गये तत्त्वों को ही गौतम बुद्ध ने अंगीकार किया था। केवल यज्ञ आदि कर्म और वेद प्रमाण को उन्होंने मान्य नहीं माना। बौद्ध धर्म का प्रचार गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद विशेष रूप से हुआ। किसी वस्तु की कामना न करके निर्वाण पाना ही बौद्ध धर्म का ध्येय है। इसको प्राप्त करने के लिए इस धर्म में अष्टविध साधन बतलाये गये हैं। शाक्यों के राज्य में लोक सत्ता द्वारा शासन होता था। उसी पद्धति को बुद्ध ने अपने संघ का कार्य भार चलाने में अंगीकार किया। बुद्ध का यह उपदेश था कि मनुष्य के जन्म से ही उसको उच्च या नीच पद नहीं प्राप्त होता, बल्कि अपने कर्म-द्वारा जीव उच्चपद या निम्नपद प्राप्त करता है। इस उपदेश के कारण बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में अधिक प्रभावशाली बना और आज-कल जिस संघ-शक्ति की आवश्यकता है उसका वह पोषक बन गया। यह बात आगे दिये पद्यांश से स्पष्ट होती है—

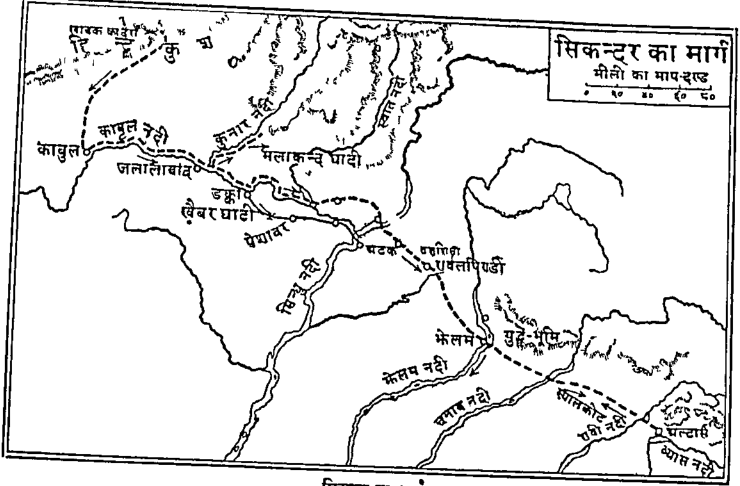
सब्ब पापस्य अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त पर्योदपन एन बुद्धस्स सासनम्॥

कोई भी पाप न करना, सत्कार्य की वृद्धि करना, और चित्त को नियम के बन्धन में रखना, यही बुद्ध का अनुशासन है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव लगभग एक हजार वर्ष तक भारत में बड़े जोर का रहा। लेकिन इसका प्रचार विदेशों में—चीन जापान, अथवा भारत के अन्य पूर्ववर्ती देशों तथा उनके निकट के द्वीपों में—अधिक है। आज पृथिवी भर में अन्य धर्मों की अपेक्षा बौद्ध-धर्मावलम्बियों की संख्या अधिक है। गौतम बुद्ध के

मर जाने के बाद उनके अनुयाइयों ने पटना के समीप एक गुफा में भारी सभा करके उनके उपदेशों का संग्रह किया और उसे तीन भागों में विभक्त किया। इनको पिटक या करंडक कहते हैं। इस मण्डली ने बौद्ध-धर्म का प्रचार बड़े ज़ोरों के साथ किया। इसके ठीक सौ वर्ष बाद बौद्धमतानुयाइयों की दूसरी बड़ी सभा बैठी। उस समय बौद्ध लोग दो दलों में बँट गये। इनमें से एक पक्ष ने उत्तर में और दूसरे प्रक्ष ने दक्षिण में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। इसके सौ वर्ष बाद चक्रवर्ती नरेश अशोक ने ई० स० पू० २४२ में बौद्ध विद्वानों की तीसरी सभा की और उसने धर्म के प्रचार में एक नवीन उत्साह का सञ्चार किया। इसके लगभग ४०० वर्ष बाद राजा कनिष्क ने बौद्ध धर्म के प्रमुख विद्वानों को एकत्र कर एक चौथी सभा की। इस सभा में फिर ग्रन्थ संग्रह का कार्य किया गया। बौद्धों के प्राय सभी ग्रन्थ पाली भाषा में हैं। गौतम बुद्ध ने पाली-भाषा में ही लोगों को उपदेश दिया था। बौद्धों और जैनियों के ग्रन्थों का भाडार बहुत बड़ा है। इन दोनों के अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ बने और इनमें अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हुए। यदि उनका सशोधन करने के लिए भारत के बाहर के ग्रन्थ भाडार की खोज की जाय तो भारत के प्राचीन इतिहास की अपरिमित सामग्री मिल सकती है। भारत में जैनियों की वर्तमान संख्या लगभग १५ लाख है। जैन धर्म का इतना विस्तृत प्रचार भारत में नहीं हुआ जैसा कि बौद्ध-धर्म का हुआ था।

(४) सिकन्दर का भारत पर आक्रमण—समस्त ज्ञान और सुसस्कृति का प्रचार भारत के ही द्वारा अन्य देशों में हुआ


सिकन्दर का मार्ग
मीलों का माप-दण्ड
० २० ४० ६० ८०
काबुल
काबुल नदी
जलालाबाद
कुनार नदी
मलाकन्द घाटी
स्वात नदी
डक्का
खैबर घाटी
पेशावर
सिन्धु नदी
अटक
रावलपिण्डी
झेलम
युद्ध-भूमि
झेलम नदी
चनाब नदी
स्यालकोट
रावी नदी
व्यास नदी

सिकन्दर का मार्ग



सिकन्दर

था। इससे इस देश का अन्य देशों में अधिक आदर था। विदेशों के अनेक पराक्रमी लोग यहाँ की सम्पत्ति को लोभ की दृष्टि से देखते थे। मिस्र-देश के राजा और असीरिया की रानी सेमिरा-मिस ने इसी भाव से पजाव पर आक्रमण किया था। इसी प्रकार ईरान के वादशाह दारियस ने सिन्धुनदी के पश्चिमी सीमा प्रदेश को जीत लिया था और यह प्रदेश कुछ समय तक उस राज्य में शामिल रहा था। लेकिन इन विदेशियों के आक्रमणों में मार्के का आक्रमण ग्रीस के बादशाह सिकदर का था। इस आक्रमण से यूरोप के ग्रीक और भारत के आर्यों का जो सम्मिलन हुआ उसका ससार के इतिहास पर वहुत प्रभाव पड़ा।

ई० स० पू० की चोथी शताब्दी में ग्रीस-देश पर प्रथम **फिलिप** और उसके बाद उसका पुत्र अलेक्जेंडर (सिक दर) शासन करते थे। सिकदर मिस्र-देश को जीत कर पश्चिमी एशिया के प्रदेश जीतता हुआ ई० स० पू० ३२६ के जनवरी मास में खैबर घाटी पार कर भारत में आ गया। अटक के पास सिन्धु-नदी को नावों के पुल से पार कर सिकन्दर ने अपनी विशाल सेना के साथ पंजाब में प्रवेश किया। उस समय रावलपिंडी से १० मील उत्तर तक्षशिला नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। वहाँ का विद्यापीठ संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध था। तक्षशिला का राजा **अंभी** सिकन्दर से मिल गया। सिकन्दर ने उसकी राजधानी में कुछ दिनो तक विश्राम किया। इसके बाद उसने झेलम के पार के **पोरस, अभिसार** आदि राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए कहला भेजा। अभिसार के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। लेकिन राजा पोरस या पुरु ने उससे

लड़ाई लड़ना ही उत्तम समझा। इस पर सिकन्दर ने चढाई की। इन दोनों की लड़ाई झेलम के किनारे हुई। इस लड़ाई में पोरस की हार हुई और वह सिकन्दर के हाथ कैद हुआ। इस अवसर पर सिकन्दर ने उससे पूछा—मैं तुम्हारे साथ कैसा वर्ताव करूँ? पोरस ने निर्भीकता से उत्तर दिया—जिस प्रकार राजा राजा के साथ व्यवहार करता है। इस उत्तर से सिकन्दर सतुष्ट हुआ और पोरस को उसका राज्य लौटा दिया। सिकन्दर की इच्छा थी कि वह सारे भारत को अपने अधीन करे, लेकिन उसके सैनिक स्वदेश से बहुत दूर आ जाने से घर लौटने के लिए व्याकुल हो रहे थे। इसलिए वह पञ्जाब से लौट पड़ा। वह सिन्धु-नदी के मुहाने तक नावों द्वारा आया। वहाँ से समुद्र-मार्ग द्वारा स्वदेश को लौटा (अक्टोबर ३२५ पू०)। लेकिन ग्रीस पहुँचने के पहले ही बेबिलन नामक नगर में उसे ज्वर ने आ घेरा और वहाँ ३२ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई (जून ई० स० पू० ३२३)।

ग्रीक लोगों का यह आक्रमण भारत के इतिहास में बड़े ही महत्व का है। सिकन्दर के साथ ग्रीस देश के अनेक विद्वान् भारत में आये थे। उन लोगों ने तत्कालीन भारत की स्थिति का अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। उनके वर्णन पढ कर भारत की तत्कालीन अवस्था का अच्छा ज्ञान होता है। सिकन्दर भारत से अनेक विद्वान्, पण्डित और बड़े बड़े ग्रन्थ अपने साथ ग्रीस-देश ले गया था। उसी प्रकार इस आक्रमण ने योरपीयों को भारत का ज्ञान करा दिया और कुछ दिनों के लिए इन देशों में एक दूसरे देश के आने-जाने के मार्ग खुल गये।

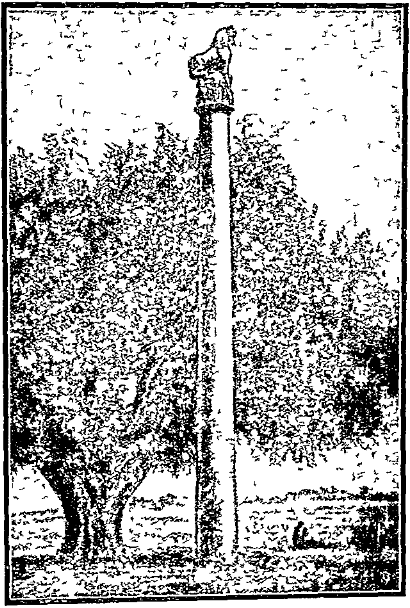
सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका राज्य उसके सेनापतियों में बँट गया। इस बँटवारे में एशिया खण्ड का ग्रीक-राज्य

सेल्यूकस नेकटर के हिस्से में आया। इस राज्य पर सेल्यूकस नेकटर ने ई० स० पू० ३१२ २८० तक राज्य किया। मगध देश का राजा चन्द्रगुप्त मौर्य उसका समकालीन था। चन्द्रगुप्त ने इसके पूर्व ही पञ्जाब व सिन्धु के पश्चिम तटस्थ राज्यों को जीत कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। इन राज्यों को चन्द्रगुप्त से छीनने के लिए सेल्यूकस ने भारत पर चढाई की थी (ई० स० पू० ३०५), लेकिन चन्द्रगुप्त से वह हार गया। अतएव उसने अफगानिस्तान का समूचा प्रांत चन्द्रगुप्त को देकर चन्द्रगुप्त से मित्रता कर ली और उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया। इसके बाद इन दो राजाओं में परस्पर स्नेह-भाव बना रहा। इन दोनों के राज्य एक दूसरे से मिले हुए थे, बीच में हिन्दूकुश का पहाड था। चन्द्रगुप्त के दरबार में सेल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज ८ वर्ष तक रहा। मेगस्थनीज का लिखा हुआ तत्कालीन भारत का वर्णन इस समय प्राप्य नहीं है। केवल उसके ग्रन्थ से उद्धृत किये हुए कुछ अंश अन्य ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में मिलते हैं। ये उद्धृतांश भी बडे महत्व के हैं। इनके पढने से चन्द्रगुप्त की राज्य-व्यवस्था और उसके वैभव का पता लगता है। सेल्यूकस के बाद २०० वर्षों तक ग्रीक लोगों का भारत के साथ अच्छा व्यवहार बना रहा।

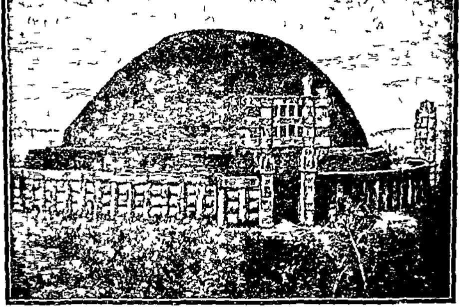
को तक्षशिला भेज कर अशोक को अपने पास पाटलिपुत्र को बुला लिया। ऐसी ही अवस्था में ई० स० पू० २७४ मे बिन्दुसार की मृत्यु हो गई। इससे राधागुप्त की सहायता पाकर अशोक राजसिंहासन पर बैठ गया और अपने भाई को मार कर अपनी सत्ता स्थापित की।

उस समय कलिङ्ग-देश स्वतन्त्र था। व्यापार के कारण उसकी बड़ी उन्नति हो गई थी। वहाँ के व्यापारी जहाज़ चलाने की विद्या में अधिक निपुण थे। पूर्व के द्वीपों में आर्य सभ्यता का प्रचार इन कलिङ्गवालों ने ही किया था। आज भी उन द्वीपों के रहनेवाले अपने को क्लिङ्ग ही बतलाते हैं। अशोक के शासन के पहले तीन वर्ष घरेलू लड़ाई झगड़ों में बीते। इसके बाद ई० स० पू० २७० में उसका राज्याभिषेक हुआ। पड़ोस के कलिङ्ग-देश पर चढ़ाई करके उसने वह देश भी जीत लिया। वहाँ के राजा को परास्त कर प्रजा का बहुत नाश किया। इस युद्ध में अच्छे अच्छे साधु, पण्डित और विद्वानों के भी प्राण गये। उस हृदय-द्रावक हत्याकाड का दृश्य देख कर उसे विजय के आनन्द के स्थान में बड़ा पश्चात्ताप हुआ और इसका प्रभाव उसके चित्त पर इतना पड़ा कि उसने अपना जीवन ही बदल दिया।

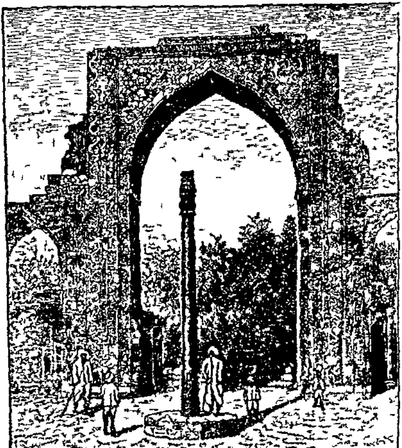
कलिङ्ग जीतने के बाद ही अशोक ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ली। अब उसने तलवार की अपेक्षा धर्म की दिग्विजय करने का निश्चय किया और शेष जीवन लोकोपकार के कार्यों में बिता कर उसने सम्राट् की पदवी सार्थक कर दी। उसने राज्य भर में दौरा करके स्थान स्थान पर धर्मप्रचार की आज्ञाएँ निकालीं। ये आज्ञाएँ आज भी शिला-लेखों में जहाँ तहाँ खुदी मिलती हैं। काठियावाड़ में गिरनार, पेशावर के समीप मनशेरा और शाहबाज गढ़ी,



अशोक की लाट



साँची का स्तूप

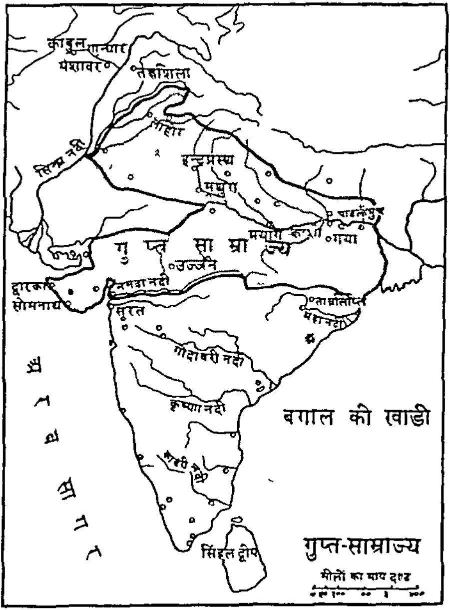


जगन्नाथपुरी के पास वाली, गञ्जाम आदि दूर दूर के स्थानों मे उसके कम से कम सोलह शिलालेख मिलते हैं। इन लेखगत आज्ञाओं मे उसने लोकोपयोगी कार्य और राज्य नियम स्पष्ट किये थे। राह में बावडी, तालाब इत्यादि बनवाना, पेड लगाना, मनुष्यों और पशुओं के लिए विश्राम-स्थल बनाना, हिंसा न करना, धार्मिक प्रसग के लिए विद्वानो की सभायें करना इत्यादि उसकी अनेक आज्ञायें इन शिलालेखों मे लिखी मिलती हैं। वह रात दिन का ध्यान न कर मिलनेवाले से किसी भी समय मिलता था। सारे राज्य म लोगों को धर्म व नीति सिखाने तथा उनकी कठिनाइयाँ दूर करने के लिए उसने धर्म महामात्रा नाम के अधिकारी नियुक्त किये थे। अपने शासन के उन्नीसवें वर्ष में पाटलिपुत्र में उसने धार्मिक मत भेदों को दूर करने के लिए बौद्ध पण्डितों की एक बडी सभा की। उस सभा में उपगुप्त पण्डित को अध्यक्ष का पद मिला था। सभा की समाप्ति के बाद अशोक ने विदेशों में धर्म प्रचार करने के लिए अनेक दूत भेजे। बैक्ट्रिया के यवन-राजा अर्थात् ग्रीक-राजा के दरबार में महारक्षित, महिषमण्डल अर्थात् मैसूर-राज्य में महादेव, वनवासी में रक्षित, महाराष्ट्र में महाधर्म रक्षित, हिमालय के समीप तिब्बत इत्यादि प्रदेशो में मज्झिम, स्याम और ब्रह्मदेश में सोन और उत्तर और सिंहल (सीलोन) म स्वयं अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा को उसने धर्म प्रचार के लिए भेजा। इनके साथ अनेक विद्वान भी गये थे। इन धर्मोपदेशकों की सख्या चौसठ हजार थी। इनके अतिरिक्त स्थान स्थान पर धर्म प्रचार मन्दिर अलग अलग बने थे। इन मन्दिरों की सख्या चौरासी

पैशाची भाषायें संस्कृत से निकली हैं। इनका विपुल ग्रन्थ भांडार अशोक के बाद ४०० वर्षों में निर्माण हुआ। पुराणो की रचना भी इसी काल में हुई थी।

(४) गुप्तो का साम्राज्य—मगध-देश और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र की उन्नति ई० स० ६०० से बराबर एक समान होती गई थी। बीच में केवल कुछ समय के लिए बाधा पड़ गई थी। उस काल में प्रद्योत, नन्द, मौर्य और शुंग इत्यादि ४ राजवंश हो चुके थे। बाद को कुशान वंश के समय मगध का वैभव नष्ट हो गया था और राजधानी पाटलिपुत्र की शोभा पेशावर चली गई थी। जब कुशान शासकों की भी शक्ति क्षीण हो रही थी तब पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त नाम के एक व्यक्ति की बड़ी उन्नति हो रही थी। उसने लिच्छवी-राजकुल की कन्या कुमारदेवी के साथ विवाह कर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसके सोने के सिक्कों पर राजा-रानी दोनो के नाम अङ्कित हैं। उसने गुप्त वंश का नवीन शक जारी किया। उसकी गणना २६-२-३२० ई० से होती है। यह वर्ष-गणना उत्तर-भारत में अधिक काल तक जारी रही।

सन् ३३० के लगभग चन्द्रगुप्त की मृत्यु होगई और उसका पराक्रमी लड़का समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने सन् ३७५ तक राज्य किया और समस्त उत्तर-भारत जीत लिया, फिर दक्षिण के पूर्वी समुद्रतटवर्ती काञ्ची तक आक्रमण करके वहाँ के राजाओं से कर वसूल किया। समुद्रगुप्त के बाद द्वितीय चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने मालवा और सौराष्ट्र को अपने राज्य में मिला कर विक्रमादित्य की पदवी धारण की और

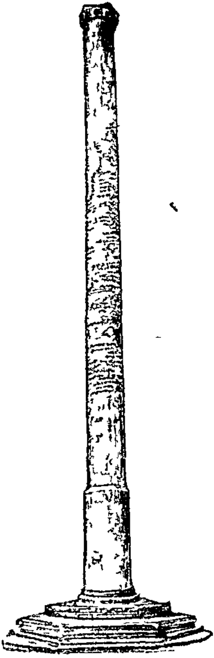

काबुल
गान्धार
तक्षशिला
सिन्धु नदी
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
गु प्त सा म्रा ज्य
उज्जैन
गया
द्वारका
सोमनाथ
नर्मदा नदी
सूरत
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
बगाल की खाडी
अ र ब सा ग र
सिंहल द्वीप
गुप्त-साम्राज्य
मीलों का माप दण्ड

प्राप्त करने के लिए विदेशों के अनेक प्रवासी समय समय पर भारत में आये। इसी तरह फाहियान नाम का विद्वान् चीनी यात्री बौद्ध-धर्म की जानकारी प्राप्त करने उत्तर के भूमार्ग से भारत में आकर सीलोन और जावा होकर जल मार्ग से स्वदेश को लौट गया था। उसकी यात्रा सन् ३९९ और ४१४ के बीच में हुई थी। उसका लिखा हुआ भारत की अवस्था का वर्णन आज भी मिलता है। उससे विदित होता है कि गुप्त काल में भारत उन्नति पर था। सुधार, सौख्य, विद्वत्ता, कला इत्यादि सभी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुके थे। धनिकों से चंदा लेकर ग़रीबों को मुफ़्त दवा बाँटने का प्रवन्ध योरप में पहले पहल १७वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था। लेकिन यह प्रवन्ध गुप्तों के ही समय में इस देश में शुरू हो गया था। लोगों का व्यवहार बड़ी सचाई का होता था। अपराधियों को मृत्यु-दण्ड देने की प्रथा यहाँ न थी। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ धर्मशालाओं का अच्छा प्रबंध था। मद्यपान तो बिलकुल ही बंद था। इस प्रकार की अत्यन्त उपयुक्त जानकारी फाहियान की लिखी पुस्तक से होती है। मध्य-एशिया से लगाकर दक्षिण और पूर्व समुद्र तक के विस्तीर्ण भू-भाग में आर्य-संस्कृति का साम्राज्य फैल चुका था। इसका केन्द्र भारत था। इस संस्कृति का परिचय पाकर विदेशी लोग अपने को धन्य मानते थे। भारत में संस्कृति-सबधी स्वार्थी और विध्वंसक भावों का उस समय तक उदय नहीं हुआ था। उसकी उत्पत्ति मुसलमानों के आक्रमण से इस देश में हुई।

चन्द्र गुप्त के लड़के कुमारगुप्त ने ई० स० ४५५ तक शासन किया। इसके बाद स्कंदगुप्त ने शासन करना शुरू किया। इसके शासन से पहले ही हूण लोगों ने भारत पर



चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के सिक्के



कौशाम्बी-स्तम्भ

करना प्रारम्भ किया था। उसके रोकने में गुप्तों की शक्ति क्षीण होने लगी। वास्तव में गुप्त-वंश के चार ही राजे विशेष पराक्रमी हुए। बाद को दुर्बल और निस्तेज राजाओं के गद्दी पर बैठने से राज्य का ह्रास होगया। गुप्तों के राज्य पर हूणों ने पहले सन् ४५५ में आक्रमण किया था। परन्तु उस समय गुप्तों ने उनका सामना बड़ी सफलता के साथ किया। बाद को ईरान और काबुल पर अधिकार करके हूण लोग अधिक प्रबल हो गये। उनके एक नेता तोरमान ने मालवा पर आक्रमण करके अपनी सत्ता वहाँ जमाई। तोरमान के लड़के मिहिरगुल ने पंजाब जीत कर अपनी राजधानी सियालकोट में स्थापित की। पश्चिम में उसका राज्य ईरान और खोतान तक था। मालवा के राजा यशोधर्मदेव ने मिहिरगुल को परास्त कर पंजाब की सीमा तक का प्रदेश हूणों से छीन कर उनके पंजे से उसे छुड़ा लिया। बाद को मध्य-एशिया में तुर्कों का जोर अधिक बढ़ा। इससे हूणों का साम्राज्य नष्ट होगया। सामान्यतः ये श्वेत हूण के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

स्कंद-गुप्त के बाद पुरगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त, बुद्धगुप्त, भानुगुप्त इत्यादि अनेक राजे क्रम से गद्दी पर बैठे। लेकिन उनकी शक्ति बहुत परिमित थी। भानुगुप्त हूणों के साथ युद्ध करते करते सन् ५१० में मारा गया। इसके बाद गुप्त-वंश ई० स० ७३२ तक मगध में जीवित रहा। भानुगुप्त के बाद एक सौ वर्ष तक का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। यशोधर्मदेव का नाम खूब प्रसिद्ध हुआ। उसने मालवा में नवीन वर्ष गणना प्रारम्भ की और स्वयं विक्रमादित्य की पदवी धारण कर मालवे में नवीन

शक संवत् चलाया। इसीलिए "विक्रम संवत्" ने बड़ा गड़बड़ कर दिया है। यह मालवा का राजा विद्यानुरागी था। लोगों का मत है कि इसी राजा के दरबार में महाकवि कालिदास वर्तमान थे, अर्थात् यशोधर्मदेव का समय ई० स० ५३३ कहने से वही काल कालिदास का समझना पड़ेगा। सारांश यह कि गुप्तों के ह्रास-काल में मालवा, थानेश्वर, कामरूप और पाटलिपुत्र इत्यादि स्थानों में अनेक छोटे छोटे राज्य कायम हो गये थे। बाद को सातवीं शताब्दी में श्रीहर्ष का उदय हुआ।

चौथा अध्याय

भिन्न भिन्न राज्यों का काल

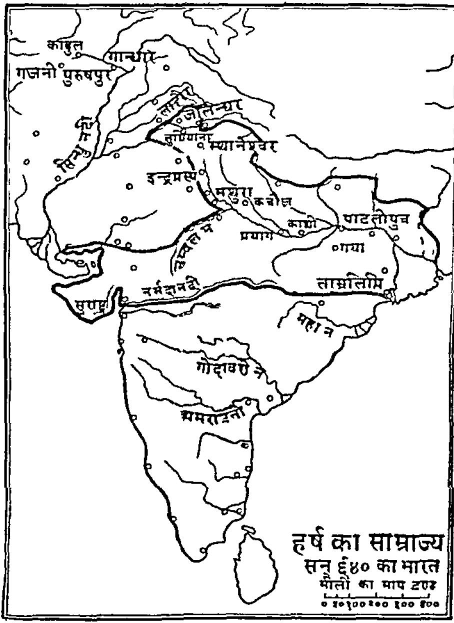
ई० स० ६००-११९३

१—कन्नोज का श्रीहर्ष (६०६ ६४७) २—मध्य कालीन राजपूत-राज्य
३—अर्वाचीन हिंदू धर्म की उत्पत्ति ४—सिंहावलोकन

(१) कन्नौज का श्रीहर्ष (६०६ ६४७)—गुप्तों के बाद लग भग अढाई सौ वर्ष तक भारत में किसी एक बड़े वंश का साम्राज्य नहीं कायम हुआ। स्थान स्थान पर अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए। इन्हीं में कुछ व्यक्ति पराक्रमी और चक्रवर्ती हुए। मालवा का राजा यशोधर्मदेव और कन्नौज का श्रीहर्ष इसी प्रकार के व्यक्ति थे। अयोध्या के समीपस्थ भाग में मौखरी-वंश का राज्य था। इसकी राजधानी कन्नौज थी। दूसरा राज्य स्थानेश्वर (थानेश्वर) था। पूर्वी भूभाग में कामरूप अर्थात् आसाम में एक तीसरा राजवंश राज्य करता था। बंगाल प्रान्त में शशांकगुप्त नाम का राजा उस समय बहुत प्रसिद्ध हुआ। स्थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन ने हूणों को परास्त कर उन्हें पीछे हटा दिया था। मौखरी-राज्य के ग्रहवर्मा का विवाह प्रभाकरवर्धन की लड़की राज्यश्री के साथ हुआ था। प्रभाकर वर्धन के दो लड़के भी थे। बड़े लड़के का नाम राज्यवर्धन

और छोटे लड़के का नाम हर्षवर्धन था। जिस समय हूणों ने चढ़ाई की थी, ये दोनों भाई उनसे लड़ने के लिए गये थे। इसी बीच में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो गई। इधर मालवा के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर चढाई की और ग्रहवर्मा को मार कर उसकी रानी राज्यश्री को कैद कर लिया। इसके बाद वह स्थानेश्वर की ओर बढा। राज्यवर्धन हूणों को परास्त कर लौटा आ रहा था। पिता की मृत्यु होने, बहनोई के मारे जाने और राज्य पर शत्रु की चढाई होने के समाचार उसे मार्ग में ही मिले। उसने सीधा जाकर पहले देवगुप्त को मार डाला। इतने में ही देवगुप्त की सहायता के लिए उसका मित्र बङ्गाल का शशाङ्क आ गया। उसने कपट करके राज्यवर्धन को मार डाला। इन घटनाओं का समाचार हर्षवर्धन को मिला। उसने शशांक की और मालवा की सेनाओं को मार भगाया और विन्ध्याचल के जङ्गलों में भटकती हुई राज्यश्री को बंधन-मुक्त करके उसे अपने साथ लिवा लिया। यह सब कार्य बहुत थोड़े समय में ही अर्थात् ई० स० ६०५ ६०६ के बीच में हुआ। आगे यही हर्ष चक्रवर्त्ती राजा हुआ और अपनी बहन राज्यश्री की सहायता से उसने कन्नौज में रहकर अपना राज काज सँभाला। बाण कवि ने श्रीहर्ष-चरित लिखा है। इसमें उसका सब वर्णन दिया गया है। उस समय का हाल चीनी यात्री हुएनसेङ्ग के लेखों से भी मिलता है।

हर्ष के समय में ही दूसरा चीनी-यात्री हुएनसेङ्ग भारत में आया था। वह इस देश मे सन् ६२९ से सन् ६४५ तक रहा। उसने घूम फिर कर भारत का भ्रमण किया और उसका हाल अपनी पुस्तक में लिखा। उससे हर्ष के समय की देश की



हर्ष का साम्राज्य
सन् ६४० का भारत

अवस्था, प्रजा तथा तत्कालीन राज्यों का अच्छा परिचय मिलता है। उस समय भारत में कुल वहत्तर राज्य थे, जिनमें प्रजा सुख ओर शान्ति का अनुभव करती थी। नालन्द के विद्यापीठ में दो वर्ष रह कर हुएनसेङ्ग ने योगविद्या ओर बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का अभ्यास किया। बौद्ध-सङ्घों के किये हुए बड़े बड़े कार्य, बड़े बड़े मठों का निर्माण तथा उनका प्रबन्ध, बुद्ध की सोने-चॉदी की मूर्त्तियॉ, बाग़, फल-फूल, खेती इत्यादि सम्बन्धी बौद्ध भिक्षुओं के प्रारम्भ किये हुए उद्योग आदि का जो वर्णन उसने दिया है उसे पढ कर ओर उस समय की उन्नति का अनुभव करके दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। नालन्द में उस समय दस हजार विद्यार्थी तथा शिक्षकों का समुदाय केवल धनिकों के दान के सहारे अपना जीवन निर्वाह कर विद्योपार्जन करता था। ऐसे ही विद्यापीठ अन्य स्थानों में भी थे। हुएनसेङ्ग दक्षिण मे पुलकेशी की राजधानी वादामी भी गया था। उसका किया हुआ भारत का वर्णन इतिहास में पक्षपात-दोष से रहित समझा जाता है।

हर्ष ने सन् ६०६ से ६४७ तक राज्य किया। उसके शासन ओर उसकी राजनीति का जो वर्णन हुएनसेङ्ग ने किया है उससे विदित होता है कि श्रीहर्ष बडा दानी, प्रजाहितपरायण और विद्याव्यसनी सम्राट् था। नर्मदा से सिन्धु तक उसके राज्य का विस्तार था। कामरूप के राजा कुमारराज ने एक अति मूल्यवान् श्वेतच्छत्र सम्राट् चिन्ह कह कर उसको भेंट में दिया था। हर्ष ने पहले सब राज्यों में दौरा कर स्वय उनका प्रबन्ध किया। इसके बाद ६ वर्ष मे उसने अपने अधीन-राज्य का उत्तर में विस्तार किया। यह राज्य प्राचीन भारतीय साम्राज्य के समान

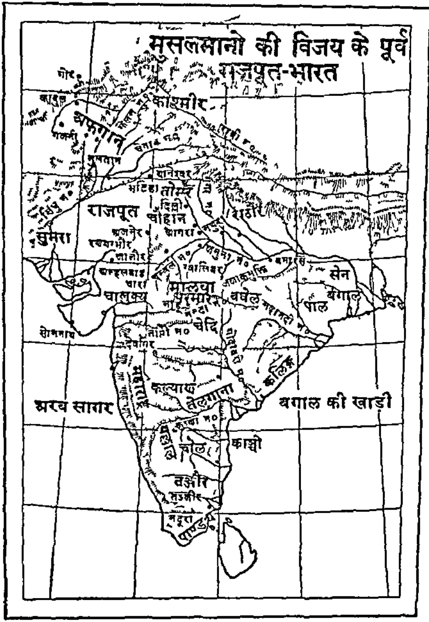
विस्तृत हो गया था। साम्राज्य के विस्तार करने में उसका अभिप्राय अन्य राज्यों को लूटना न था। हर्ष ने दक्षिण देश जीतने के लिए महाराष्ट्र पर भी चढाई की थी। उस समय वादामी में चालुक्य-वंशी पराक्रमी राजा पुलकेशी शासन कर रहा था। उसने ई० स० ६२० में हर्ष को परास्त किया। इसके बाद नर्मदा नदी ही दोनों के राज्यों की राज्य-सीमा निश्चित रही। 'साम्राज्य दर्शक' नाम की अपनी नवीन वर्ण-गणना श्रीहर्ष ने सन् ६१२ से शुरू की। इसके बाद ३५ वर्ष तक उसका शासन निर्विघ्न जारी रहा। इस दीर्घकाल में उसका ध्यान प्रजाहित पर ही रहा। विद्वानों और बुद्धिमानों का वह बड़ा सम्मान करता था, उनकी बातों में वह इतना तल्लीन हो जाता था कि उसे भोजन, नींद आदि की भी याद भूल जाती थी। वह स्वय शैव मतानुयायी था, तो भी उसकी मनोवृत्ति उत्तरोत्तर बौद्ध-धर्म की ओर अधिक झुकती गई। जिस समय हुएनसेङ्ग उसके दरबार में पहुँचा, उसने उसके स्वागत में एक मास तक उत्सव किया। उस उत्सव में चार हजार बौद्ध भिक्षु, तीन हजार जेनी-भिक्षु और पंडित ब्राह्मण एकत्र हुए थे। उस उत्सव में नित्य सवेरे बुद्धदेव की मूर्त्ति को पालकी में बिठा कर उसका जुलूस निकाला जाता था। उसके शासन में हिंसा करना सबसे बड़ा अपराध समझा जाता था। अपने राज्य मे उसने मासाहार का निषेध कर दिया था। वह सदा अपने राज्य में दौरा करके प्रजा की कठिनाइयों को दूर करता रहता था। राज्य शासन ओर धर्माचरण के अतिरिक्त किसी भी कार्य में वह अपना समय नहीं लगाता था। सासारिक वैभव और सम्पत्ति से उसका मन इतना फिरा हुआ था कि प्रति पॉच वर्ष के अनन्तर वह एक उत्सव करके अपनी सारी सम्पत्ति बौद्ध-भिक्षुओं ओर विद्वान् ब्राह्मणों को

बाँट देता था। ऐसे उत्सवों के उपरान्त उसके पास कुछ भी न रह जाने से वह राज्य से अपने लिए वस्त्र की याचना करता था। विद्या, दानशीलता, शौर्य और धर्म-सम्पन्नता आदि सब का किसी एक व्यक्ति में इस प्रकार मिलना शायद ही कहीं देखा गया हो। वह हर्षवर्धन शिलादित्य के नाम से भी प्रसिद्ध है। श्रीहर्ष-चरित्रकार बाणभट्ट ने उसी के दरबार में रह कर अपनी प्रसिद्ध कादम्बरी लिखी थी। नागानद और रत्नावली की रचना इसी हर्ष ने की थी। मुहम्मद पगम्बर इसी सम्राट् का समकालीन था। लेकिन उसके कामों में अनेक विषय-सम्बन्धी परस्पर विरोध ध्यान में रखने योग्य हैं।

हर्ष के बाद उसका राज्य अस्तव्यस्त हो गया। उसके बाद यशोवर्धन नाम का एक राजा हुआ। इसके दरबार में भवभूति नामक कवि था (सन् ७३०)। उस समय नालन्द और विक्रमशिला में बड़े बड़े विहार थे। हर्ष के बाद काश्मीर में कर्कोटक घराने का ललितादित्य राजा बडा पराक्रमी हुआ। इसने सन् ६९६ से सन् ७३६ तक राज्य किया और यशोवर्धन को मार कर कन्नोज पर अपना अधिकार जमाया। इसके बाद भवभूति कवि काश्मीर में ललितादित्य के दरबार में जाकर रहा।

(२) मध्य-कालीन राजपूत-राज्य—श्रीहर्ष की मृत्यु के अनन्तर मुसलमानी शासन प्रारम्भ होने से पूर्व यहाँ स्थान स्थान पर अनेक राजपूतों के राज्य स्थापित हुए। इनमें कोई भी राजपूत राजा चक्रवर्ती नहीं हुआ। इसी काल में, बौद्ध धर्म का ह्रास होने पर, अर्वाचीन हिन्दू धर्म का प्रभाव देश में फैला। पूर्व काल में पाटलिपुत्र की जो महिमा अनेक शताब्दियों तक बनी रही थी

वह लुप्त होकर कन्नौज को प्राप्त हुई। लेकिन वहाँ सतत चक्रवर्तित्व स्थापित करनेवाले राजे सम्राट् हर्ष के बाद न होने से वह महिमा हट कर कुछ समय के लिए काश्मीर-राज्य की राजधानी को प्राप्त हुई। इसके बाद कुछ गौड के पालराजवंश में और कुछ मारवाड़ के गुर्जर-प्रतीहारों में बँट गई। ये प्रतीहार ई० स० ७२५ से १०१८ तक उत्तर-भारत में प्रबल बने रहे। इस काल म इस वश में नागभट्ट, भोज, महीपाल इत्यादि अनेक पराक्रमी राजे उत्पन्न हुए। इनको परिहार भी कहते हैं। इस वश का राजा राज्यपाल कन्नौज में उस समय राज्य करता था। इसी के समय महमूद-गज़नवी ने कन्नौज पर आक्रमण करके उसको परास्त किया। बाद को राठोड़वंशी राजपूत राजाओं ने कन्नौज का राज्य जीत लिया। इस वश में सात राजे हुए। इनमें से राजा जयचद जिस समय राज्य करता था, उस समय मुहम्मद गोरी ने कन्नौज के राज्य पर चढाई कर उसे अपने अधिकार में किया था। इसी वश के एक राजा ने बाद को जोधपुर के राज्य की स्थापना की। आज-कल राजपूतों के अनेक राज्य कायम हैं। इनकी उत्पत्ति प्राचीन व मध्यकालीन क्षत्रिय व अन्य पराक्रमी राजवंशों से हुई है। राजपूत का शुद्ध रूप है राजपुत्र। उनका क्षात्र-तेज हजारों वर्षों से चमक रहा है। आजकल भावनगर के समीप जो "वहा" नामक राज्य है वह पहले वल्लभीपुर के नाम से प्रसिद्ध था। वह ई० स० ८६०-७६६ तक स्वतत्र राज्य था। इसके बाद "पट्टन" में दो सो वर्ष तक वहाँ के राज-वश का शासन गुजरात पर रहा। बाद को इस राजवश को दक्षिण के चालुक्य राजाओं ने जीत लिया (सन् ९४३)। चालुक्य वश में पहला राजा मूलराज बड़ा पराक्रमी हुआ। उसका लड़का चामुड पट्टन में



मुसलमानों के विजय के पूर्व राजपूत भारत

शासन करता था। इसी समय सोमनाथ पर चढाई करने जाते समय गजनी के महमूद ने इस नगर को जीत लिया था। चालुक्यों के बाद 'बाघेल' वश का शासन कुछ दिनों तक गुजरात में रहा। बाद को सन् १२९७ में गुजरात को अलाउद्दीन खिलजी ने जीता।

नवीं शताब्दी में भारत में अनेक भिन्न भिन्न छोटे छोटे राज्यों की स्थापना हुई। मगध-देश में "पाल" वशी राजे शासन करते थे। वे बौद्ध धर्मावलम्बी थे। उन्होंने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। इस वंश के सत्रह राजे प्रसिद्ध हैं। उनके समय में सस्कृत-भाषा की बड़ी उन्नति थी। ग्यारहवीं सदी के अंत में बगाल में "सेन" वशी राजाओं का आधिपत्य रहा। इन सेन वशी राजाओं का राज्य सन् १२०२ में बख्त्यार खिलजी ने जीत लिया।

नवीं सदी के आरम्भ में "परमार" राजपूतों ने अपना राज्य धार में स्थापित किया। इस घराने में राजा "मुज" प्रसिद्ध हुआ है। इसने सस्कृत-भाषा के प्रचार के लिए खूब प्रोत्साहन दिया। मुज के बाद उसका पुत्र प्रसिद्ध भोज (सन् १०१० १०२३) बड़ा पराक्रमी हुआ। वह विद्वानों और कवियों का विशेष रूप से आदर करता था। उसने भी सस्कृत की यथेष्ट रूप से समुन्नति की। सन् १२३२ में उज्जैन शहर पर मुसलमानों का कब्जा हुआ और बाद को अलाउद्दीन खिलजी ने धार के परमार-वश का नाश कर दिया। पजाब में भी राजपूतों के राज्य थे, जिन्हें मुसलमानों ने जीत कर अपने अधीन कर लिया था।

दिल्ली में सन् ७३६ में अनगपाल ने तोमर या तुवर-वंश के राजपूत-राज्य की स्थापना की। इस वश के उन्नीस राजाओं ने दिल्ली में शासन किया। निस्सन्तान होने के कारण अन्तिम राजा ने अपने नाती अर्थात् अजमेर के चौहान-वश के पृथिवी-राज को दिल्ली की गद्दी दे दी। इस पृथिवीराज को मुहम्मद ग़ोरी ने सन् ११९३ में जीता। महाराष्ट्र देश के राजवंशों का वर्णन आगे तीसरे भाग में किया जायगा।

बिलकुल दक्षिण में पाण्ड्य, चोल और केरल नाम के बड़े पुराने राज्य थे। काञ्ची अर्थात् चोल मंडल में पल्लवों का राज्य बहुत दिनों से था। चोल मंडल का ही अंग्रेज़ी अपभ्रंश कारोमंडल है। मैसूर-प्रान्त में "गग" नाम का एक घराना था। उसके प्रधान पुरुष चामुण्डराय ने श्रावण बेल गोला में गोमत की विशाल पाषाण मूर्ति सन् ९८३ में तैयार कराई थी। यह मूर्ति अपूर्व है। द्वार समुद्र में होयसल बल्लवों का राज्य मुसलमानों के प्रवेश काल तक प्रबल था। अत में सुल्तान अला उद्दीन ख़िलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने दक्षिण के सभी राज्यों को जीत लिया (सन् १३१०)।

पाण्ड्य-वशी राजाओं का रोमन लोगों के साथ मोती का व्यापार होता था। इनकी राजधानी मधुरा मीनाक्षी थी। इसी प्रकार चोलों की राजधानी तञ्जोर थी। इस वश का उत्कर्ष राजराज के समय में हुआ (सन् ९८५ १०१०)। उसने सिंहल द्वीप जीत लिया था। इतना ही नहीं, बल्कि वर्तमान मद्रास प्रान्त का अधिकाश भाग भी उसी के अधीन था। पश्चिम में

केरल नामक राज्य था। इसमें मालाबार व कनारा के भूभाग सम्मिलित थे।

(३) अर्वाचीन हिन्दू-धर्म की उत्पत्ति—यह बात ध्यान में रखने की है कि अनेक तरह की राज्य क्रान्तियां व गड़बड़ी के होते रहने से भी इस देश की ज्ञान-सम्बन्धी उन्नति में किसी प्रकार की बाधा न पहुँच पाती थी। सातवीं सदी के अन्त में मगध देश में कुमारिल भट्ट नाम का एक विद्वान् पुरुष हुआ। उसने बौद्ध धर्म का खंडन किया। यही काम आठवीं सदी में शंकराचार्य ने पूरा किया और भगवद्गीता पर भाष्य लिख कर वेदान्त मार्ग की स्थापना की। भारत के दक्षिण से लेकर उत्तर में हिमालय तक, द्वारका से लेकर पूर्व में समुद्र तक शंकराचार्य ने पर्यटन करके इन चारों दिशाओं में शृङ्गेरी, द्वारका, बद्री केदार और जगन्नाथपुरी में वेदान्त मार्ग के धर्ममठ स्थापित किये। इनका प्रभाव आज भी भारत में पड़ता है। शंकराचार्य के अनेक ग्रन्थ हैं। उनका अभ्यास देश में बड़े आदर के साथ किया जाता है। हिमालय पर बत्तीस वर्ष की अवस्था में शंकराचार्य का देहान्त हुआ। उनका जन्म वैशाख शुक्ल १० शाके ७१० व मृत्यु वैशाख शुक्ल १५ शाके ७४२ को हुई। (ई० स० ७८८-८२०)

शंकराचार्य के अनन्तर फिर हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदायों व उपासनाओं के क्रम भिन्न भिन्न पुरुषों ने जारी किये। रामानुज (सन् ११५०), मध्वाचार्य (जन्म सन् ११९९), रामानन्द (सन १३००-१४००), चैतन्य (सन् १४८५-१५३३) इत्यादि

वैष्णव पथ के प्रसिद्ध साधु हुए और इनके अनुयायी आजकल भी प्रचुर सख्या में हैं। वल्लभस्वामी ने (१५२०) कृष्ण भक्ति का विशेष प्रचार किया। हिन्दू मुसलमानों में ऐक्य स्थापन करने के लिए कबीर ने (१३८० १४२०) प्रयत्न किया। पहले के अनेक ग्रन्थों और सूत्रों पर इस समय में बड़े बड़े भाष्य बने। विशेषत गोविन्द स्वामी, केशव स्वामी इत्यादि "स्वामी" नाम धारण करनेवाले व्यक्ति इस समय में भाष्यकार हुए।

प्राचीन काल में प्राकृत-भाषा में ग्रन्थ-रचना अधिक होती थी। वह परिपाटी अब बन्द होकर सस्कृत में ग्रन्थ-रचना की परिपाटी चल पड़ी। काव्य, नाटक, उपन्यास, साहित्य-ग्रन्थ इस समय सभी सस्कृत-भाषा में तैयार हुए। इस समय के देवालय और अन्य इमारतो को देखने से पता लगता है कि तत्कालीन शिल्पकला उन्नतावस्था में थी। ज्योतिष-शास्त्र की भी पूर्त्ति हुई। सस्कृत के बीजगणित का अनुवाद अरब लोगों ने आठवीं सदी में किया और उन्होंने ही उसका प्रचार भी यूरोप में किया। पंचतत्र-कार विष्णु शर्मा, भट्टि, बाणभट्ट, दडी, भारवि, सुबन्धु, भर्तृहरि इत्यादि सस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि और ग्रन्थकार इसी काल में उदय हुए।

(४) विहङ्गमावलोकन—सरसरी निगाह से भारत के प्राचीन इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि ई० स० पू० ३२६ सिकन्दर के आक्रमण का समय निर्विवाद प्रसिद्ध है। तब ई० स० पू० ६४२ ही बनारस के शिशुनागराज का समय अपने प्राचीन इतिहास में पहला निश्चित समय मानना होगा। इसके पूर्व की घटनाओं का ऐतिहासिक निश्चय अब तक नहीं हो

पाया है। जिस समय शिशुनाग ने मगध में राजगृह को अपनी राजधानी बनाया उस समय से मगध-देश का ऐश्वर्य बढ़ता हुआ गुप्तों के अन्त तक अर्थात् ई० स० ५१० तक कोई ११ सौ वर्ष तक बराबर बना रहा। इस दीर्घ समय में ई० स० पू० ६४२ ४१३ में शिशुनाग के प्रद्योत्-वंश का उदय हुआ, जिसके समय में गौतम बुद्ध और महावीर जैसे प्रसिद्ध पुरुष उत्पन्न हुए।

ई० स० पू० ४१३ ३२२ तक नंदवंश के नौ राजे हुए।

ई० स० पू० ३२२ १८४ तक मौर्य-वंश का उत्कर्ष रहा।

ई० स० पू० १८४ १७३ तक पुष्यमित्र के शुङ्ग-वंश और उसके बाद।

ई० स० पू० ७२—ई० स० २७ तक काण्व ब्राह्मण वंश ने राज्य किया।

ई० स० २७ ३२० तक एक भी चक्रवर्ती वंश न होने से उत्तर में अनेक वर्षों तक कनिष्क का कुशानवंश और दक्षिण में शात वाहन का आंध्रवंश प्रबल रहा।

ई० स० ३२० ४९० तक पाटलिपुत्र में गुप्त वंश का प्राबल्य था।

इसके बाद ई० स० ११९३ में गोरी ने दिल्ली को जीता। इस जीत के पहले तक ७०० वर्ष तक स्थान स्थान में अनेक राज्य एक दूसरे से अलग रह कर फूलते-फलते रहे। इनमें अनेक पराक्रमी पुरुष भी हुए। लेकिन उनमें एक भी चक्रवर्ती राजा न हुआ।

इस प्रकार इस देश में प्राचीन काल से ही छोटे-बड़े अनेक राज्य कायम होते रहे, कहीं कहीं उनमें कोई राज्य प्रबल होकर सार्वभौम बन जाता। सार्वभौम-राज्य के टूटने पर छोटे राज्यों पर उसका कुप्रभाव न पड़ता था। उसी प्रकार युद्ध और आक्रमणों से

लगा। उस समय अफगानिस्तान के पूर्व भाग गांधार-देश व सिन्धु के किनारे पंजाब प्रान्त में राजा जयपाल शासन करता था। इसकी राजधानी पेशावर थी। सुबुक्तगीन ने जयपाल पर चढाई करके उसके राज्य का कुछ भाग छीन लिया। सुबुक्तगीन का लड़का सुल्तान महमूद या महमूद गजनवी बड़ा पराक्रमी निकला। उसने सन् ९९९ से १०३० तक ग़जनी में राज्य कर भारत पर लगातार सत्रह चढाइयाँ कीं। उस समय भारत में राजपूतों के अनेक छोटे छोटे राज्य थे, जिनमें परस्पर ऐक्य न था। महमूद बड़ा शूर और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति होने के कारण राजपूत राजाओं को एक एक करके हरा दिया। यहाँ की अपार सम्पत्ति लूट कर उसने ग़ज़नी में एकत्र की। उस समय इस देश में हिन्दुओं के बड़े प्राचीन और धन-सम्पन्न अनेक मन्दिर थे। इनको विध्वस्त कर और अनेक लड़ाइयों को जीत कर उसने अगणित हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। सन् १०२४ में उसने अपनी अन्तिम आक्रमण-यात्रा में दूर के काठियावाड प्रान्त पर हमला किया। काठियावाड़ के दक्षिण में समुद्रतट पर सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर था। इसकी सम्पत्ति भी अपार थी। इससे इसका नाम दूर दूर तक फैला था। वहाँ की सम्पत्ति को लेने की आशा से महमूद, पंजाब, राजपूताना, गुजरात इत्यादि प्रान्त जीतता हुआ ठेठ सोमनाथ पर चढ आया। लड़ाई में आये हुए हिन्दुओं को हरा कर उसने मन्दिर पर अधिकार कर लिया। उसने अपने हाथ से उस मन्दिर की मूर्त्ति को तोडा, और सब सम्पत्ति लेकर सिंध प्रान्त पार कर वह अपनी राजधानी ग़ज़नी को लौट गया। इस लड़ाई में उसकी फौज के बहुत आदमी मारे गये। इसके बाद महमूद फिर कभी भारत में नहीं आया। उसको



पृथ्वीराज



सुबुक्तगीन

मृत्यु सन् १०३० में हुई। सिन्धु के इस पार मुसलमानों की धाक जमानेवाला यही पहला पराक्रमी मुसलमान सुल्तान है। यह विद्वान् और वीर था, किंतु साथ ही बड़ा लोभी भी था। भारत से अनेक कारीगरों को ले जाकर उनसे इसने गजनी में बड़े बड़े सुन्दर भवन बनवाये।

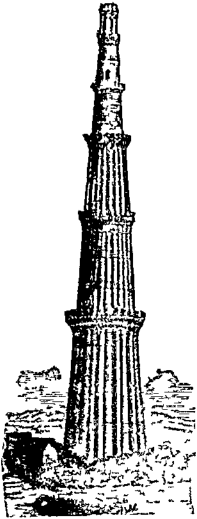
महमूद के वंश में उसके समान पराक्रमी पुरुष अन्य कोई नहीं हुआ। पंजाब मात्र ही गजनी के राज्य में मिला रहा। बाद को अफगानिस्तान के गोरी-घराने के सरदारों ने ग़जनी के राज्य को जीत लिया। इस गोरी घराने में शहाबुद्दीन जो महम्मद गोरी भी कहलाता था, शूर और पराक्रमी पुरुष हुआ। उसने ई० स० ११७६, से ११९५ तक भारत पर सात बार आक्रमण किया। इस समय दिल्ली में पृथिवीराज चोहान और कन्नोज में जयचंद राठोड़ नाम के दो राजपूत राजे राज्य कर रहे थे। इन दोनों राजाओं में परस्पर वैर हो गया था। पृथिवीराज ने पहले महम्मद को हरा कर उसे वापस लौट जाने दिया। लेकिन सन् ११९२ में महम्मद ने दिल्ली पर फिर हमला किया और पृथिवीराज को युद्ध में मार डाला और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इसके बाद जयचंद को हरा कर कन्नौज-राज्य को अपने अधीन किया। यह महम्मद गोरी सन् १२०६ में गजनी में मरा। कुतुबुद्दीन नाम का एक पराक्रमी गुलाम महम्मद के अधीन रह कर भारत के अन्य भागों को जीतने लगा। उसने दिल्ली में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर ठेठ बंगाल की सीमा तक का देश अपने अधिकार में कर लिया। इस तरह सन् १२०० के लगभग भारत में मुसलमानी राज्य पूरी तरह कायम हो गया। कुतुबुद्दीन के वंश को गुलाम-वंश के नाम से मुसलमान इतिहासकार पुकारते

हैं। दिल्ली के दक्षिण में कुतुबमीनार नाम की जो सुन्दर इमारत है उसे कुतुबुद्दीन ने ही बनवाया था।

अल्तमश (सन् १२११-३६ ई०)—सन् १२१० ई० में कुतुबुद्दीन की मृत्यु हुई। उसके बाद उसके बेटे को गद्दी से उतार कर अल्तमश बादशाह बन गया। अल्तमश के समय में चंगेज खाँ ने मध्य-एशिया में मुगल-साम्राज्य का विस्तार किया। उसने भारतवर्ष पर भी आक्रमण करने का विचार किया। परन्तु हिरात में बलवा हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसी समय *सिन्ध और बंगाल के सूबेदारों ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध* विद्रोह किया। परन्तु अल्तमश ने उस विद्रोह को शीघ्र ही दबा दिया। उसने राजपूताने पर भी चढाई की और कई स्थान अपने अधिकार में कर लिये।

अल्तमश बड़ा योग्य बादशाह था। वह विद्वानों का खूब आदर करता था। उसके समय में कितने ही विद्वान् फ़ारस और मध्य-एशिया से हिन्दुस्तान में आये। सन् १२३६ में उसकी मृत्यु हुई।

रज़ियाबेगम (सन् १२३६-४० ई०)—रज़िया बेगम अल्तमश की बेटी थी। स्वयं अल्तमश की यह इच्छा थी कि उसके बाद रजिया ही दिल्ली की अर्धीश्वरी हो कर राज्य का सञ्चालन करे। परन्तु अल्तमश के दरबारियों ने एक स्त्री को इतना अधिकार देना उचित न समझ कर अल्तमश के बेटे को गद्दी पर बैठाया। परन्तु ६ ही महीने के बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद रजिया गद्दी पर बैठी। वह बड़ी बुद्धिमती थी। उसमें राज्य-शासन करने की योग्यता भी ख़ूब थी। वह स्वयं राज्य का सारा प्रबन्ध करती थी। परन्तु एक हबशी पर विशेष प्रेम प्रदर्शित करने



कुतुबमीनार



बलबन के सिक्के

के कारण उसके दरबारी उससे रुष्ट हो गये और उन्होंने विद्रोह किया। रजिया ने उनका विद्रोह दबाने की चेष्टा की, परन्तु वह सन् १२४० में मार डाली गई।

बलबन—रजिया के बाद दो बादशाह और हुए। परन्तु वे बड़े अयोग्य थे। सन् १२४६ में अल्तमश का सब से छोटा लड़का नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा। उसकी बड़ी ही सरल प्रकृति थी। सच पूछो तो राज्य का सारा भार उसके वजीर गयासुद्दीन बलबन पर था। उसने २० वर्ष तक राज्य किया। सन् १२६६ में उसके मरने के बाद गयासुद्दीन बलबन ही गद्दी पर बैठा। वह बड़ा वीर था। विद्रोहियों को वह ख़ूब कठोर दण्ड देता था। उसने मुगलों के आक्रमण रोकने के लिए पुराने किलों की मरम्मत की और नये किले बनवाये। वह विद्वानों का यथेष्ट सम्मान करता था। उसी के समय में फारसी का प्रसिद्ध कवि अमीर ख़ुसरो हुआ। सन् १२८६ में उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पोता कैकुबाद गद्दी पर बैठा। परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण मारा गया।

दिल्ली की गद्दी पर अनेक पठान वंशी सुल्तानों का अधिकार रहा और कालान्तर में अनेक सुल्तानों ने अपना राज्य सारे भारत में फैलाया। इन पठान घरानों की नामावली नीचे दी जाती है।

१-गजनवी-वंश	९९९-११८६	२-गोरीवंश	११८७ १२०६
३-गुलाम-वंश	१२०६ १२८८	४-खिलजीवंश	१२८९-१३२०
५-तुगलक-वंश	१३२० १४१४	६-सैय्यद-वंश	१४१४ १४५०
७-लोदी-वंश	१४५० १५२६	८-मुगल बादशाही शुरू	१५२६

मुगल-बादशाही के स्थापित होने पर भारत के इतिहास में भिन्नता आ गई। ई० स० १००० से सन् १५२६ तक जो जो मुसलमान राजवंश यहाँ हुए वे पठान, अफग़ान अथवा तुर्क नाम से पुकारे जाते हैं। इनमें कई व्यक्ति क्रूर और पराक्रमी हुए और कुछ दुर्बल भी। इसलिए यहाँ सिर्फ प्रसिद्ध प्रसिद्ध सुल्तानों का ही हाल लिखा जाता है।

(३) **पठान-राजवंश, अलाउद्दीन खिलजी**—सारे भारत को जीतनेवाला पहला पुरुष अलाउद्दीन खिलजी था। उसका चाचा जलालुद्दीन दिल्ली में राज्य करता था। अलाउद्दीन ने सन् १२९५ में नर्मदा-नदी को पार कर दक्षिण में प्रवेश किया। उस समय महाराष्ट्र में यादव-राजाओं का शासन था। इन राजाओं का हाल महाराष्ट्र-शासन-काल में (तृतीय भाग) दिया गया है।

यादवों की राजधानी देवगढ (उपनाम देवगिरि) या आज-कल के दौलताबाद में थी। अलाउद्दीन मालवा प्रान्त का सूबेदार था। उसने यह बहाना किया कि मेरे चाचा अर्थात् दिल्ली के बादशाह जलालुद्दीन ने मुझे निकाल दिया है। इसी से अठारह हजार सेना लेकर मैं देवगढ आ गया हूँ। वहाँ के राजा रामदेव-राय यादव ने लड़ाई की कोई तैयारी न की थी। इससे उसने देवगढ-किले में जाकर शरण ली। अलाउद्दीन ने किले को घेर लिया और यह प्रकट किया कि "मैं सिर्फ थोड़ी फौज लेकर आगे आ गया हूँ। मेरी बड़ी फौज पीछे आ रही है।" यह सुन कर रामदेवराय घबरा गया। इधर किले में अन्नादि भरने के एवज में नमक की बोरियाँ भर दी गई थीं। ऐसी स्थिति में रामदेवराय ने अलाउद्दीन से सन्धि का प्रस्ताव किया। इधर रामदेव के लड़के शंकरदेव ने बाहर से आकर अलाउद्दीन की

फौज पर आक्रमण किया और उसका संहार करने लगा। रामदेव राय का एक छोटा सरदार भी अपनी फौज लेकर शकरदेव की सहायता के लिए आता दिखाई दिया। उसकी सेना को दूर से देख कर शकरदेव के सिपाहियों ने यह *अनुमान किया* कि बादशाह की यही फौज पीछे से अलाउद्दीन की मदद के लिए आ रही है। इससे घबरा कर वे लोग लड़ाई का मैदान छोड़ इधर उधर भागने लगे। अंत में दोनो पक्षों में सन्धि हुई और रामदेव राय ने दंड के रूप में अपने राज्य का कुछ अंश अलाउद्दीन को दिया और हर साल कर देने का वचन देकर अपना संकट दूर किया। अलाउद्दीन ने लौट कर अपने चाचा की हत्या की और दिल्ली के तख्त पर बैठ कर खुद सुल्तान बन गया (सन् १२९६)।

अलाउद्दीन ने सन् १२९६ से सन् १३१६ तक राज्य किया। सन् १२९७ में उसने गुजरात-देश जीता और वहाँ के राजा कर्णराय का विनाश किया। वह कर्णराय की स्त्री कमलादेवी व लड़की देवलदेवी को पकड़ कर दिल्ली ले आया। कमलादेवी को उसने अपनी बेगम बनाया। और देवलदेवी का निकाह अपने लड़के के साथ कर दिया। राजपूताना में चित्तौड़ अर्थात् वर्तमान उदयपुर-राज्य पहले बड़ा प्रसिद्ध राज्य था। वहाँ के महाराणा भीमसिंह की स्त्री **पद्मिनी** बड़ी सुन्दर और वीर स्त्री थी। इसको लेने की इच्छा से अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर हमला किया। लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। चित्तौड़ में उसकी हार हुई। राजपूत लोग बड़ी वीरता से लड़े। दोनों पक्षवालों ने बड़ा घमासान युद्ध किया। अलाउद्दीन की ज़रा भी परवा न करते हुए राजपूतों ने अपना स्वातन्त्र्य और राज्य बनाये रक्खा (सन् १३०३-४)।

आया था। इसको सुल्तान ने अपने यहाँ न्यायाधीश का पद दिया था। इसने अपनी यात्रा के वर्णन में महम्मद के शासन का वर्णन दिया है। दौलताबाद का मजबूत किला इसी सुल्तान का बनवाया हुआ है।

फिरोज तुगलक (स० १३५१ ८८)—यह महम्मद का चचेरा भाई था और महम्मद के बाद गद्दी पर बैठा। यह चतुर था और प्रजा पालन के कार्य में दक्ष था। लेकिन हिन्दुओं पर यह भी अत्याचार करता था। सारे राज्य का पूरा सुप्रबन्ध न होता देख इसने बंगाल और दक्षिण की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। खेती के लाभ के लिए इसने यमुना-नदी की एक बड़ी नहर बनवाई। वह नहर आज भी मौजूद है और काम देती है। इसके अतिरिक्त इसने अन्य दो नहरें बनवाईं। लेकिन वे बन्द हो गई हैं। धर्म के सम्बन्ध में इसने हिन्दुओं पर बड़ा अत्याचार किया। इसके मर जाने पर दिल्ली का मुसलमानी राज्य बिलकुल कमज़ोर हो गया। आगे चल कर इतनी कमजोरी बढ गई कि तैमूर लंग के आक्रमण को रोकने का बल किसी में न रह गया था।

(५) तैमूरलंग का आक्रमण (सन् १३९८)—तैमूरलंग मध्य-एशिया के समरक़न्द राज्य में बड़ा प्रबल बादशाह हुआ (१३७०-१४०५)। वह तुर्क-जाति का था। उसने सारे एशिया को अपने वश में कर लिया था। एक युद्ध में उसे ऐसी चोट लगी कि वह एक पैर से लँगड़ा हो गया। इसलिए लोग उसे "लंग" भी कहने लगे। चारों दिशाओं में अपने पराक्रम से अपने राज्य को उसने बढ़ाया। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, अर्थात् वह अपने को सब से बढ-बढ कर बनाना चाहता था। भारत में होनेवाली अन्धा-धुन्धी की ख़बरें जब उसे मिलीं तब उसने भारत को भी अपने



तैमूर लंग

वश में करने की बात सोची। उसने अपने नाती पीर मुहम्मद को भारत में पहले भेजा और बाद को वह स्वयं भारत पर चढ़ाई करने आया। जिस जिस स्थान से होकर वह आया उसको उसने जीता, गाँवों को जलाया, शहरों को जीत कर वहाँ के लोगों को मारा-काटा। इसी तरह वह आगे बढ़ता गया और पानीपत होकर दिल्ली आ पहुँचा। उसके पास लड़ाई में पकड़े हुए इतने अधिक क़ैदी थे कि उनका सँभालना भी उसके लिए मुश्किल था। उसकी समझ में यह न आया कि इतने आदमियों का वह क्या करे। इसलिए १५ वर्ष से अधिक उमरवाले क़ैदियों को उसने क़त्ल करवा दिया। उस समय महमूद तुगलक दिल्ली का सुल्तान था। वह तैमूर के आने से पहले ही दिल्ली से गुजरात की ओर भाग गया। अतएव तैमूर स्वयं दिल्ली का बादशाह बन गया और शहर को लूटा-फूँका। उस समय दिल्ली के रहनेवाले घबरा कर इधर-उधर भागने लगे। तैमूर के सिपाहियों ने उन्हें भी मारा। शहर के गली-कूचे मुर्दों की लाशों से भर गये। इस तरह १५ दिनों तक तैमूर ने दिल्ली में लूट-मार की और अकूत धन लेकर वह वहाँ से निकला। रास्ते में उसने दिल्ली की तरह मेरठ में भी भयङ्कर लूट मार की। जाते समय भारत के अगणित कारीगरों को वह अपने साथ समरकन्द ले गया। पञ्जाब का शासन उसने खिज़िरख़ाँ नामक अपने सरदार को दिया। वही बाद को सैयद घराने का संस्थापक बना।

ईश्वरीय प्रकोप से अनेक प्रकार के अनर्थ मनुष्य-जाति पर होते आये हैं, जिनमें उसका संहार हुआ है। उनमें ही यदि तैमूरलंग का यह आक्रमण भी गिना जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। तैमूर की सन् १४०५ में मृत्यु हुई। स्पेन-देश का एक

के लिए अनेक सरकारी मदरसे खुले। इससे पहले शिक्षा प्रचार का इतना प्रयत्न शासकों की ओर से कभी नहीं किया गया था। देश का व्यापार बहुत कुछ हिन्दू व्यापारियों के हाथ में था। देश में दंगे-फसाद, लड़ाइयाँ, लूट-खसोट, खून-खराबी और राज्य-क्रान्तियाँ इत्यादि सदैव होती रहती थीं। लोग सुख के या राज्य सुधार के उपाय नहीं करते थे। राज्य का विस्तार होना और उसका शीघ्र ही गिर जाना, यही दो बातें इस काल में प्रारम्भ से रहीं। अलाउद्दीन का लम्बा-चौड़ा राज्य महमूद तुगलक के बाद नष्ट हो गया। सन् १३४७ में दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। बाद में धीरे धीरे काश्मीर, सिंध, बंगाल, मालवा, खानदेश इत्यादि प्रान्तों में स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य स्थापित हुए। उनको एक बार फिर साम्राज्य में मिलाने का काम अकबर ने किया। बाद को औरंगजेब की मृत्यु के साथ साथ साम्राज्य के फिर टुकड़े टुकड़े हो गये और उनमें नये राज्यों की स्थापना हुई। राजगद्दी पर बैठते ही राजकुटुम्बवालों को क़त्ल करना अथवा उनको आजन्म कैद में रखना इत्यादि बुरे काम बराबर चलते रहे। हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक झगड़ों के बराबर होते रहने से प्रजा को सुख बिलकुल न मिला। इतने पर भी राज्यक्रान्तियाँ, लड़ाइयाँ, और मनुष्य-संहार राजधानी तथा अन्य बड़े बड़े शहरों से बाहर न पहुँच पाते थे। सारे देश में सामान्य जन-समूह अपने ही उद्योग-धन्धों में निमग्न रहता और कौन आया या कौन गया, इसकी कोई खबर न रखता था। कालान्तर में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक दूसरे से मिल-जुल कर शान्ति से रहने लगे और एक दूसरे का काम एक दूसरे से निकलने लगा। हिन्दू किसान मुसलमान जमींदार के खेतों में

खेती करने लगे और हिन्दू गृहस्थ मुसलमान की जमीन में रहने लगे। गाँवों में पञ्चायत की पद्धति जारी होने से लोगों के पारस्परिक व्यवहार सरलता से चलने लगे।

संसार के इतिहास में ऊपर के बताये ५०० वर्षों का महत्त्व बहुत अधिक है। ईसाई और मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों में परस्पर बड़े भयङ्कर युद्ध हुए। इन युद्धों का नाम क्रुसेड्स् है। इन युद्धों में योरप और एशिया का परस्पर परिचय हुआ। व्यापारियों का आना-जाना—इन दो भूखण्डों में शुरू हुआ। पूर्व का माल योरप में पहुँच गया। मुसल्मानों ने रोमन बादशाही का विध्वंस कर योरप में अपना राज्य स्थापित किया (सन् १४५३)। पौन सौ वर्ष बाद बाबर ने भारत पर आक्रमण किया (१५२६)। इससे थोड़े ही दिनों पहले अमरीका का पता मिला (१४९२)। पुर्तगीज लोग प्रथमत भारत में आये। उसी प्रकार योरप से अनेक साहसी लोग यहाँ आकर यहाँ का वृत्तान्त अपने देश में पहुँचाने लगे। इस प्रकार की यात्राओं का वर्णन आज भी मिलता है। ये वर्णन बड़े ही मनोरञ्जक हैं।

मार्कोपोलो नामक वेनिस का एक व्यापारी तेरहवीं शताब्दी में इस देश में आया था। उसका लिखा हुआ प्रवास वर्णन योरप में प्रकाशित हो गया है और अब भी मिलता है। भारत-देश का भारतीयों द्वारा लिखा हुआ उस समय का इतिहास न मिलने से यह वृत्तान्त थोड़ा-बहुत अन्य देश से आये हुए प्रवासियों के लेखों से मिलता है। उपर्युक्त ५०० वर्षों में योरप में लोग अज्ञान की निद्रा से जाग उठे और ज्ञान प्राप्त कर सुधार के मार्ग पर चलने लगे। छापने की कला का प्रचार उनमें हुआ। उसी प्रकार जहाज चलाने की विद्या भी वहाँ के लोगों ने सीखी। जिन नवीन भूखण्डों का पता उन्होंने लगाया उन पर उन्होंने अपनी

सत्ता स्थापित की ओर धीरे धीरे अपना भी सुधार उन्होंने किया। इसका परिणाम बाद को यह हुआ कि योरपीय लोगों का अन्य लोगों पर प्रभुत्व स्थापित हुआ। लेकिन भारत में पठानों के शासन ने विद्या-कला को शीघ्र ही चोपट कर दिया, जिससे यह देश उत्तरोत्तर अज्ञानान्धकार में डूबता गया। सारांश यह कि योरपीय लोगों की उन्नति और हिन्दुओं की अवनति एक साथ शुरू हुई और पश्चिमी राष्ट्रों ने अपनी ज्ञान-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता सारी पृथिवी पर जमा ली।

(९) स्वभाव-भेद—अरब, तुर्क, मुग़ल और पठान— पठान-वंश के शासन में और आगे चलकर मुगल-बादशाही के समय विदेश से ईरानी, तुर्क, मुग़ल इत्यादि लोगों का प्रवेश इस देश में बहुत हुआ। उनकी संख्या अधिक न थी, तथापि आज-कल की मुस्लिम संख्या यहाँ के भारतीय लोगों की स्वेच्छा से तथा उन्हें विवश करके धर्मपरिवर्तन करने के कारण अधिक बढ़ गई है। सब से पहले के मुसलमान अरब लोग हैं। उनकी विद्या और संस्कृति उच्च वर्ग की थी और उनका स्वरूप भी आकर्षक था। इन अरब लोगों ने मध्य एशिया तक के राज्य जीत लिये और वहाँ के लोगों को मुसलमान बना लिया। तब से उन लोगों में ईरानी, तुर्क, अफ़ग़ान और पठान इत्यादि का भेद उत्पन्न हुआ। इनमें तुर्कों का फैलाव बाद को पश्चिमी एशिया और पूर्व-योरप में अधिक हुआ। उनका कड़ुवा और विध्वंसक स्वभाव वहाँ तथा अन्यत्र प्रसिद्ध है। सातवीं सदी में अरब लोगों ने ईरान जीत लिया। उस समय वहाँ अनेक लोग इस्लाम धर्म में आ गये। केवल कुछ थोड़े स्वधर्म प्रेमी ईरानी धर्म-रक्षा के लिए पश्चिम-भारत में नवसारी के आस पास आकर बस गये। यही आज-कल के पारसी हैं। यह छोटी सी जाति आज भी अपनी नेक नियती



१५ वीं शताब्दी का भारतवर्ष

के कारण समुन्नत है और उद्योग धंधों तथा व्यापार में सब से आगे है। भारत में पठानों के बाद मुगलों का बल बढा। व पहले चीन के उत्तर में मंगोलिया प्रदेश में रहते थे और मूर्त्तिपूजक थे। चौदहवीं सदी में तैमूरलंग से पहले उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। उनका उदार व संरक्षक स्वभाव मुगल बादशाही के समय की उन्नति व ऐश्वर्य का कारण बना। महम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, शहाबुद्दीन गोरी, तैमूरलंग, बाबर और अकबर इत्यादि के परस्पर स्वभाव भेद व भारत के नये बने हुए मुसलमानों के स्वभाव भेद को ध्यान में रखना चाहिए। अर्थात् उनके मूल वंश की पहचान मिटती जाती है। दक्षिण के मुसलमानों में हिन्दुओं की ही अधिक भर्ती है। इसी से मूल के असल मुसलमानों की अपेक्षा परधर्म से आये ये नये मुसलमान अधिक उपद्रवकारी सिद्ध हुए। मलिक काफूर, बहरी निजामशाह, महाबतखाँ, तानाजी मालुसरे को मारनेवाले उदयभान इत्यादि के उदाहरणों से भी यह बात व्यक्त होती है।

(८) बहमनी राज्य (सन् १३४७-१५२६)—केवल दिल्ली के राजवंशों का वर्णन करने से सारे देश के इतिहास का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि अलाउद्दीन खिलजी ने अनेक प्रान्तों को अपने अधीन किया। लेकिन उसके बाद ही वे शीघ्र ही स्वाधीन हो गये, और वहाँ नवीन मुसल्मान-राज्य स्थापित हुए। अन्यान्य प्रान्तों में जोनपुर इत्यादि भी थे। इनमें से दक्षिण में जो राज्य स्थापित हुआ वह बहुत बड़ा था। इस राज्य का नाम बहमनी राज्य था। इस राज्य की राजधानी गुलबर्गा थी। हसन नाम का एक दिल्ली निवासी मुसलमान गंगू नामक ब्राह्मण का गुलाम था। यह ब्राह्मण, महम्मद तुगलक का राज

ज्योतिषी था। उसी के द्वारा सुल्तान के दरबार में हसन का प्रवेश हुआ। बाद को सुल्तान ने उसे जाफरखाँ की पदवी देकर दक्षिण की फोजों का सेनापति बना दिया। महम्मद के शासन काल के अन्तिम भाग मे अनेक राज्यविद्रोह हुए। इसी गड़बड़ में हसन जाफरखाँ ने गुलबर्गा में अपना राज्य स्थापित किया (सन् १३४७) और गग् ब्राह्मण का उपकार मान कर उसे खजाने का काम दिया और अपने राज्य का नाम भी बहमनी राज्य रक्खा। सन् १३४७ १४९० तक डेढ सौ वर्षों में यह राज्य पूरा समुन्नत हो गया। महम्मद गवाँ नामक एक चतुर और नीति निपुण व्यक्ति अनेक वर्षों तक इस राज्य का प्रधान मंत्री रहा। उत्तर के समान तुर्क और अफगान का पारस्परिक कठोर भेद-भाव दक्षिण में नहीं था। सन् १४९० १५२६ के बीच में बहमनी राज्य के भिन्न भिन्न सूबेदार स्वतंत्र हो गये। इससे बहमनी राज्य के पाँच भाग हो गये—१—बीदर में बरीदशाही, २—बरार में इमादशाही, ३—अहमदनगर में निज़ामशाही, ४—बीजापुर में आदिलशाही और गोलकुंडा में कुतुबशाही। इनमें से पहले दो राज्य शीघ्र ही नष्ट होकर पिछले तीन राज्यों मे मिल गये। ये तीनों राज्य बहुत दिनों तक फूले-फले। दक्षिण में विजय-नगर में सन् १३२६ के आसपास एक बलवान् हिन्दू राज्य स्थापित हुआ था। बुक्क, हरिहर, देवराय, कृष्णदेवराय इत्यादि अनेक पराक्रमी राजे वहाँ के शासक हुए। इन्हीं के शासन-काल में माधवाचार्य व सायणाचार्य उनके प्रधान नामांकित व्यक्ति थे। इस हिन्दू-राज्य तथा ऊपर बताये गये मुसलमानी राज्यों के बीच में कुछ मन-मुटाव हो गया। इससे विजयनगर के राजा रामदेवराय के साथ निजामशाह, आदिलशाह और कुतुबशाह ने

मिलकर युद्ध किया और सन् १५६५ की जनवरी में तालिकोट में हिन्दुओं को परास्त किया। इससे विजयनगर का राज्य नष्ट हो गया और वहाँ की सम्पत्ति भी विजयी पक्ष ने लूट ली। बाद को इन तीनों राज्यों को जीत कर मुगल-बादशाहों ने सारे देश पर अपना शासन शुरु करने का भरपूर प्रयत्न किया। इनमें शाहजहाँ ने अहमदनगर की निज़ामशाही सन् १६२० में जीत ली और गोलकुण्डा तथा बीजापुर के राज्यों को औरंगजेब ने सन् १६८६ व ८७ में जीता। अहमदनगर और बीजापुर शहर उस समय कितनी उन्नति पर थे, इसका प्रमाण वहाँ की इमारतों से मिल सकता है। इसी प्रकार निजामशाही के प्रसिद्ध सरदार अम्बर की प्रसिद्धि सर्वतोमुखी है। यह हबशी-जाति का विदेशी बादशाह जहाँगीर के समय में निजामशाह का दीवान था। जब अहमदनगर को अकबर ने हस्तगत किया तब मलिक अम्बर ने खड़की नामक नवीन शहर स्थापित करके उसे निजामशाही की राजधानी घोषित कर दी। इस शहर का नाम बदल कर औरङ्गजेब ने औरङ्गाबाद रख दिया। मलिक अम्बर ने अहमदनगर जीत कर फिर ले लिया और निजामशाही के राज्य को बचा लिया। मालगुजारी की जो पद्धति टोडरमल ने उत्तर में स्थापित की थी वही मलिक अम्बर ने दक्षिण में जारी की। मराठे सरदारों की मदद से उसने रैयत की स्थिति सुधारी। प्रजा हित के अनेक काम कर के यह विद्वान् पुरुष सन् १६२६ में मर गया। उसकी मृत्यु से निजामशाही का एक बड़ा खम्भा टूट गया। इस सकटावस्था में शाहजी भोंसले ने निजामशाही की कुछ दिनों तक रक्षा की। इसका वृत्तांत आगे दिया जायगा।

ज्योतिषी था। उसी के द्वारा सुल्तान के दरबार में हसन का प्रवेश हुआ। बाद को सुल्तान ने उसे जाफरखाँ की पदवी देकर दक्षिण की फौजों का सेनापति बना दिया। महम्मद के शासन काल के अन्तिम भाग में अनेक राज्यविद्रोह हुए। इसी गड़बड़ में हसन जाफरखाँ ने गुलबर्गा में अपना राज्य स्थापित किया (सन् १३४७) और गंगू ब्राह्मण का उपकार मान कर उसे खजाने का काम दिया और अपने राज्य का नाम भी बहमनी राज्य रक्खा। सन् १३४७ १४९० तक डेढ़ सौ वर्षों में यह राज्य पूरा समुन्नत हो गया। महम्मद गवाँ नामक एक चतुर और नीति-निपुण व्यक्ति अनेक वर्षों तक इस राज्य का प्रधान मंत्री रहा। उत्तर के समान तुर्क और अफगान का 'पारस्परिक कठोर भेद भाव दक्षिण में नहीं था। सन् १४९० १५२६ के बीच में बहमनी राज्य के भिन्न भिन्न सूबेदार स्वतंत्र हो गये। इससे बहमनी राज्य के पाँच भाग हो गये—१—बीदर में बरीदशाही, २—बरार में इमादशाही, ३—अहमदनगर में निज़ामशाही, ४—बीजापुर में आदिलशाही और गोलकुंडा में कुतुबशाही। इनमें से पहले दो राज्य शीघ्र ही नष्ट होकर पिछले तीन राज्यों में मिल गये। ये तीनों राज्य बहुत दिनों तक फूले-फले। दक्षिण में विजय-नगर में सन् १३२६ के आसपास एक बलवान् हिन्दू राज्य स्थापित हुआ था। बुक्क, हरिहर, देवराय, कृष्णदेवराय इत्यादि अनेक पराक्रमी राजे वहाँ के शासक हुए। इन्हीं के शासन-काल में माधवाचार्य व सायणाचार्य उनके प्रधान नामांकित व्यक्ति थे। इस हिन्दू-राज्य तथा ऊपर बताये गये मुसलमानी राज्यों के बीच में कुछ मन मुटाव हो गया। इससे विजयनगर के राजा रामदेवराय के साथ निजामशाह, आदिलशाह और कुतुबशाह ने

मिलकर युद्ध किया और सन् १५६५ की जनवरी में तालिकोट में हिन्दुओं को परास्त किया। इससे विजयनगर का राज्य नष्ट हो गया और वहाँ की सम्पत्ति भी विजयी पक्ष ने लूट ली। बाद को इन तीनों राज्यों को जीत कर मुगल-बादशाहों ने सारे देश पर अपना शासन शुरु करने का भरपूर प्रयत्न किया। इनमें शाहजहाँ ने अहमदनगर की निजामशाही सन् १६२० में जीत ली और गोल्कुण्डा तथा बीजापुर के राज्यों को औरंगजेब ने सन् १६८६ व ८७ में जीता। अहमदनगर और बीजापुर शहर उस समय कितनी उन्नति पर थे, इसका प्रमाण वहाँ की इमारतों से मिल सकता है। इसी प्रकार निजामशाही के प्रसिद्ध सरदार अम्बर की प्रसिद्धि सर्वतोमुखी है। यह हवशी-जाति का विदेशी बादशाह जहाँगीर के समय में निजामशाह का दीवान था। जब अहमदनगर को अकबर ने हस्तगत किया तब मलिक अम्बर ने खड़की नामक नवीन शहर स्थापित करके उसे निजाम शाही की राजधानी घोषित कर दी। इस शहर का नाम बदल कर औरङ्गजेब ने औरङ्गाबाद रख दिया। मलिक अम्बर ने अहमद नगर जीत कर फिर ले लिया और निजामशाही के राज्य को बचा लिया। मालगुजारी की जो पद्धति टोडरमल ने उत्तर में स्थापित की थी वही मलिक अम्बर ने दक्षिण में जारी की। मराठे सरदारों का मदद से उसने रैयत की स्थिति सुधारी। प्रजा हित के अनेक काम कर के यह विद्वान् पुरुष सन् १६२६ में मर गया। उसकी मृत्यु से निजामशाही का एक बड़ा खम्भा टूट गया। इस सकटावस्था में शाहजी भोंसले ने निजामशाही की कुछ दिनों तक रक्षा की। इसका वृत्तांत आगे दिया जायगा।

दूसरा अध्याय

मुग़ल-वंश—बाबर और हुमायूँ

ई० स० १५२६-१५५६

(१) जहिरुद्दीन, मुहम्मद बाबर (सन् १५२६-३०)—यह तैमूर-लंग के वंश में तैमूर से छठवीं पीढ़ी में हुआ। इसका जन्म सन् १४८३ में हुआ था। इसके पिता का नाम उमर शेख़ मिर्ज़ा था। जिस समय यह बारह वर्ष का था उसी समय इसके पिता की मृत्यु हुई थी। इससे मध्य-एशिया में फरग़ाना प्रान्त का राज्य बाबर को मिला। लेकिन उसकी उम्र बहुत ही छोटी थी, इसलिए उसके भाई बन्दों ने उसका सर्वस्व छीनकर उसे राज्य के बाहर निकाल दिया। वह कितने ही वर्षों तक वनों में भटकता रहा। अन्त में वह अफ़ग़ानिस्तान में आया और फ़ौजें जमा कर उसने काबुल का राज्य छीन लिया। बाद को वह भारत में आने की राह देखने लगा। इब्राहीम लोदी के शासन-काल में दिल्ली में होनेवाली अन्धाधुन्धी के समाचार उसे मिलते रहते थे। इसलिए उसने पंजाब पर दो बार हमला किया।



हुमायूँ



बाबर

लेकिन इन दोनों में उसकी हार हुई। अन्त में पंजाब के सूबेदार दौलतखाँ लोदी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बाबर से मदद माँगी। इस माँग के पहुँचते ही बाबर ने तीसरी बार भारत में प्रवेश किया और यहाँ आकर उसने सन् १५२६ मे दिल्ली के तख्त पर मुगल-बादशाही की स्थापना की। भारत मे "बादशाह" शब्द का प्रयोग पहले पहल बाबर ने ही किया था। इसके पहले मुसलमान लोग आये अवश्य थे, लेकिन उनका राज्य यहाँ बहुत थोडे दिन टिक पाता था। बाबर द्वारा स्थापित यह बादशाही अढाई सौ वर्ष टिकी और बड़ी समुन्नत दशा में रह कर जगद्विख्यात हो गई। इस मुगल-शासन काल में भारत का इतिहास बिलकुल ही बदल गया। बाबर के पास तोपें, बन्दूकें तथा दूर का निशाना मारने के अन्य शस्त्रास्त्र थे। उसी ने उनका प्रयोग भारत में पहले पहल किया। इन शस्त्रों और बाबर के फौजी ढग के सामने राजपूतों की एक न चल सकी, उनके हाथी सवार इस फौजी ढग के सामने व्यर्थ हो गये।

(२) राजपूतों की हार—मध्य भारत के कुछ उत्तर में आज-कल अनेक रजवाडे हैं। इन रजवाडों में राजपूत राजे राज्य करते हैं, इसीलिए इस प्रान्त का नाम राजपूताना पड गया है। इनके अतिरिक्त अन्य राजपूतों के राज्य नेपाल, काश्मीर, पंजाब, बुंदेलखड, मालवा, काठियावाड इत्यादि में भी हैं। आज-कल के इन भारतीय राज्यों में राजपूत-राज्यों की ही संख्या अधिक है। ये पहले के आर्य-क्षत्रियों के ही वशज हैं। इसी से अपने को ये सूर्यवशी, चन्द्रवशी इत्यादि बताते हैं। सिन्ध, पजाब, कन्नौज, मगध, धारा, अवन्ती इत्यादि राज्य मध्य-युग में प्रसिद्ध क्षत्रिय राज्य थे। इनका नाश धीरे धीरे मुसलमानों ने कर दिया।

सिन्ध के दाहिर, पेशावर के जयपाल, कन्नौज के जयचंद इत्यादि सैकड़ों घरानों के वंशज मुसलमानों के हमलों के सामने झुक गये और बाद को राजपूताना तथा अन्य स्थानों में जा बसे। उदयपुर के सिसोदिया, जोधपुर के राठौड़, जयपुर के कछवाह, इसी प्रकार बुन्देले, हाड़ा, यादव, नैपाल की तराई के गोरखे, इत्यादि अनेक नामों से राजपूत लोग प्रसिद्ध हैं। बाबर ने जिस समय दिल्ली में मुगल-बादशाही की नींव डाली उस समय राजपूतों ने मेवाड़ के राणा साँगा को अपना सरदार बना कर बाबर का अन्तिम भयङ्कर सामना किया। किन्तु इस लड़ाई में राजपूतों को विजय न मिल सकी।

जिस समय बाबर भारत में आया उस समय मेवाड़ का राणा साँगा राजपूतों का अगुआ था। वह शूर, पराक्रमी व चतुर योद्धा था। वह भी बाबर के समान महत्त्वाकांक्षी और बड़ा परिश्रमी था। वह दिल्ली के तख्त को लेकर हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। इसी लिए उसने बाबर के विरुद्ध इब्राहीम लोदी को मदद न दी। वह सोचता था कि तैमूर लंग के समान बाबर भी आक्रमण करके काबुल को वापस चला जायगा। लेकिन उसके देखते ही देखते बाबर ने दिल्ली में ही अपना झंडा सदा के लिए गाड़ दिया। यह देख राणा सांगा ने सब राजपूतों को एकत्र कर बाबर पर हमला किया। आगरे के समीप दस कोस पर सीकरी नाम का एक स्थान है। वहीं राजपूतों और बाबर की लड़ाई हुई। पहले बाबर को अपने जीतने की आशा बिलकुल न रह गई थी। उसकी फौजों के सिपाही लड़ाई के मैदान से राजपूतों को पीठ दिखा कर भागने लगे। अन्त में बाबर ने ईश्वर की दया प्रार्थना करके उसे प्रसन्न

करने के लिए शराब के बरतन फोड डाले और फिर कभी शराब न पीने की शपथ की। उसने अपने सिपाहियों से कहा कि "अब अपने प्राण तो बच नहीं सकते। अत पराक्रम दिखला कर मरना अच्छा है"। कुछ दिनो तक दोनों पक्षों की फौजें पडाव डाले एक दूसरे के सामने अडी रहीं। ऐसे मौके पर यदि राणा साँगा ने कहीं मुगलों की फौजों पर एकदम हमला कर दिया होता तो वह अवश्य ही जीतता, लेकिन ऐसा न करने से बाबर को तैयारी करने का मौका मिल गया। अन्त में सन १५२८ के मार्च महीने की १६ वीं तारीख को अन्तिम लडाई हुई। लड़ाई के शुरू होते ही राणा सागा का एक दरबारी रूठ कर बाबर से जा मिला। लड़ाई अभी शुरू ही हुई थी कि राणा साँगा घायल हुआ और उसके अनेक साथी मारे गये। इससे राजपूतों के पैर उखड गये, और बाबर की जीत हुई। बाबर ने राजपूतों के सिर काट कर एक ढेर तैयार किया और "गाजी" (अर्थात् काफिरो को मारनेवाला) की पदवी स्वय धारण की। यही पदवी बाद को मुगलों द्वारा दिये गये सनद पत्रों में और उनके चलाये गये सिक्को में नियमित रूप से अकित की जाती थी। सीकरी की लड़ाई के बाद ही बाबर ने फौरन बुन्देलखड में चदेरी का किला ले लिया और फिर बिहार प्रान्त को अपने राज्य में मिला लिया। राज्य में शान्ति स्थापित करने के पूर्व ही बाबर अचानक बीमार पडा और आगरे में सन् १५३० में मर गया।

बाबर ने भारत में केवल पाँच ही वर्ष शासन किया, तथापि शासकों की गिनती में वह सब से बढ़ कर गिना जाता है। बचपन से ही उसने अनेक सङ्कटों का सामना किया था। वह

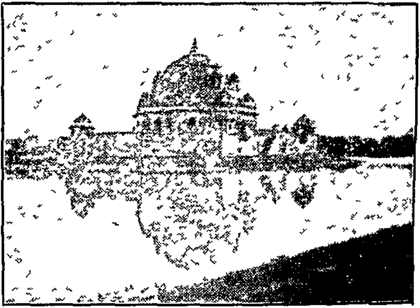
ने भी तीन बार हुमायूँ से विद्रोह किया, इसलिए हुमायू
उसकी आँखें निकलवा लीं। इसके कुछ वर्ष बाद मक्के जाते स
कामराँ मर गया (सन् १५५७)। मिर्ज़ा अस्करी को हुमायू
देश निकाले का दण्ड दिया। वह भी मक्के जाते समय मर
(१५५८)। हुमायूँ ने कामराँ को क़ैद कर के काबुल में अ
शासन शुरू किया। बाद को भारत में विद्रोह फैलने के स
चार सुन हुमायूँ ने सन् १५५५ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की
अपना खोया हुआ राज्य वापस लौटा लिया।

(४) सूरवंश (सन् १५४०-५५), शेरशाह (१५४०-१५४

हुमायूँ को हरा कर शेरख़ाँ ने दिल्ली में प्रवेश किया।
सूरवंशी पठान था। अत यह और इसके बाद के इसी वंश के अ
बादशाह सूरवंशी कहे जाते हैं। यह पठानी शासन केवल १०
तक रहा। शेरशाह पराक्रमी सिपाही और प्रवीण शासक
फ़ौजी और राज्य करने के काम में दोनों में ही वह सब
अगुआ था। भिन्न भिन्न स्थानों के राजपूत राजे उस समय
स्वतन्त्र थे और अपने स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए प्रयत्न कर
थे। उन्होंने उस समय तक भी मुसलमानों से हार न मानी
भूपाल के पास रायसीन नामक स्थान है। यहाँ के ठ
प्राणमल ने ६ मास तक बड़े पराक्रम के साथ शेरशाह का सा
किया। उसके वृत्तान्त को पढ कर चित्त चकित हो उठता
मारवाड़, चित्तौड, रणथम्भौर इत्यादि सभी स्थानों में शेरशाह
वैसी ही कठिन लडाइयाँ लड़नी पड़ीं। लेकिन सन् १५४५
कालिंजर किले पर कब्ज़ा करने में एक सुरङ्ग के फट पड़ने
वह मर गया। उसने पाँच वर्ष तक राज्य किया। उसका अ
काश समय लड़ाई में बीता। इतने पर भी उसने प्रजा के कल



शेर शाह



शेरशाह का मक़बरा

के लिए कई कार्य किये। रैयत से कर वसूल करने की पद्धति शेर शाह ने शुरू की। इसी पद्धति के अनुसार बाद को अकबर ने भी काम किया था। बङ्गाल से पेशावर तक दो हजार मील की लम्बी एक सड़क शेरशाह ने तैयार कराई और उसके दोनों ओर पेड़ लगवाये। प्रजा के लाभ के लिए घोड़ों पर डाक भेजने का प्रबन्ध किया। भिन्न भिन्न स्थानों में अन्न-क्षेत्र और धर्मशालाएँ खोल कर यात्रियों का कष्ट दूर किया। राज्य भर में तोल और माप के बँटखरे और पैमाने स्थिर किये। रुपये का सिक्का भी शेरशाह ने चलाया था। सारांश यह कि अफगान घरानों में शेरशाह ही एक ऐसा शासक हुआ है जिसका शासन उच्च कोटि का कहा जा सकता है। यदि वह कुछ दिन और जिन्दा रहता तो उसके द्वारा अन्य अनेक अच्छे कार्य होते। उसके लड़के सलीमशाह ने ९ वर्ष तक सुख से राज्य किया। वह अपने पिता के समान परा क्रमी न था, लेकिन प्रजा हित में अवश्य समान था। वह सन् १५५४ में मरा। इसके बाद मुहम्मदशाह सूर ने शासन करना शुरू किया।

हेमू नामक एक हिन्दू बड़ा चतुर व्यक्ति था। यही महम्मद का मन्त्री था। महम्मदशाह दुर्व्यसनी और दुर्बल था। उसका शासन ठीक ठीक नहीं जमा। अत हेमू ने अपने मालिक का काम बड़ी सावधानी से किया। इसी बीच में हुमायूँ तथा उसका लड़का अकबर और उसका विश्वस्त सरदार बैरामखाँ ने मिल कर दिल्ली पर चढाई की। यह लड़ाई सरहिन्द में हुई। इसमें हेमू की पूरी हार हो गई और दिल्ली के तख्त पर हुमायूँ का फिर से अधिकार हो गया।

इस प्रकार के कठोर परिश्रम करने और अपार कष्ट सहने के

का प्रधान हेमू, पठानों की नौकरी में रहने से, हिन्दू-पद पादशाही का बड़ा पक्षपाती था। उसने विक्रमाजित नाम रखकर फ़ौज को इकट्ठा किया और तोपख़ाना जमाया। अकबर की धाक जमने से पहले ही उसने उसको हरा कर आगरे पर अपना अधिकार कर लिया। तब तो अकबर भी पंजाब की ओर से उसका सामना करने को आया। दोनों की मुठभेड़ ता० ५-११-१५५६ को पानीपत के मैदान में हुई। बड़ी घमासान लड़ाई हुई। हाथी पर बैठकर सब-से आगे हेमू लड़ने लगा। इतने में शत्रु का एक तीर उसकी आँख में जा लगा। इसलिए वह गिर पड़ा। इसी समय बहरामख़ाँ ने उसका सिर काट लिया। यह पानीपत की दूसरी लड़ाई है। इस विजय से अकबर की धाक जम गई। बाद में बैराम और अकबर में परस्पर अनबन हो गई। अकबर का स्वभाव नरम था, लेकिन बैरामख़ाँ का स्वभाव बड़ा कड़ा था। अकबर जैसे जैसे बड़ा होता गया, तैसे तैसे उसको अधिक अधिकार बैरामख़ाँ ने न दिये। इसलिए अकबर ने बैरामख़ाँ को दूर कर स्वयं सब अधिकार उससे छीन लिये। इससे बैराम ख़ाँ नाराज हुआ और उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। लेकिन अकबर की फ़ौज ने उसको परास्त करके अकबर के सामने ला खड़ा किया। अकबर अपनी उदारता से विवश होकर उसे कुछ काम देता, लेकिन बैरामख़ाँ ने मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। अकबर ने उसे मक्का जाने की आज्ञा दे दी। जिस समय वह मक्का जाने के लिये सूरत पहुँचा, वहाँ उसको किसी ने मार डाला (सन् १५६१)। बैरामख़ाँ के लड़के को अकबर ने अपना बड़ा सरदार बनाया। इसी प्रकार आदमख़ाँ इत्यादि अनेक सरदारों के विद्रोहों को



सम्राट् अकबर



टोडरमल



मानसिंह

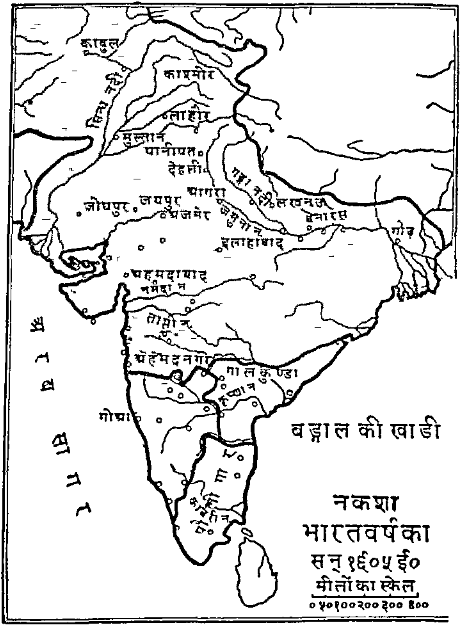
शान्त कर अकबर ने राज्य में शान्ति स्थापित की।

(२) अकबर के जीते हुए प्रदेश—राजधानी में शान्ति स्थापित करके अकबर भिन्न भिन्न प्रान्तों को एक एक करके बड़ी सावधानी के साथ जीत कर अपनी सत्ता को एक छत्री करने के उद्योग में लगा। (१) राजपूताना—सन् १५६१ से १५६७ तक उसने राजपूतों को जीतने का उद्योग किया। किन्तु चित्तौड़ के राना ने उसकी शरण लेना स्वीकार न किया। इसलिए सन् १५६७ में अकबर ने चित्तौड पर हमला किया। उस समय राजपूतो ने बडी बहादुरी के साथ उसका सामना किया। राना उदयसिंह सुरक्षित स्थान में चला गया और उसके सेनापति जयमल पर अकबर ने गोली चला कर उसे मार डाला। तब अपनी रक्षा कठिन देख कर सब राजपूतों ने अपनी स्त्रियो से जोहर-व्रत* करा कर, स्वय शत्रु पर टूट कर प्राण त्याग किये। इतना होने पर ही चित्तौड़ अकबर के हाथ में आ सका। तो भी उदयसिंह ने अकबर की अधीनता नहीं स्वीकार की। उदयसिंह का लड़का प्रतापसिंह विलक्षण प्रतापी था। राजपूतों के साथ युद्ध करने

* युद्ध में या तो विजयी बनना या मर जाना ही राजपूतों की प्राचीन धर्म-मर्यादा है। वे युद्ध में शत्रु को पीठ नहीं दिखाते थ। विजय मिलने की आशा न रहने पर, अपने पीछे स्त्रियों की दुर्दशा होने की आशका से वे उन्हें शत्रु के हाथ में न पडने देने के लिए, एक बड़े अग्निकुण्ड में उनको पटक कर स्वय केशरिया कपड़े पहन शत्रु से युद्ध करते हुए अपने प्राण दे देते थे। इस प्रथा का नाम जोहर-व्रत है। मेवाड के राजपूतो ने यह जोहर व्रत अलाउद्दीन के समय में सन् १३०४ में, गुजरात के बहादुरशाह के समय में १५३६ म और अकबर के समय में १५६७ में इस प्रकार कुल तीन बार जोहर-व्रत किया है।

में कुछ तत्व न देख कर अकबर ने उन्हें अपने वश में करने का एक उपाय यह किया कि उनके घराने में अपना वैवाहिक संबन्ध जोड़ कर उनको अपना बना लिया। शुरू में सन् १५६१ में वह जयपुर गया। वहाँ के राजा भारामल ने अपनी लड़की अकबर को ब्याह दी। भारामल के लड़के भगवानदास को अकबर ने अपनी फ़ौज में बड़ा सरदार बनाया। मारवाड़ का राजा मालदेव भी अकबर की शरण में आ गया। उसकी लड़की जोधबाई के साथ भी अकबर ने विवाह किया। उसी की कोख से सलीम पैदा हुआ। जयपुर के भगवानदास की लड़की मानबाई का ब्याह सलीम के साथ कर दिया। लेकिन उदयपुर के राना ने मुसलमानों के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध न जोड़ा।

(२) गुजरात—सन् १५७२-७३ में अकबर ने गुजरात पर चढ़ाई करके अनेक लड़ाइयाँ जीतीं, और अहमदाबाद शहर पर अधिकार करके वहाँ अपना सूबेदार नियत किया। (३) बंगाल में दाउदखाँ स्वतंत्र शासक बन रहा था। उसे अकबर की फौजों ने हरा कर मार डाला और बंगाल, बिहार व उड़ीसा पर अकबर का शासन शुरू किया। यह कार्य राजा टोडरमल ने किया था। उसने तथा उसके बाद कुछ दिनों में राजा मानसिंह ने बंगाल का शासन सुव्यवस्थित कर दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक कोई लड़ाई न हुई। इस बीच में अकबर ने राज्य के भीतरी प्रबन्ध को सुधारा, और आगरा व सीकरी में सुन्दर इमारतें बनवाईं। (४) काबुल—सन् १५८५ में अकबर ने काबुल प्रांत जीता और वहाँ का शासन राजा भगवानदास को दिया। (५) काश्मीर—सन् १५८७ में उसने राजा भगवानदास और कासिमखाँ



काबुल
सिन्धु नदी
काश्मीर
लाहौर
मुल्तान
पानीपत
देहली
आगरा
गङ्गा नदी
लखनऊ
बनारस
गौड़
जोधपुर
जयपुर
अजमेर
जमुना न
इलाहाबाद
अहमदाबाद
नर्मदा न
ताप्ती न
अहमदनगर
गोलकुण्डा
कृष्णा न
गोआ
कावेरी न
अरब सागर
बङ्गाल की खाडी
नकशा
भारतवर्ष का
सन् १६०५ ई०
मीलों का स्केल
० ५० १०० २०० ३०० ४००

ी फोज देकर काश्मीर पर अपना अधिकार जमाने के लिए
जा। (६) सिन्ध—सन् १५९२ में अकबर ने सिन्ध प्रान्त को
पने अधीन कर लिया (७) कधार–इसी तरह सन् १५९४ मे
धार जीतने पर अफगानिस्तान से नर्मदा तक अकबर का राज्य
क छत्री बन गया।

(८) दक्षिण-भारत—सन् १५९५ के लगभग दक्षिण म
हमदनगर में गद्दीनशीनी के झगडे खडे हुए। मौका पाकर
कबर ने उस राज्य पर अपने लडके मुराद को फोज देकर
जा। वहाँ की चतुर बेगम चाँदबीबी उस समय शासन
र रही थी। उसने मर्दो की पोशाक पहन कर स्वय युद्ध किया।
ह खबर मिलते ही अकबर ने अपने विश्वास पात्र सरदार अबुल
जल को अहमदनगर भेजा और पीछे स्वय दक्षिण की ओर
ा। भारत की शूर और पराक्रमी स्त्रियों में चाँद बीबी भी
नी जाती है। यह हुसेन निजामशाह की लड़की और अली
दिलशाह की बेगम थी। अपने पति के मरने पर इसने कुछ
नों तक बीजापुर का शासन किया। किंतु बाद को वजीर के
थ उसकी अनबन हो जाने के कारण वह सितारा के किले में
हो गई। कुछ दिनों बाद उसकी बेटी का विवाह निजामशाह
साथ हुआ। उसके साथ वह अपने पिता के घर अहमदनगर
ई। उस राज्य को जीतने का प्रयत्न अकबर ने पाँच-छ वर्ष
क बराबर किया। लेकिन बादशाह अपनी जिन्दगी में उसे न
त सका। अबुलफजल ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया
र अहमदनगर पर चढाई की। इसी बीच में चाँद बीबी मार
ली गई और अहमदनगर का किला मुगलों क हाथ में आ

गया (१६००)। तथापि निज़ामशाही राज्य पर उनका अधिकार न हो सका। अपने बड़े लड़के सलीम के विद्रोही बन जाने के समाचार को पाकर अकबर ने तुरन्त युद्ध रोक कर आगरे की यात्रा की। इस चढ़ाई में अकबर ने केवल बरार और खानदेश को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

(३) अन्त-काल की निराशा—अकबर का प्रारंभिक जीवन-काल जैसा समुन्नत बीता, वैसा ही उसका अन्तिम समय अनेक चिन्ताओं से व्यथित होने के कारण दु ख में बीता। उसके तीन लड़के थे। सलीम, दानियाल और मुराद। सलीम का जन्म सन् १५६९ में हुआ था। अन्य लड़के उससे छोटे थे। ये लड़के वीर, उदार और चतुर थे। लेकिन सब को शराब पीने का शौक था। वे भिन्न भिन्न प्रान्तों के सूबेदार थे, इससे उन्हें अनेक लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ी थीं। सन् १५९९ में मुराद की मृत्यु हुई। बाद को दानियाल पर अकबर की प्रीति अधिक देख कर सलीम को सन्देह हुआ कि बादशाह के मरने के बाद दानियाल ही गद्दी का अधिकारी बनेगा। यह सोचकर जिस समय अकबर दक्षिण में अहमदनगर के युद्धों में फँसा था, सलीम ने ठीक उसी समय मौक़ा देखकर उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया और स्वयं राजचिह्न धारण कर लिये। यह खबर पाकर अकबर तुरंत आगरे वापस आया और अबुलफजल को दूसरे रास्ते से आकर सलीम को पकड़ने के लिए लिखा। अबुलफजल बड़ा बुद्धिमान पुरुष था। परंतु सलीम को संदेह था कि पिता को मुझसे नाराज करानेवाला अबुलफ़ज़ल ही है। अत जिस समय अबुल फ़ज़ल बुंदेलखंड की राह होकर आगरे की ओर आ रहा था, सलीम ने एक आदमी द्वारा उसकी हत्या करवा दी

(१६०२)। अपने प्राण प्रिय सरदार की हत्या अपने ही पुत्र द्वारा हुई देख वह अत्यत दुःखी हुआ। उसे जीवन में अब कोई आनन्द न आने लगा। सलीम का मनसब उसने बिलकुल तोड़ दिया। सन् १६०४ में उसके दूसरे पुत्र दानियाल की मृत्यु हुई। इस प्रकार एक दुःख के बाद दूसरा दुःख उसके शरीर को क्षीण करने लगा। अन्त में अपना भी मृत्यु काल समीप आया जान उसने प्रत्येक बात का निर्णय कर दिया। सभी दरबारियों को एकत्र किया और सलीम को सदुपदेश देकर ४ बातें बताई। इसके बाद यह पराक्रमी जगद्विख्यात् मुग़ल-सम्राट् ५० वर्ष शासन करके ६२ वर्ष की अवस्था में सन् १६०५ की १५ अक्तूबर को आगरे में मर गया। इसकी कब्र आगरे के समीप ही सिकंदरे में है। यह "अकबर का मकबरा" के नाम से प्रसिद्ध है।

(४) स्वभाव और बुद्धिमानी का रहस्य—पृथ्वी पर जो प्रसिद्ध राज पुरुष आज तक हुए हैं उनमें अकबर की भी गणना है। वह मिलनसार और शासन कार्य में परम पटु था। उसका डील-डोल न बहुत लम्बा और न बहुत छोटा था। उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था और चेहरे पर दमक थी, जिससे उससे मिलनेवाले पर उसका आतंक बैठ जाता था। शरीर में शौर्य भी कूट कूट कर भरा हुआ था। एक बार एक पागल हाथी अपने महावत को मार कर छूट पड़ा। इस हाथी की पीठ पर अकबर एक ही छलांग में चढ़ गया और तुरन्त उसे अपने वश में कर लिया। साँड़िये पर बैठ कर वह लम्बी से लम्बी यात्रा अनायास कर लेता था। यद्यपि विद्याभ्यास उसको अधिक न था, तथापि अनेक प्रकार के ग्रन्थों को वह दूसरों से पढ़वा कर सुनता था। इस प्रकार वह बहुश्रुत बन

गया था। केवल चार घंटे तक सोता था, बाकी समय में वह कुछ न कुछ कार्य किया ही करता था। राज्य का प्रत्येक भाग वह स्वयं आकर देखता था। उसका रहन-सहन भी बड़ा सादा था। वह दयालु था। इससे लोगों पर उसका प्रभाव भी बहुत पड़ता था। प्रतिदिन एक बार वह दरबार अवश्य करता और लोगों की कही हुई बातों को ध्यान मे रखता था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति उससे भेंट कर सकता था। मर्दाने खेल, शिकार, बाग़-बगीचे, चित्रकला, सगीत इत्यादि विषयों का उसे बहुत चाव था। अकबर ने एक एक करके अनेक प्रदेश जीत कर अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया था। केवल इसी से उसकी योग्यता का परिचय नहीं मिलता, बल्कि सरलता से राज्य-व्यवस्था चलाने के लिए और शत्रु को शीघ्र वश में करके शान्ति स्थापित करने में उसने अपनी बुद्धि का परिचय दिया था। भिन्न भिन्न प्रदेशों को जीतने का उद्योग करते हुए लोक सुख की वृद्धि करके, राजा के परम कर्तव्य को पूरा करने में अकबर ने प्रारंभ से ही उत्साह दिखाया था। पहले लगभग ४०० वर्ष तक अफगानों का शासन भारत पर रहा। इतने समय मे अनेक प्रकार के रक्तपात और अनर्थ होने से लोग दीन व दुखी बन गये। अफगानों का स्वभाव ऐसा क्रूर और विध्वसक था कि वे देश को केवल अपने सैन्य-बल पर ही अपने अधीन रख सके थे। उन्होंने प्रजा के सुख का कोई ध्यान नहीं रक्खा था। बाबर मुगल था। उसके आते ही स्थिति बदल गई और अकबर ने पिछली भूलों को समझ कर उन्हें दूर किया और प्रजा के सुख के लिए नवीन योजनायें कीं। उसके इन कामों से उसके शासन की जड़ जम कर चिरस्थाई बन गई। रैयत के साथ ममता से और निष्पक्ष दृष्टि से व्यवहार करके

उसने उनके सुख को बढाया। इसीलिए लोगों के मन में बादशाह के प्रति पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो गई। कालांतर में "दिल्ली राजधानी" और "मुग़ल बादशाह" इन्हीं नामों में लोगों की पूज्य बुद्धि इतनी बढी कि आगे चल कर मराठों ने जब दिल्ली लेने का प्रयत्न किया, तब राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को उनका यह काम न रुचा। इस प्रकार का पूज्य भाव रैयत के चित्त में उत्पन्न करके अकबर ने भारत में नवीन युग शुरू कर दिया था। यही उसके शासन की विलक्षणता है। इसी कारण उसने (१) भिन्न भिन्न दूर दूर के प्रदेश जीत कर उन सब को एक साम्राज्य शासन के सूत्र से बाँध दिया। (२) हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्ध में भेद बुद्धि न रख कर सरकारी नौकरियाँ और न्याय सब को एक समान मिलने का प्रबन्ध किया। (३) "जजिया"* नाम का कर माफ कर के हिन्दुओं के मन में मुस्लिम राज्य का सदैव भाले के समान कसकना रद्द कर दिया। इसी प्रकार उसने तीर्थों में यात्रियों पर लगनेवाले कर भी माफ कर दिये। (४) धर्म के सम्बन्ध में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने के लिए सब धर्मों से उत्तमोत्तम तत्त्वों का संग्रह करके नवीन धर्म की स्थापना की। इसका वर्णन आगे किया जायगा। (५) राजपूत राजे भारत के प्राचीन क्षत्रिय थे अतः अकबर जानता था कि जब तक ये न मिलाये जायँगे तब तक उसकी शक्ति चिरस्थायी नहीं रह सकती। इसी लिए उसने राजपूतों के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित कर उनको

---

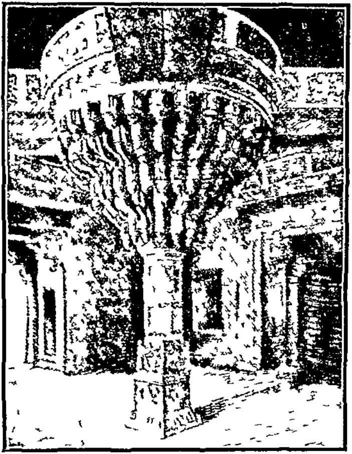
* मुसल्मान लोग विधर्मी लोगों को अपने धर्म में लाने के लिए अपने सब अधिकार देते थे। धर्मान्तर न करने पर उनके संरक्षण के लिए वे प्रति व्यक्ति पर कर लगाते थे। इसी का नाम जजिया था। यह कर वर्ग के अनुसार प्रतिवर्ष १५) रुपये से लेकर ६०) रुपया तक लगता था।

अपने दरबार में ऊँचे ऊँचे पद दिये। (६) राजा टोडरमल अवधप्रान्त का एक क्षत्रिय था, जो शेरशाह के पास रह कर उन्नति कर चुका था। अनेक प्रान्तों में सूबेदार रह कर उसने वहाँ मालगुज़ारी की नई पद्धति जमा दी। पहिले उसने सब जमीन नपवाई। उसके बाद उपजाऊ और ऊसर विभागों में ज़मीन बाँट दी। और जो खेत जितना अधिक उपजाऊ था, उतना ही अधिक उस पर लगान लगा दिया। यह कार्य टोडरमल ने बड़े नियम के साथ किया। आगे चल कर साम्राज्य भर में इसी पद्धति का प्रचार हुआ। (७) सारे साम्राज्य के १६ भाग किये गये। यह प्रत्येक भाग "सूबा" के नाम से प्रसिद्ध था। सूबे के भीतरी भाग "सरकार" कहलाये और सरकार के छोटे छोटे हिस्से परगने कहे जाते थे। मालगुज़ारी की वार्षिक आय २० करोड़ रुपये होती थी। जकात-चुङ्गी इत्यादि से भी वर्ष भर में २० करोड़ रुपये वसूल होते थे। इस तरह अकबर के साम्राज्य में ४० करोड़ रुपया प्रति वर्ष खजाने में आता था। (८) फौज का सुधार कर के दस से लेकर १० हजार तक के सवारों का प्रबन्ध करनेवाले मसबदार उसने नियत किये। और उनका काम नियत कर उन्हें वेतन दिया जाने लगा। इस प्रकार के मंसबदारों की कुल ३३ श्रेणियाँ थीं। (९) प्रजा सुधार के विषय में अकबर ने अनेक उपाय किये। उस समय लड़ाई में पकड़े गये आदमियों को काटने तथा बच्चे स्त्रियों को ग़ुलाम बना कर बेचने की प्रथा जारी थी। यह प्रथा अकबर ने बिलकुल बद कर दी। लड़के-लड़कियों का विवाह बड़ी उम्र में करने का नियम बनाया। विधवाओं के पुन र्विवाह को उत्तेजन दिया। किसी भी स्त्री को बलपूर्वक सती हो जाने के लिये कोई व्यक्ति लाचार न करे—इसका उसने प्रबन्ध

किया। मुसलमानों को मन चाहे रूप में अपना ज़नानख़ाना बढाने की मनाही की। राज्य में पाठशालायें खुलवाई। न्याय के काम में घूस देने अथवा आदमी या जानवर की बलि देने की प्रथा बिलकुल बन्द कर दी। सभी के प्राणों के, मालमत्ता के, और हिन्दू मन्दिरों की सम्पत्ति तक के सरक्षण का काम सरकार ने अपने ऊपर लिया, जिससे सभी निश्चिन्त होकर अपने अपने धन्धों में स्वतन्त्रता पूर्वक और निर्भय होकर लगें—इसका उसने पूरा प्रबन्ध किया। (१०) अबुलफजल ने "आईने अकबरी" अर्थात् "अकबर के कानून" नाम की एक उत्तम पुस्तक लिखी। उसमें अकबर-द्वारा किये गये सुधार व प्रत्येक नियम का विस्तृत वर्णन किया गया है। साराश यह कि राजा लोगों का पालन और रक्षण करने के लिए परमेश्वर द्वारा नियत किया हुआ प्रतिनिधि है। अपने इस कर्त्तव्य की उच्च भावना निश्चय रूप से चित्त में रख कर अकबर ने कार्य किया था। इसी लिए उसका नाम ससार के इतिहास में अजर-अमर हो गया।

(५) अकबर का धर्म—अकबर का नाम चिरस्थायी हो जाने का एक और कारण यह भी है कि उसने "दीन-ए-इलाही" नाम का धर्म स्थापित किया। उसने देखा कि हिन्दू-मुस्लिमों के एक धर्मी हुए बिना प्रजा में ऐक्य नहीं हो सकता और बिना ऐक्य के राज्य का मजबूत बनना सम्भव नहीं। इस ऐक्य के लिए अकबर ने एक नये धर्म की स्थापना की। आगरे की पाठशाला के अध्यापक शेख मुबारक (सन १५०६-९३) के अबुलफैजी (जन्म सन् १५४७) व अबुलफजल (सन् १५५१-१६०२) नाम के दो पुत्र थे। ये दोनों ही व्यक्ति बडे विद्वान् और विचारवान्

थे, अपने विचारों के पक्के थे। इन दो अद्वितीय पुरुषों
सहायता मिलने से सन् १५७५ से २५ वर्ष तक अकबर ने नवे
धर्म की सिद्धि प्राप्त की। इनमें फैजी विद्वान् होने के अल
विरक्त भी था। उसने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फार
में किया था। फजल विद्वान् भी था और साथ ही साथ
राजनीतिज्ञ और प्रबन्धक भी था। उसकी और अकबर की ऐ
मित्रता हुई कि आगे के २० वर्षों के प्रत्येक महत्त्व के कार्य
अकबर उससे अवश्य सहायता लेता। पहले अपने स्तुत्य उद्दे
पर लोगों का विश्वास जमाने के लिए अकबर ने मुसलमान, हिन्दु
पारसी, ईसाई इत्यादि धर्मों के बड़े बड़े विद्वान् उपदेशक दूर दू
देशों से आगरे में बुलाये और उनके साथ धर्म के विष
में वादविवाद शुरू किया। इस वादविवाद के लिए उसने ए
बड़ा सुन्दर महल बनवाया था। प्रति गुरुवार की रात को सभ
की जाती और उसमें वादविवाद होता। अकबर और फज
तटस्थ होकर प्रत्येक की बात को सुनते। कुछ समय में भि
भिन्न धर्मों के उदात्त तत्त्वों को एकत्र करके अकबर ने अपने नवी
धर्म की स्थापना की। उसमें मुसलमानी धर्म से बड़ा अन्त
पड़ गया। पारसियों की अग्नि-पूजा और हिन्दुओं की सूर्यो
पासना को उसने अपने धर्म में स्थान दिया। काल्पी का रहने
वाला प्रसिद्ध ब्राह्मण दरबारी और अकबर का मित्र राजा बीरबल
भी इस काम में सहायता देता था। अकबर स्वयं इस नवीन
धर्म का प्रवर्तक बना। इस धर्म का प्रचार हुआ। लेकिन वह
चिरस्थायी न रहा। राजा बीरबल काश्मीर की चढाई में मरा
टोडरमल व अन्य साथी भी चल बसे, अबुलफजल मारा गया
इससे अकबर की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। अन्त
के दो-तीन वर्षों में उसका चित्त ठिकाने न रहा, इसीलि



इबादतखाना, फतहपुर सीकरी

उसकी मृत्यु के साथ ही साथ इस धर्म का लोप* हो गया। तथापि फैजी आर फजल के इन प्रयत्नों मे हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक धार्मिक द्वेष बहुत कुछ घट गया और वे मिल-जुल कर रहने लगे। आज-कल की परिस्थिति में हिन्दू मुसलमानों के झगड़े भडक जाने के समय एक दूसरे के साथ व्यवहार करने के तत्त्व पर किस शैली से काम लिया जाना चाहिए—इस सम्बन्ध म अकबर का यह प्रयत्न दोनों ही पक्षों के लिए अनुकरणीय है।

अकबर का सम्पूर्ण शासन-काल इतना समुज्वल है कि उसके समय का पृथिवी पर इतना सुधरा हुआ सुखी और बलवान् राज्य दूसरा कोई न था। अकबर के समकालीन इग्लैंड में महा रानी इलेजवेथ थी। इसका भी शासन प्रजा के लिए हितकर और स्मरणीय था। अकबर के दरबार में अनेक पुरुषों का उदय हुआ। वैरामखाँ, टोडरमल, बीरबल, अबुलफजल, फैजी, जयपुर का राजा मानसिंह, तानसेन, मुल्ला दो प्याजा और हकीम हुमाम इत्यादि अकबर के नवरत्न थे। इसी प्रकार बदाउनी नामक एक विद्वान् इतिहासकार उसके पास था। उसका लिखा ग्रन्थ बड़ा ही मनोरजक है। अँगरेजी राज्य में विरला ही व्यक्ति लार्ड सिनहा के समान प्रान्त का गवर्नर बन पाता है। लेकिन अकबर के समय में भिन्न भिन्न प्रान्तों में अनेक हिन्दू प्रान्तीय सूबेदार बनाये गये थे। मानसिह का शासन इतना प्रसिद्ध है, कि अफगानिस्तान के समान झगडालू प्रान्त पर मानसिंह का शासन शुरू होते ही वहाँ से वह बदला न गया। ऐसे ही लोगों ने बादशाह की सेवा की। ऐसे ही साम्राज्य-सेवकों का बादशाह सम्मान किया करता था।

* हिन्दू-मुसलमान को एक बनानेवाले कबीर-पथ व सिक्ख-पथ आज भी प्रचलित हैं।

चतुर्थ अध्याय

जहाँगीर और शाहजहाँ

सन् १६०५-१६५८

१—सलीम उर्फ जहाँगीर २—नूरजहाँ ३—अन्त के विद्रोह
४—जहाँगीर की राज्य-व्यवस्था ५—शाहजहाँ ६—शाहजहाँ की योग्यता

(१) सलीम उर्फ जहाँगीर (सन् १६०५-१६२७)—
अकबर के मरने पर उसका लड़का सलीम जहाँगीर (अर्थात् संसार को जीतनेवाला) की पदवी धारण कर राजगद्दी पर बैठा। उसमें भी पराक्रम का अभाव न था। लेकिन शराब पीने के कारण उसके शरीर में तेज न रह गया था। अकबर ने राज्य की व्यवस्था पक्की कर दी थी, इसलिए जहाँगीर ने कुछ दिनों तक शान्ति से शासन किया। राजगद्दी पर बैठ कर उसने अनेक नये अच्छे नियम बनाये। लेकिन उसका यह भाव सदा एक सा न रहा। उसके शासन काल में यूरोपीय लोग भारत में आये। उन्होंने जहाँगीर के समय की बातें लिखी हैं। जहाँगीर के शासन-काल में शासन-सम्बन्धी परिवर्तन अधिक नहीं हुए। सन् १६०८ से १६१४ तक उदयपुर के राना अमरसिंह को जीतने के लिए जहाँगीर ने युद्ध किया। किन्तु इस युद्ध में उसे सफलता न मिली। अमरसिंह ने स्वयं बादशाह की अधीनता स्वीकार न कर



नूरजहाँ



जहाँगीर

अपने लड़के कर्णसिंह को उसके दरबार में भेज दिया। जब शिवाजी पर औरङ्गजेब की नौकरी करने का भार डाला गया था तब उसने भी इसी युक्ति से काम लेकर सम्भाजी को बादशाह की नौकरी में देना स्वीकार किया था। सन् १६१६ से १६२२ तक दक्षिण देश जीतने का काम जहाँगीर के लड़के खुर्रम (शाहजहाँ) ने किया था। उस समय मलिकअंबर नामक एक हबशी सरदार निजामशाही में प्रमुख था। उसने शाहजी भोंसले की सहायता से अहमदनगर के राज्य की रक्षा की थी। जहाँगीर के अन्त समय में शाहजहाँ बागी बन गया था। इसलिए अपनी रक्षा के लिए उसे कुछ दिनों जुन्नार में छिप कर रहना पड़ा था।

सलीम के चार लड़के थे—ख़ुशरू, ख़ुर्रम, पर्वेज और शहरयार। ख़ुशरू सद्गुणी और चतुर था। परन्तु उस पर अकबर का अधिक स्नेह होने के कारण, उससे जहाँगीर की कभी नहीं पटती थी। ख़ुर्रम बात-चीत में बड़ा चतुर और प्रभावशाली था। पर्वेज शराबखोरी के कारण अयोग्य था। जहाँगीर की गद्दीनशीनी होते ही ख़ुशरू बागी हो गया। इसलिए बादशाह ने उसे कैद कर लिया। ख़ुर्रम दक्षिण में रहने लगा। अत वह अपने साथ ख़ुशरू को लेता गया। दक्षिण में बरहानपुर में ख़ुशरू की हत्या हुई।

(२) नूरजहाँ—जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ का वृत्तात बड़े मार्के का है। इसका स्वदेश ईरान था। उसके पिता ग्रयाज उर्फ गयासबेग विपत्ति में पड़ने के कारण भारत के लिए स्वदेश से निकल पड़ा। राह में सन् १५७९ में उसकी स्त्री की कोख से

एक लड़की उत्पन्न हुई। वह बड़ी रूपवती थी। यही आगे चल कर नूरजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। पञ्जाब के एक व्यापारी ने उसके सारे कुटुम्ब को भारत में पहुँचाया। और उसी व्यापारी के द्वारा नूरजहाँ के माता पिता को अकबर के दरबार में स्थान मिल गया। उसका पिता विद्वान् और उद्योगी था तथा सुन्दर लेख भी लिख सकता था। उसको अकबर ने नौकर रख लिया। नूरजहाँ की माता भी बड़ी गुणवती थी। उसी के सिखाने से नूरजहाँ ने चित्रकला, कसीदा काढना और अन्य बातें सीख ली थीं। उसका विवाह सन् १५९४ में शेरअफगन या शेरअफ़कनखाँ के साथ हुआ था। वह सलीम के यहाँ नौकर था। सन् १६०६ में वह वर्दवान भेज दिया गया। वहाँ एक विद्रोह खड़ा किया गया। जहाँगीर ने सुना कि शेरअफगन भी उसमें शामिल है। अत उसने बङ्गाल के सूबेदार कतुबुद्दीन को हुक्म भेजा कि शेर-अफ़गन को पकड़ कर मेरे पास भेज दो। सन् १६०७ में कुतुबुद्दीन उसे पकड़ने के लिए गया, वहाँ शेरअफगन से उसकी लड़ाई हुई। वे दोनों मारे गये। अत॰ नूरजहाँ अपनी लड़की के साथ अपने पिता के घर आगरे लोट आई। यहाँ वह अकबर की स्त्री सलीमा बेगम की देख भाल में रहने लगी। इसी बीच में जहाँगीर की जान पहिचान नूरजहाँ से हो गई। सन् १६११ में जहाँगीर ने उससे अपना विवाह कर लिया और उसे अपनी पटरानी बनाया। कुछ वर्षों तक बादशाही का काम नूरजहाँ ने ही किया था। लेकिन अपने काम में उसने अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया। विशेष रूप में हरम और रजवाडो की अवस्था इसी ने सुधारी। स्वभाव से ही गुणवती और शौक़ीन होने के कारण उसने घर की व्यवस्था में अनेक फेरफार किये। बादशाह से सम्बन्ध रखनेवाली

बातों पर वह स्वयं ध्यान देती थी। उसने बादशाह की शराबखोरी बहुत कम करा दी थी। दरबार में जाने के समय नूरजहाँ उसे सावधान रखने का बहुत प्रयत्न करती थी। जहाँगीर का शरीर क्षीण होने पर शासन में जो अनेक परिवर्तन हुए, उनमें नूरजहाँ का ही हाथ विशेष रूप से था। अन्त में जब खुर्रम तख्त पर बैठा, तब वह वार्षिक वेतन लेकर राज्य के कार्य से बिलकुल अलग हो गई। उसके बाद उसने अपना बचा हुआ जीवन शान्ति के साथ एकान्त में बिताया। अन्त को वह सन् १६४६ में मरी।

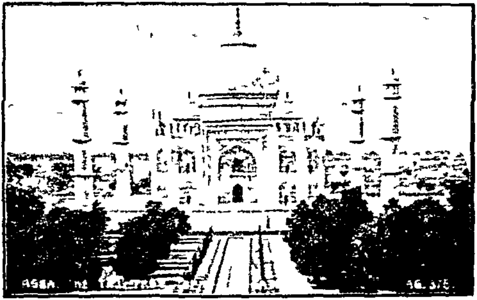
(३) अन्त के विद्रोह—अन्त में जहाँगीर एक-दो वर्ष तक बराबर बीमार रहा। यह बात मुगल शासन-काल में ध्यान रखने की है कि बादशाह के तनिक भी बीमार पड़ते ही राज्य में एकदम दंगे शुरू हो जाते थे। इस समय नूरजहाँ का भाई आसफखाँ वजीर था। उसकी लड़की मुमताज महल का विवाह खुर्रम के साथ हुआ था। और नूरजहाँ की लड़की का विवाह शहरयार के साथ हुआ था। इसलिए नूरजहाँ शहरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाने का प्रयत्न करने लगी। बैरमखाँ का लड़का खानखाना और राजपूत से मुसलमान बना हुआ महाबतखाँ उस समय बादशाही फौजों के सेना-नायक थे। इनमें से महाबतखाँ को अपनी ओर मिला कर शहरयार को गद्दी दिलाने के अभिप्राय से शासन के काम को नूरजहाँ ने अपने हाथ में लिया। यह सुन कर खानखाना और खुर्रम दोनों अपनी अपनी फौजें लेकर दिल्ली पर अधिकार करने के लिए रवाना हुए। लेकिन इन दोनों की हार हुई और इनको भाग जाना पड़ा। इसके बाद ही नूरजहाँ और महाबतखाँ में अनबन हो गई। जहाँगीर ने महाबतखाँ

का अपमान किया। इससे नाराज़ हो कर उसने एकदम हमला करके नूरजहाँ और बादशाह दोनों को ही कैद कर लिया। इस कैद से नूरजहाँ ने अपना और बादशाह का बड़ी युक्ति से छुटकारा करा लिया और महावतखाँ को धूल में मिला देने के लिए उसने उसे दक्षिण में, खुर्रम पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। लेकिन वहाँ जाते ही महावतखाँ और खुर्रम में मेल हो गया। इधर बादशाह हवा बदलने के लिए काश्मीर जा रहा था। राह में वह बीमार पड़ा और २८-१० १६२७ को मर गया। उसके मरते ही नूरजहाँ निर्बल हो गई। खुर्रम शीघ्रता के साथ दक्षिण से आया और बड़ी सावधानी से अपने विरोधियों को हरा कर दिल्ली के तख्त पर अपना अधिकार करके शाहजहाँ की पदवी धारण की। उसने गद्दी के अन्य सभी हकदारों को मार डाला।

(४) शाहजहाँ की राज्य-व्यवस्था—ऊपर दिये गये वृत्तात से जहाँगीर की योग्यता प्रकट होती है। उसके उद्देश अवश्य ही अच्छे थे, लेकिन वे सार्थक न हो पाये। यदि वह शुद्ध जीवन बिताता तो ज़रूर अनेक अच्छे काम करता। यद्यपि वह स्वयं शराब पीता था, तथापि यदि अन्य कोई व्यक्ति शराब पीता तो उसे वह कड़ी से कड़ी सज़ा देता था। महल में एक घंटा रख कर उसकी सोने की जंजीर उसने बाहर रास्ते में लटका दी थी। उसके हिलते ही भीतर घंटा बज उठता था और इस तरह चाहे जो व्यक्ति अपनी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँचा सकता था। इसी से उसका नाम ही "न्याय-शृङ्खला" पड़ गया था। यह साँकल ६० फुट लम्बी थी। इसमें साठ सोने के घंटे लटकाये गये थे। जहाँगीर शौकीन बादशाह था। उसने विद्या का प्रचार कराया। उसके ऐश आराम की कोई सीमा न



शाहजहाँ



ताजमहल



मुमताज महल

थी। अपने ऐश-आराम में विघ्न डालनेवाले धर्म-नियमों को भी वह नहीं मानता था। उसकी सवारी का ठाठ निराला था। उसने अपना जीवन-चरित स्वयं लिखा है।

अंगरेज लोगों का भारत के साथ सम्बन्ध पहले पहल जहाँगीर के ही शासन-काल में हुआ था। इस सम्बन्ध के सौ वर्ष पूर्व से ही भारत की जानकारी यूरोप में अच्छी तरह फैल गई थी और यहाँ के अनेक व्यापारी यहाँ व्यापार के लिए आया करते थे। हाकिन्स (सन् १६०८) और सर टामस रो (सन् १६१५) इंग्लैंड की ओर से बादशाह के पास व्यापार करने की आज्ञा माँगने आये थे। लेकिन उन्हें कोई खास सहूलियत न मिल सकी। केवल सूरत में एक कोठी खोलने की पर्वानगी उन्हें मिली थी। इसी समय अंगरेजों ने अपना व्यापार भारत के साथ प्रारम्भ किया। इन दोनों अंगरेजों के लिखे हुए यात्राओं के वर्णन बड़े मनोहर हैं।

(५) शाहजहाँ का शासन-काल—मुगल वंश में सब से अधिक भाग्यशाली बादशाह शाहजहाँ ही हुआ है। राजगद्दी पाने के लिए उसे कितने ही दुष्कर्म अवश्य करने पड़े, परन्तु इसके बाद उसने अपने चातुर्य को प्रकट किया। वह विषयी था, तथापि उसने शासन के कार्य में कोई गड़बड़ नहीं होने दिया। आसफखाँ और सादुल्लाखाँ उसके वजीर थे। आसफखाँ उसका ससुर था। वह शासन-कार्य में बड़ा दक्ष था। उसकी मृत्यु के बाद सन् १६४४ से ५६ तक सादुल्लाखाँ ने वजीरी का काम किया था। सादुल्लाखाँ पहले हिन्दू था। लेकिन बड़ी उम्र में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह बड़ा चतुर, हिसाब किताब में पक्का और अपने काम में अनुभवी था। शाहजहाँ ने

३० वर्ष राज्य किया। उसके शासन-काल में शुरू और अन्त में दो बड़े युद्ध हुए थे। इन दोनों युद्धों के बीच का समय बड़ी शान्ति और उन्नति के कामों में बीता। इस समय में उसने प्रजा के कल्याण के लिए अनेक कार्य किये। खाँजहाँलोदी नाम का एक अफ़ग़ान सरदार उस समय दक्षिण में था। वह अहमदनगर के मलिक अम्बर से मिलकर अपने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने लगा। इसलिए बादशाह ने उस पर चढ़ाई कर उसे मार डाला (सन् १६२८)। बाद को शाहजहाँ ने अहमदनगर पर दो हमले किये, और उस राज्य को जीत कर सदा के लिए अपने राज्य में मिला लिया (सन् १६३६)। राजपूत राजाओं के साथ कुछ दिनों तक शाहजहाँ की लड़ाइयाँ होती रहीं, लेकिन शाहजहाँ उनको अपने अधीन न कर सका। इससे राजपूतों का ज़ोर बढ़ने लगा। अफ़ग़ानिस्तान में भी बादशाह की फ़ौजों को लगभग १० वर्ष तक लड़ना पड़ा। कंधार प्रान्त को ईरान के शाह ने छीन लिया। काबुल के उस पार मुग़लों की सत्ता का अन्त हो गया। पुर्त्तगीज़ लोग गुलामों का व्यापार करके देश में उपद्रव मचा रहे थे। इससे तथा अन्य कारणों से शाहजहाँ पुर्त्तगीज़ों से अप्रसन्न हो गया और उसने बंगाल में उनके सब स्थान लूट लिये। अनेक पुर्त्तगीज़ मारे गये और बहुत से पकड़े जाकर दिल्ली लाये गये (सन् १६३२)।

सन् १६५७ में शाहजहाँ अचानक बीमार पड़ा। इस समाचार के फैलते ही राज्य पाने के लिए उसके लड़कों में परस्पर लड़ाइयाँ छिड़ जाने से देश भर मे खलबली मच गई। उसके दारा, शुजा, औरङ्गज़ेब और मुराद नाम के चार राजकुमार तथा दो राजकुमारियाँ थीं। बड़ी राजकुमारी का नाम जहाँनारा

था। वह बेगम साहब कहलाती थी। छोटी लड़की का नाम रोशनारा था। दारा शूर और उदार था, लेकिन शौकीन और उतावला था। इस्लाम धर्म पर उसकी अधिक आस्था न थी। धर्म के मामले में उसके विचार अकबर से मिलते जुलते थे। पिता का उस पर अधिक स्नेह था, इसलिए वह राजधानी आगरे में ही रह कर सब काम-काज देखता था। दूसरा राजकुमार शुजा बङ्गाल का सूबेदार था। वह भी वीर और चतुर था। लेकिन रात दिन ऐश-आराम में डूबे रहने से उसकी बुद्धि मन्द पड़ गई थी। तीसरा राजकुमार औरङ्गजेब बिलकुल निर्व्यसनी, बातचीत में बड़ा पटु, कपटी और महत्वाकांक्षी था। वह इस्लाम-धर्म का कट्टर पक्षपाती था और उसके पास दक्षिण में नये जीते हुए सूबे का प्रवन्ध था। सब से छोटा राजकुमार मुराद था। वह गुजरात का सूबेदार था। वह भी वीर था, लेकिन बिलकुल सीधा-सादा था। औरङ्गजेब ने पहले मुराद को अपने पक्ष में मिला लिया और "दिल्ली के तख्त पर तुम्हें ही बैठाऊँगा" आदि बातें कह कर उसकी व अपनी फौज एक करके दिल्ली पर चढाई की। अन्त में कपटाचार कर के पिता को कैद कर तथा सभी भाइयों को मार कर औरङ्गजेब सन १६५८ में राज्य का शासन करने लगा। उसका जन्म सन १६१८ में हुआ था।

(६) शाहजहाँ की योग्यता—शाहजहाँ के शासनकाल का वर्णन अनेक यूरोपीय यात्रियों ने लिखा है। वह रंगीला और विलासी था। गाने-बजाने और खाने-पीने में उसका समय बहुत बीतता था। लेकिन धन का वह बड़ा लोभी था। उसका खजाना धन से खूब भरा था। तभी उसने अनेक बड़े बड़े विपुल धन

साध्य कार्य किये। धर्म के मामले में वह आग्रही न था। परन्तु अपने धर्माचार में वह दक्ष था। उसने हीरों इत्यादि मणियों से जड़ा हुआ एक मयूरासन तैयार कराया था। उसके बनने में ६ करोड़ से भी अधिक रुपये खर्च हुए थे। शाहजहाँ के समय में बादशाही ज़नानख़ाने की शान विशेष रूप से बढ़ गई थी। तोपख़ाने की उन्नति करके उसने उसके बल पर अनेक युद्ध जीते थे। तोपों के काम में उसने यूरोपियों को भर्ती किया था। उसने अपने आदमी इस काम में तैयार नहीं किये। यूरोपीय युद्ध-कला की ओर मुगलों ने ध्यान नहीं दिया। इसीसे इस देश में यूरोपियों का प्रवेश सहज में हो गया। दिल्ली और आगरे में अनेक इमारतें बनवा कर उन शहरों की बड़ी उन्नति की। शाहजहाँ का स्मारक अर्थात् उसकी प्यारी बेगम मुमताज़ महल की क़ब्र अर्थात् आगरा का ताजमहल यमुना के किनारे आगरे से दक्षिण की ओर डेढ़ कोस पर बना हुआ है। इसके बनने में ३ करोड़ रुपये ख़र्च हुए थे। यह १२ वर्ष में बन कर तैयार हुआ था। सभी काम भारतीय कारीगरों ने किया था। इतनी सुन्दर और गुम्बजदार इमारत पृथिवी पर दूसरी नहीं है। शाहजहाँ के राज्य में २२ सूबे थे। उसकी आय ३६ करोड़ रुपये वार्षिक थी। अकबर की चलाई हुई मालगुज़ारी की पद्धति शाहजहाँ ने दक्षिण में भी चलाई। मंडेल्स्लो, टवर्नियर, बर्नियर इत्यादि यात्री शाहजहाँ के शासनकाल में भारत में आये थे। उन्होंने जो वर्णन लिखा है वह चित्ताकर्षक है। शाहजहाँ की मृत्यु २२ जनवरी सन् १६६६ में आगरे के क़िले में हुई।



ओरङ्गजेब (युवावस्था)



औरङ्गजेब (वृद्धावस्था)

पाँचवाँ अध्याय

औरङ्गज़ेब

सन् १६५८-१७०७

१—औरङ्गज़ेब और अकबर
२—मीर जुमला
३—बुन्देलखण्ड का छत्रसाल
४—राजपूतों से युद्ध और जज़िया-कर
५—दक्षिण पर चढ़ाई और मृत्यु
६—औरङ्गज़ेब की योग्यता

(१) औरङ्गज़ेब और अकबर—औरङ्गज़ेब का शासनकाल अनेक बातों में बड़े मार्के का समझा जाता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो चतुरता, उद्योग, विद्वत्ता दीर्घ जीवन इत्यादि में इसकी बराबरी का दूसरा बादशाह मुग़ल-वंश में हुआ ही नहीं। यदि इन गुणों का सरल रीति से उपयोग करके वह शासन करता तो अवश्य ही अकबर के समान उन्नति कर लेता और उसका राज्य चिरस्थायी बन जाता। लेकिन उसमें कपट की मात्रा अत्यधिक थी। दूसरों को किस तरह फँसाया जाय, इसी काम में उसने अपनी सब अक्ल खर्च कर डाली थी। उसका विश्वास कभी किसी पर न था। उसकी बराबरी के और उसका साथ देनेवाले कितने ही अन्य लोग थे। लेकिन उनका भी विश्वास उसने कभी नहीं किया। इसी से अन्त में साम्राज्य की दुर्दशा हो गई। मिथ्याभिमान से भड़क कर उसने स्वयं अपनी, अपने वंश की और अपने राज्य की हानि कर ली। मृत्यु से घेरे जाने पर उसकी

आँखें खुलीं ओर अपने किये का पश्चात्ताप होने से उसे बड़ी निराशा हुई। इससे अत्यन्त खिन्न होकर अपने सांसारिक जीवन का अन्त ही उसे श्रेय प्रतीत हुआ।

अकबर ने राज्य को सबल बनाने के जो जो उपाय किये थे उन सब पर औरङ्गज़ेब ने पानी फेर दिया। अकबर ने हिन्दू मुसलमानों को एक बनाये रखने का उपाय किया। औरङ्गजेब ने इस्लाम-धर्म का अति अभिमान करके हिन्दुओं को बरबस मुसलमान बनाया। पहले परधर्मी लोगों पर "जजिया" नाम का कर बैठाया गया था। उसे अकबर ने माफ़ कर दिया था। लेकिन औरङ्गज़ेब ने इसे फिर चलाया। अकबर ने सौर वर्ष की गणना के अनुसार समय की गणना शुरू की थी, उसे बन्द कर औरङ्गजेब ने चांद्र वर्ष की गणना से काम लिया। अपने दुष्कृत्यों का उल्लेख न हो, इस अभिप्राय से उसने बादशाही तवारीख़ का लिखा जाना तक बन्द करा दिया। उसने हिन्दुओं की पाठशालाएँ, मठ, देवालय इत्यादि नष्ट कर उनकी जगह पर मसजिदें बनवाई। उसने हिन्दुओं के मेले और यात्राएँ बन्द करा दीं। योगी व सन्यासियों को भी कहीं रहने का स्थान न रहने दिया। इससे संन्यासियों ने दङ्गे किये। उनको रोकने में असख्य मनुष्यों का सहार हुआ। इसी तरह औरङ्गज़ेब का शासन शुरू हुआ। मुगल बादशाही को डुबाने में औरंगज़ेब की यही अदूरदर्शी नीति कारण बनी।

(२) मीर जुमला—मीर जुमला नाम का एक बली और प्रभावशाली सरदार ईरान से भारत में आकर गोलकुंडा के कुतुबशाह के दरबार में नोकर हो गया था। उसमें और दारा में अन-

चन हो जाने के कारण वह प्रारंभ से ही अपनी फौज के साथ औरगजेब से जा मिला था और उसी की सहायता से बाद को औरगजेब को दिल्ली का तख्त मिला। उसी ने शुजा को हरा कर उससे बगाल प्रांत छीन लिया था। इन कार्यों की सफलता को देख कर औरङ्गज़ेब मन ही मन उससे डरने लगा। इसी से वह मीर जुमला के नाश का मौका खोजने लगा। यह कृतघ्न स्वभाव का एक नमूना है। बाद को आसाम प्रान्त जीतने के लिए बादशाह ने उसको वहाँ भेजा। उस प्रान्त की आबहवा अनुकूल न होने के कारण वह वृद्ध अनुभवी सरदार वहीं बीमार पड़कर सन् १६६१ में मर गया। विदेश से आये हुए लोगों को इस देश में अपना पराक्रम दिखलाने की कितनी सुविधा उस समय थी, यह बात मीर जुमला, नूरजहाँ, महम्मदगवाँ, मलिक अम्बर, क़ाइव, डूप्ले, वारेनहेस्टिंग्ज़ इत्यादि के उदाहरण भारतीय इतिहास में सहज ही मिल सकते हैं।

(३) बुंदेलखंड का राजा छत्रसाल (सन् १६५० १७३३)—बुंदेलखंड प्रान्त मुगलों की अधीनता में पक्की तरह से न आ पाया था। पहले के बादशाहों ने अनेक युद्ध करके वहाँ के राजपूतों को परास्त किया अवश्य, तथापि समय पाते ही वे स्वतन्त्र हो जाते थे। बुंदेलखंड के वीरसिंहदेव नाम के राजा ने ही सलीम के कहने से सन् १६०२ में अबुलफजल का ख़ून करा दिया था। औरङ्गजेब के समय में वीरसिंह का नाती चपत बुंदेलखंड में महोबा में राज्य करता था। राज्य पाने के लिए [illegible] भाइयों के साथ किये थे, [illegible]ायता की थी। लेकिन बाद



महाराजा छत्रसाल

वन हो जाने के कारण वह प्रारभ से ही अपनी फौज के साथ ओरगजेब से जा मिला था और उसी की सहायता से बाद को औरगजेब को दिल्ली का तख़्त मिला। उसी ने शुजा को हरा कर उससे बगाल प्रात छीन लिया था। इन कार्यों की सफलता को देख कर औरङ्गजेब मन ही मन उससे डरने लगा। इसी से वह मीर जुमला के नाश का मौका खोजने लगा। यह कृतघ्न स्वभाव का एक नमूना है। बाद को आसाम प्रात जीतने के लिए बादशाह ने उसको वहाँ भेजा। उस प्रान्त की आवहवा अनुकूल न होने के कारण वह वृद्ध अनुभवी सरदार वहीं बीमार पड़कर सन् १६६१ में मर गया। विदेश से आये हुए लोगों को इस देश में अपना पराक्रम दिखाने की कितनी सुविधा उस समय थी, यह बात मीर जुमला, नूरजहाँ, महम्मदगवाँ, मलिक अम्बर, क्लाइव, डूप्ले, वारेनहेस्टिंग्ज इत्यादि के उदाहरण भारतीय इतिहास में सहज ही मिल सकते हैं।

(३) बुंदेलखड का राजा छत्रसाल (सन् १६५०-१७३३)—बुंदेलखड प्रान्त मुगलों की अधीनता में पूरी तरह से न आ पाया था। पहले के बादशाहों ने अनेक युद्ध करके वहाँ के राजपूतों को परास्त किया अवश्य, तथापि समय पाते ही वे स्वतन्त्र हो जाते थे। बुंदेलखड के वीरसिंहदेव नाम के राजा ने ही सलीम के कहने से सन् १६०२ में अबुलफजल का खून करा दिया था। औरङ्गजेब के समय में वीरसिंह का नाती चपत बुंदेलखड में महोबा में राज्य करता था। राज्य पाने के लिए जो युद्ध औरङ्गजेब ने अपने भाइयों के साथ किये थे, उनमें इस राजा ने औरङ्गजेब की सहायता की थी। लेकिन बाद

को अपने स्वभाव से लाचार होकर बादशाह ने चंपतराय के नाश का बीड़ा उठाया। दोनों में युद्ध शुरू हुआ। अंत को सन् १६६४ में चम्पतराय मारा गया। उसके छत्रसाल नाम का एक लड़का था। इसकी उम्र चौदह वर्ष की थी। इस राजकुमार ने अपनी वीरता के सहारे अनेक वर्षों तक बादशाही फौजों के साथ टक्कर लेकर अपनी स्वतंत्रता रक्षित रक्खी। मराठों के शिवाजी से बुंदेलों के छत्रसाल की बड़ी मित्रता थी। बादशाही के विरुद्ध अन्त तक लड़ कर इसी ने अपनी सहायता के लिए बाजीराव को बुंदेलखंड में बुलाया था और सन् १७३३ में मरते समय अपने राज्य का तृतीयांश बाजीराव को दे गया था।

(४) राजपूतों के साथ युद्ध, ज़जिया कर (सन् १६६९-८१)—इस युद्ध के शुरू होने से पहले मुगल-बादशाह की सत्ता एकदम उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। सन् १६६६ में औरंगजेब के अधिकार में जितना प्रदेश था, उतना प्रदेश पहले मुगल-साम्राज्य में न था। यदि औरङ्गजेब इतने ही से संतुष्ट रहता तो उसे आगे आनेवाली आफतें न झेलनी पड़तीं। लेकिन वह सोचने लगा कि मैं इस समय निश्चिन्त हूँ। इसलिए उसने हिन्दुओं के साथ छल करना शुरू किया। पहले उसने राजपूत राजाओं को जीतने का काम शुरू किया। अकबर की चलाई प्रथा के अनुसार राजपूत राजे अपने राज्य को सँभालते थे और बादशाही फ़ौज में नौकरी करते थे। इससे साम्राज्य के वास्तविक आधार-स्तंभ वही लोग थे। पहले तो औरङ्गजेब ने उन राजाओं पर ज़जिया कर लगाने के सम्बन्ध में सख़्त हुक्म जारी किया। इसलिए उसके साथ ही साथ जहाँ-तहाँ गड़बड़ शुरू हुआ। जब मुसलमान अन्य राज्य जीतने

को खड़े हुए थे, उस समय परधर्मियों के संरक्षण के लिए अपनी फौज इत्यादि रखने का जो खर्च पड़ता था उसे पूरा करने के लिए खलीफा उमर ने यह कर पहले जारी किया था। अन्य देशों में जाकर वहाँ की प्रजा से अरब लोग कहते कि "तुम लोग मुसलमान बन कर हममें मिल जाओ तो तुमको भी हमारे ही समान हक मिलेंगे। यदि ऐसा न करोगे तो तुमको जजिया देना पड़ेगा।" अर्थात् जो मुसलमान बन जाते वे विजेताओं के पक्ष में गिने जाते थे, अन्य लोग हलके गिने जाते थे। यह भेद-भाव लोगों को बहुत अखरता था। इस भेद भाव को मिटाने के लिए अकबर ने यह कर उठा दिया था। यह जजिया कर ब्राह्मणों से एक मोहर प्रतिवर्ष, गरीबों से ३॥ रुपया और अन्य लोगों से उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार ६० रुपया तक लिया जाता था।

राजपूताने में उस समय तीन राजे अगुआ थे, जयपुर के जयसिंह, जोधपुर के यशवन्तसिंह और उदयपुर के राजसिंह। इनमें से पहले दो राजे बादशाह की नोकरी में थे। यशवन्त सन् १६७८ में काबुल में मरा। इसके बाद बादशाह ने उसके राजकुमार को उसका राज्य नहीं दिया। इसलिए राजपूत लोग भड़क उठे। बादशाह ने इनके साथ लड़ाई करने के लिए इतनी अधिक तैयारी की कि लोगों को यह प्रतीत होने लगा कि बादशाह शायद सारी पृथिवी को ही जीतने का प्रबन्ध कर रहा है। उसका सामना करने का भार राजसिंह पर पड़ा। राजपूत लोग सारे देश को विध्वस करने लगे। औरंगजेब की कपट विद्या भी अपना काम कर रही थी। लेकिन उसका लक्ष्य वह स्वयं बन गया। राजपूतों ने शाहजादा अकबर को अपनी तरफ मिला लिया

और बादशाह को गद्दी से उतार कर उसे बादशाह बनाने व
प्रयत्न करने लगे। लेकिन बादशाह ने एक ऐसी चाल खेली वि
शाहज़ादे को भ्रम हो गया और वह राजपूतों का साथ छोड़ क
दक्षिण की ओर भाग कर संभा जी की शरण में चला गया। राज
पूतों ने बादशाह के साथ चार वर्ष तक युद्ध किया। अन्त
इस युद्ध से थक कर बादशाह का धीरज छूट गया औ
सन् १६८१ में दिलेरखाँ के द्वारा नीचे लिखी अपमान-जनव
हार की संधि स्वीकार करके बादशाह ने राजपूतों के साथ मे
कर लिया—(१) राजपूतो का जो राज्य इस लड़ाई में बादशा
ने जीता वह राजपूतों को वापस दिया जाय। (२) जज़िया क
बद करके बादशाह धर्म के विषय में हस्तक्षेप न करे। (३
यशवंतसिंह का राज्य उसके लड़के को दिया जाय। (४
राजपूत लोग पूर्ववत् बादशाह की नौकरी करें। इस सधि व
होते ही मुगल-बादशाही की अवनति होनी शुरू हो गई।

(५) दक्षिण पर चढ़ाई और मृत्यु (सन १६८३-१७०७)—
राजपूताने में बादशाह की हार हो चुकी थी। इसलिए इसकी हानि
पूरी करने के लिए बादशाह ने बड़ी बड़ी फौजों को लेकर दक्षिण प
आक्रमण किया और वहीं अपने अन्त के २५ वर्ष विताये
वह वापस आ कर फिर अपनी राजधानी न देख पाया। अकब
के ही समय से दक्षिण जीतने का काम शुरु हो गया था
परन्तु औरंगज़ेब के समय में दक्षिण में एक निराला रंग खिल
रहा था। अहमदनगर-राज्य पर मुग़लों का अधिकार शाहजह
के समय में हो चुका था। इसका एक नया सूबा बना और इसका
सूबेदार बुरहानपुर में रहता था। लेकिन गोलकुंडा की कुतुबशाही
और बीजापुर की आदिलशाही अभी वर्त्तमान थीं, घरेलू झगड़े

और मराठों के त्रास से ये दोनों राज्य निर्बल हो रहे थे। महाराष्ट्र के रहनेवाले मराठे सह्याद्रि के पहाड़ों में स्वतन्त्रता पूर्वक रह कर बहमनी राज्य की फौजों में काम करने से बड़े बलवान् हो गये थे। औरंगज़ेब के समय में उन्हीं मे नवीन उत्साह भर कर उनके पराक्रमी नेता शिवाजी ने मराठों का स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। शिवाजी की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का सम्भाजी राज्य करने लगा। वह शिवाजी के समान प्रभावशाली न था। औरंगजेब के बागी शाहजादे अकबर को उसने अपने यहाँ ठहरा लिया था। इसी बात पर नाराज हो कर बादशाह ने महाराष्ट्र-देश को जीत कर वहाँ इस्लाम धर्म का प्रचार करने का बीड़ा उठाया और स्वयं एक बहुत बड़ी फौज लेकर सन् १६८३ में दक्षिण की ओर गया। उसकी सेना मानो एक चलता फिरता शहर थी। सन् १६८६ मे बादशाह ने बीजापुर के राज्य को और सन् १६८७ में गोलकुंडा के राज्य को जीत लिया। इन राज्यों को जीत कर मराठों का नाश करने के लिए वह तैयार हुआ। उसने सभाजी को पकड़ कर उसे मार डाला और उसकी राजधानी व अन्य क़िलों पर भी अधिकार कर लिया। इन कामों मे जुल्फिकारखाँ, गाजीउद्दीन और उसका लड़का चिनकिलिजखाँ इत्यादि सरदार प्रमुख थे। मराठो ने अपना देश छोड़ कर कुछ दिनों के लिए जिंजी को अपनी राजधानी बनाया और बराबर हिम्मत के साथ बादशाह से लड़ते रहे। अन्त मे वे विजयी हुए। इसका पूरा वर्णन महाराष्ट्र-शासनकाल के वृत्तान्त के साथ दिया जायगा। इन लोगों ने लड़ाई लड़कर बादशाह के जीते हुए अपने सब किले वापस ले लिये। औरंगजेब २५ वर्ष तक अपनी फौजें लेकर इधर-उधर लड़ता फिरता रहा। बुरहानपुर,

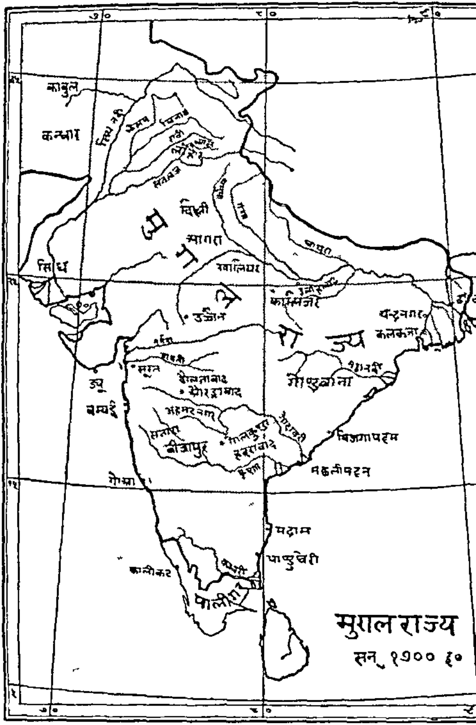
आदर्श था, उसका रहन-सहन बिलकुल सादा था। अपने हाथ से लिखी हुई कुरान की प्रतियाँ बेच कर अपनी अन्तिम क्रिया करने के लिए उसने धन एकत्र किया था। उसके समान परिश्रम करनेवाला और निर्व्यसनी मनुष्य मिलना कठिन है। प्रजा में ऐक्य स्थापित करना अकबर का उद्देश था। लेकिन लोगों में फूट डाल कर अपनी रक्षा करना औरंगजेब को इष्ट था। औरंगज़ेब के समय में अंग्रेज़, फ्रेंच इत्यादि विदेशी व्यापारियों की सत्ता बहुत बढ़ी। औरंगजेब के शासन-काल में राज्य की आमदनी ४३ करोड़ रुपये वार्षिक थी। धर्म की बातों को छोड़ अन्य बातों में जो न्याय बादशाह करता था वह बिलकुल ठीक होता था। "फतवा-ए-आलमगीरी" अर्थात् औरंगजेब के नियम नामक ग्रंथ को उसीने लिखा था, जो आज भी धर्म ग्रंथ की तरह मान्य है। कर्मचारियों के अपराध क्षमा करना तो वह जानता ही न था। उसकी मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य कई भागों में बँट गया और अनेक नये मुसलमानी राज्य कायम हो गये। इन राज्यों के अनेक संस्थापक औरंगजेब से ही शिक्षा पाकर बढ़े थे। वज़ीर आसद-ख़ाँ और उसका लड़का जुल्फ़िकारखाँ, अवध के नवाबों के मूल-पुरुष सआदतखाँ, हैदराबाद के निज़ामों के मूल-पुरुष ग़ाज़ो-उद्दीन और उसका प्रसिद्ध लड़का चिनकिलिजखाँ (निजा-मुलमुल्क), बंगाल के सूबेदारों का मूल पुरुष मुर्शिदकुलीखाँ, इसी प्रकार दक्षिण में नाम कमानेवाला दाउदखाँ पन्नी तथा अनेक राजपूत और बुंदेले सरदार औरंगजेब की नौकरी करके प्रसिद्ध हुए, किन्तु बाद को इन्हीं लोगों के द्वारा साम्राज्य में बड़े बड़े परिवर्त्तन हुए।



गुरु गोविन्दसिंह



गुरु नानकशाह


काबुल
कन्धार
दिल्ली
आगरा
ग्वालियर
सिंध
उज्जैन
कलकत्ता
सूरत
दौलताबाद
औरङ्गाबाद
बम्बई
अहमदनगर
सतारा
बीजापुर
हैदराबाद
गोआ
गोंडवाना
मद्रास
पाण्डुचेरी
कालीकट
पालीगार
मुग़ल राज्य
सन् १७०० ई०



गुरु गोविन्दसिंह



गुरु नानकशाह

कर ली। इसी प्रकार दाऊदखाँ पन्नी को दक्षिण का सूबेदार बना कर जुल्फिकारखाँ को अपने दरबार में रक्खा।

(२) सिक्खों के झगड़े—इस समय पंजाब में सिक्ख लोग प्रबल होकर बागी हो रहे थे। अकबर के समय से हिन्दू और मुसलमान धर्मों को एक करके दोनों के बीच होनेवाले झगड़ों को बंद करने के लिए यद्यपि अनेक लोग प्रयत्न करने लगे थे, तो भी कबीर इत्यादि अनेक साधु संत ऐसे ऐक्य का उपदेश और भी पहले से करते आ रहे थे। गुरु नानक नाम के एक ऐसे ही साधु की उन्नति पंजाब में हुई थी (जन्म सन् १८६९)। उसने एक नवीन पंथ स्थापित करके अपना उपदेश लोगों को देना शुरू किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों के धर्मों से उच्च तत्त्वों का संग्रह किया था। नानक के उपदेश का सार यह था कि धर्म के काम में आग्रह की आवश्यकता नहीं, मनोभाव अथवा किसी भी रीति से की हुई ईश्वरोपासना एक समान फलदायिनी है। उसके जो चेले बने वे शिष्य या सिक्ख के नाम से प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे यह पन्थ उन्नति करने लगा। उसके धर्मग्रन्थ को "ग्रन्थ साहब" या आदि ग्रन्थ कहते हैं। यह ग्रन्थ जाबी या गुरुमुखी भाषा में है। नानक के बाद इस धर्म में १० गुरु हुए। पहले तीन गुरुओं ने शान्ति के साथ धर्म का उपदेश दिया। बाद को यह क्रम बदला और सिक्ख लोगों में सांसारिक उन्नति करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई। वे अब सैनिक ढंग से रहने लगे। इससे अन्य लोगों में और खास कर मुसलमानों में भय उत्पन्न हुआ। यह ढंग औरङ्गजेब को भी न पसंद आया। उसने नवें गुरु तेगबहादुर को पकड़वा मँगाया और दिल्ली में कैद में रखकर मार डाला। इस घटना से सभी सिक्ख चिढ़ गये। सिक्खों का

कर ली। इसी प्रकार दाऊदखाँ पन्नी को दक्षिण का सूबेदार बना कर जुल्फिकारखाँ को अपने दरबार में रक्खा।

(२) सिक्खो के झगडे—इस समय पंजाब मे सिक्ख लोग प्रबल होकर बागी हो रहे थे। अकबर के समय मे हिन्दू और मुसलमान धर्मों को एक करके दोनों के बीच होनेवाले झगड़ों को बंद करने के लिए यद्यपि अनेक लोग प्रयत्न करने लगे थे, तो भी कबीर इत्यादि अनेक साधु संत ऐसे ऐक्य का उपदेश और भी पहले से करते आ रहे थे। गुरु नानक नाम के एक ऐसे ही साधु की उन्नति पंजाब में हुई थी (जन्म सन् १४६९)। उसने एक नवीन पंथ स्थापित करके अपना उपदेश लोगों को देना शुरू किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों के धर्मों से उच्च तत्त्वों का संग्रह किया था। नानक के उपदेश का सार यह था कि धर्म के काम में आग्रह की आवश्यकता नहीं, मनोभाव अथवा किसी भी रीति से की हुई ईश्वरोपासना एक समान फलदायिनी है। उसके जो चेले बने वे शिष्य या सिक्ख के नाम से प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे यह पन्थ उन्नति करने लगा। उसके धर्म ग्रन्थ को "ग्रन्थ साहब" या आदि ग्रन्थ कहते हैं। यह ग्रन्थ जाबी या गुरुमुखी भाषा में है। नानक के बाद इस धर्म में १० गुरू हुए। पहले तीन गुरुओं ने शान्ति के साथ धर्म का उपदेश दिया। बाद को यह क्रम बदला और सिक्ख लोगों में सांसारिक उन्नति करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई। वे अब सैनिक ढंग से रहने लगे। इससे अन्य लोगों में और खास कर मुसलमानों में भय उत्पन्न हुआ। यह ढंग औरङ्गजेब को भी न पसंद आया। उसने नवें गुरू तेग़बहादुर को पकड़वा मँगाया और दिल्ली में कैद में रखकर मार डाला। इस घटना से सभी सिक्ख चिढ गये। सिक्खों का

दसवाँ गुरू गोविंदसिंह बड़ा प्रतिभाशाली हुआ। उसने सिक्ख में वीरता के भाव भर दिये और धर्म में भी वैसे ही अनेक फेर फार किये (१६७५)। अमृतसर में उसने फौजी ढंग का प्रजा सत्तात्मक राज्य स्थापित किया। इसी प्रकार का राज्य महम्मद पैगम्बर ने मदीने में अरबी प्रजा सत्तात्मक राज्य स्थापित किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने गोवध की मनाही कर दी। इस प्रकार उसने हिन्दुओं को अपने पक्ष में कर लिया। औरंगजेब ने गुरु गोविन्दसिंह का पीछा करना शुरू किया। इससे उसे जगह जगह भटकना पड़ा। औरंगज़ेब ने उसके दो लड़कों को सरहिंद में दीवार में चुनवा कर मरवा डाला। उसके अन्य दो लड़के लड़ाई में पहले ही मारे जा चुके थे। सन् १७०८ में नान्देड में गुरु गोविन्दसिंह भी मारा गया। इन असह्य अत्याचारों के कारण सिक्खों की वृत्ति एकदम बदल गई। औरङ्गज़ेब के राज्य में पहले से ही अराजकता बढ रही थी। इससे सिक्खों का उत्साह दूना बढ गया। औरंगजेब ने उनके साथ जो अत्याचार किया उसका बदला उन्होंने लेलिया। बंदा नाम का गुरु, गोविन्दसिंह का एक प्रिय शिष्य था। उसको मुखिया बना कर सिक्ख लोग चारों ओर से एक दम उठ खड़े हुए। उन्होंने मसजिदें तोड़-फोड़ डालीं। एक एक करके अनेक शहरों को उन्होंने ध्वस किया। कबरों से लाशें निकाल निकाल कर पशुओं को खिलाई। ये बातें मुख्यत सरहिन्द में की गईं। बाद को बहादुरशाह ने उन पर चढ़ाई की। लेकिन उनको दबाने से पहले ही बहादुर शाह सन् १७१२ में ७० वर्ष की अवस्था में मर गया। बाद को सन् १७१३ में फर्रुख़सियर बादशाह ने सिक्खों के जीतने के लिए एक बड़ी फौज भेजी। इस फौज ने सिक्खों का भयंकर

रक्तपात किया। वंदा व उसके साथी कैद कर दिल्ली लाये गये। वहाँ इनका वध बड़ी क्रूरता के साथ किया गया। इसके बाद सिक्ख लोग तीस वर्ष तक चुप रहे। इस बीच में मुगलों की रही-सही शक्ति भी कमजोर हो गई। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के हमलों ने सिक्खों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर दे दिया। उनमें राष्ट्राभिमान उत्पन्न हो गया और उनके अनेक छोटे छोटे राज्य पंजाब में जम गये। अन्त में रणजीतसिंह ने उन सब का संगठन करके एक फौजी राज्य स्थापित किया। सिक्खों का आगे का चरित्र ब्रिटिशशासन काल के वृत्तांतमें दिया जायगा।

बहादुरशाह में हिम्मत और साहस अधिक न था। वह विचारवान् और मिलनसार था। यदि वह कुछ और अधिक दिनों तक जीता तो अवश्य ही मुग़ल-बादशाही का कुछ कल्याण हो जाता।

(३) जहाँदारशाह (सन् १७१२ १३)—यह बहादुरशाह का ज्येष्ठ पुत्र था। ज़ुल्फ़िकारख़ाँ की सहायता से वह दिल्ली के तख्त पर बैठा। यह क्रूर और दुर्व्यसनी था। इन बातों से इसने अपने पास के लोगों को इतना दुःखी कर दिया कि इसका भतीजा फर्रुखसियर बगाल में विद्रोही बन गया और दिल्ली पर चढ़ आया। वहाँ पहुँच कर उसने जहाँदारशाह और ज़ुल्फ़िकारख़ाँ दोनों को मार डाला और खुद तख्त पर बैठ गया।

फर्रुखसियर—(सन् १७१३ १९)—विहार प्रान्त के सूबेदार सैय्यद हुसेन अली, और इलाहाबाद के सूबेदार सैय्यद अब्दुल्ला की सहायता से ही फर्रुख़सियर को दिल्ली की गद्दी मिली थी। ये दोनों सगे भाई थे। अब्दुल्ला को उसने अपना वजीर बनाया

आर हुसेन को सेनापति का पद दिया। इन सैय्यद भाइयों के कामों से राज्य की बड़ी हानि हुई। बादशाह को उनका प्रभाव दुस्सह हो गया। इसलिए उसने उनको नष्ट करने का उद्योग किया। इधर राजपूतों ने अपना सङ्गठन करके मुग़लों के शासन को निर्बल कर दिया। इस पर हुसेन ने उन पर हमला करके उनके अगुआ अजितसिंह को हरा दिया और उसकी लड़की इन्द्रकुमारी को पकड़ कर उसका विवाह बादशाह के साथ कर दिया। ॲंगरेज डाक्टर हेमिल्टन ने बादशाह को रोग से मुक्त किया था। इसीलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उसने बङ्गाल प्रान्त में ३९ शहर देकर सब करों से माफ कर दिया। अन्त में सैय्यद-भाइयों से बादशाह की जो अनबन थी वह बहुत बढ़ गई। लेकिन उनका नाश करने के जो जो उपाय बादशाह ने किये वे सब उन दोनो पर प्रकट हो गये। हुसेनअली को उसने दक्षिण की सूबेदारी पर नियुक्त करके भेज दिया। वहाँ पहुँच कर हुसेनअली ने मराठों से मित्रता कर ली और उनकी फ़ौज लेकर वह दिल्ली पर चढ़ आया। उन दोनों सैय्यद-भाइयों ने बादशाह को पदच्युत करके उसे मार डाला और सन् १७१९ में महम्मदशाह को तख़्त पर बैठाया। इन्हीं दोनो सैय्यद भाइयों की मदद से पेशवा बालाजी विश्वनाथ को स्वराज्य की सनद मिली। इसका हाल आगे दिया जायगा।

(४) महम्मदशाह (सन् १७१९-४८)—महम्मद शाह ने शीघ्र ही बड़ी युक्ति के साथ सैय्यद-बन्धुओं को हराया और उन्हें मार डाला। महम्मदशाह में काम करने का उत्साह न था। उसने शासन के काम में अधिक ध्यान न दिया। वह सदा ऐश आराम में ही पड़ा रहा। उसके समय में राज्य के टुकड़े टुकड़े



नादिरशाह

हो गये। दक्षिण में निजामुल्मुल्क ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इसका असली नाम कमरुद्दीनखाँ था। इसको औरंगजेब ने "चिनकिलिजखाँ" की पदवी दी थी। जुल्फिकारखाँ से लड़ाई होने पर उसने सैय्यद-बन्धुओं को मदद दी। इसलिए उसे "आसफ जाह" और "निजामुल्मुल्क" की पदवी मिली थी। इसी अन्तिम पदवी से वह अधिक प्रसिद्ध है। दिल्ली की बादशाही को डूबने से बचाने का प्रयत्न इसने बहुत कुछ किया। लेकिन महम्मदशाह से इसकी न बनी। अतः यह दक्षिण व गुजरात की सूबेदारी स्वीकार कर वहाँ चला गया। बादशाह उसका नाश करना चाहता था। निजाम को यह बात विदित हो गई। इसलिए सन् १७२३ से उसने औरंगाबाद में स्वतन्त्र शासन शुरू किया। मालवा और गुजरात दोनों ही प्रान्तों पर अधिकार करने की इच्छा उसके मन में थी। लेकिन उसकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। मराठों और निजाम में बड़ी शत्रुता उत्पन्न हो चुकी थी। उन्हें सारे भारत पर अपना अधिकार जमाते देख निजाम ने अपनी रक्षा का उपाय किया। इसी से मराठों और निजाम में झगड़ा शुरू हुआ। यह झगड़ा ७० वर्ष तक चला। इसका पूरा वृत्तान्त महाराष्ट्र-शासन-काल में दिया गया है। मराठे गुजरात, मालवा, बरार इत्यादि जीत कर दिल्ली पर चढ़ाई करने लगे। अतः चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का हक मराठों को बादशाह ने विवश होकर दे दिया।

(५) नादिरशाह की चढ़ाई (सन् १७३८)—इधर राजधानी पर बिजली गिरने के समान एक बड़ा भयङ्कर काण्ड हो गया। ईरान देश में नादिरशाह नाम का एक पराक्रमी शाह शासन कर रहा था। उसने अपने राज्य की सीमा भारत से

मिला दी। बाद को सन् १७३८ में कुछ बहाना करके उसने एक बड़ी फौज लेकर दिल्ली पर चढाई की। बादशाह को उसने कैद किया और स्वयं उसके महल में रहा। नादिरशाह के मारे जाने की झूठी खबर फैलते ही दिल्ली के निवासियों ने उसके कुछ सिपाहियों को मार डाला। यह देख कर प्रजा में भय उत्पन्न करने के लिए उसने शहर को लूटने और लोगों को क़त्ल करने का हुक्म दे दिया। फौज ने शहर लूटना और मार-काट करना शुरू किया। इससे शहर के गली-कूचे मरे हुए आदमियों की लाशों से पट गये। लगभग ३० हजार से भी अधिक आदमी मारे गये। महम्मदशाह हाथ जोड़ कर और आँखों में आँसू भर कर नादिरशाह के सामने गया और मारकाट बन्द करने के लिए प्रार्थना की। "भारत के बादशाह की प्रार्थना व्यर्थ नहीं की जा सकती", यह कह कर उसने मार-काट बन्द करवा दी। नादिरशाह दिल्ली में कुल ५८ दिन रहा। इतने समय में उसने बादशाह से लगा कर ग़रीब से ग़रीब तक को भी लूटने से न छोड़ा। इस लूट में उसे ९ करोड़ से ३० करोड़ रुपए तक मिलने का अनुमान लगाया जाता है। मयूरासन और कोहनूर हीरा, जो मुगल-वंश के वैभव के नमूने थे, नादिरशाह अपने साथ ले गया। लौटने पर सन् १७४७ में उसे किसी ने मार डाला।

(६) राज्य के टुकड़े—इस प्रलय से मुगल बादशाही की पीठ टूट गई। सिन्धु नदी के उस पार का भू भाग नादिरशाह ने अपने अधिकार में ले लिया। राजपूत रजवाड़े पहले ही से स्वतन्त्र हो चुके थे। दक्षिण में सन् १७२४ में निजाम स्वतन्त्र हुआ। उसके साथ ही साथ मराठों के विरोध की जड़ जमी। निजाम की मृत्यु सन १७४८ में हो जाने पर उसका लड़का नासिर-

जंग, उसके बाद उसका भतीजा मुजफ्फरजंग, बाद को तीसरा लड़का सलावतजंग गद्दी पर बैठे। सन् १७६१ में निजामअली गद्दी पर बैठा। अन्त में अंगरेजों का सार्वभौमत्व स्वीकार करके वह सन् १८०३ में मरा। मालवा, गुजरात इत्यादि प्रान्तों पर मराठों का अधिकार हो गया। पंजाब प्रान्त को सिक्खों ने ले लिया। बंगाल प्रान्त में अलीवर्दीखाँ सूबेदार था। उसके मरने पर सिराजुद्दौला से सन् १७५७ में वह प्रान्त अंगरेजो ने छीन लिया। अवध की सूबेदारी सआदतखाँ नाम के एक सरदार के हाथ में थी। सआदतखाँ सन् १७३९ में नादिरशाह की चढाई में मारा गया। इसके मारे जाने पर उसका भतीजा सफदरजंग अवध का सूबेदार बना। उसने दिल्ली में वजीर का भी काम किया। इसी से अवध के नवाबों को "नवाब वजीर" की उपाधि मिली। सन् १७५४ में सफदरजंग के मरने पर उसका लड़का शुजाउद्दौला सूबेदार बना। उस समय से अवध का सूबा स्वतन्त्र हुआ। शुजाउद्दौला ने अंगरेजों की सहायता लेकर अपना बचाव किया। लेकिन सन् १७७५ में हाफिजरहमतखाँ की लड़की ने उसका वध कर डाला। कर्नाटक में अनेक परिवर्त्तन होने के बाद अंगरेजों की मदद से अर्काट का नवाब महम्मदअली स्वतन्त्र हो गया। सारांश यह कि मुख्य बादशाही के निर्बल होते ही भिन्न भिन्न प्रान्त अलग और अरक्षित हो गये। इसी से प्रत्येक के साथ अलग और स्वतंत्र व्यवहार करके अंगरेजों ने सब को धीरे धीरे अपने वश में कर लिया। ब्रिटिश शासन का मुख्य इतिहास ऐसे ही व्यवहारों से भरा पड़ा है। महम्मदशाह सन १७४८ में मरा।

सातवाँ अध्याय

मुगल-शाही का अन्त

सन् १७४८-१८१३

१—अहमदशाह और आलमगीर २—शाहआलम
३—अवशिष्ट घराने ४—मुगलों के समय की परिस्थिति
५—मुगल बादशाही के विनाश के कारण

(१) अहमदशाह (१७४८-५४)—महम्मदशाह के मरने पर उसका लड़का अहमदशाह राज-गद्दी पर बैठा। चारों ओर शत्रु उत्पन्न हो चुके थे। उनको वश में रखने का काम वह न कर सका। अफगानिस्तान में राज्य करने वाले अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर चढ़ाई करना शुरू किया। यह अहमदशाह अब्दाली पहले नादिरशाह के पास नौकर था। नादिरशाह के मारे जाने पर उसने अफगानिस्तान में अपना स्वतंत्र राज्य खड़ा किया। सन् १७४८ में उसने भारत पर पहली चढ़ाई की। दिल्ली के अहमदशाह ने सरहिन्द की लड़ाई में उसे हरा दिया। फिर सन् १७५१ में उसने भारत पर हमला किया। उस समय बादशाह ने लाहौर और मुल्तान के सूबे देकर उसे लौटा दिया। बाद को सफ्दर जंग और निजामुल्मुल्क के सम्बन्धी गाजीउद्दीन के बीच दिल्ली में परस्पर झगड़ा हुआ। उस झगड़े में गाजीउद्दीन ने सन्

१७५४ में बादशाह का वध किया और एक शाहजादे को गद्दी पर बिठा कर उसका नाम आलमगीर रक्खा और शासन का काम अपने हाथों करने लगा। यह द्वितीय आलमगीर के नाम से प्रसिद्ध है। उसका कार्यभार गाजीउद्दीन स्वतन्त्रता से करता था। इससे इन दोनों में शीघ्र ही अनबन हो गई। गाजीउद्दीन को मराठों की सहायता मिलती थी। इसी से व लोग दिल्ली में आकर बस गये। इसमे दिल्ली में दो पक्ष हो गये। एक पक्ष मे गाजीउद्दीन और मराठे थे। दूसरे पक्ष में रुहेले, अहमदशाह अब्दाली तथा अन्य मुसलमान थे। अब्दाली ने सन् १७५७ में दिल्ली पर फिर हमला करके दिल्ली और मथुरा को लूटा। हजारों आदमियों का वध किया और दिल्ली का शासन नजीबखाँ रुहेले को देकर पंजाब प्रान्त में अपने लड़के तैमूरशाह को नियत कर वह वापस गया। अब्दाली के आक्रमणों मे बादशाही की रक्षा करने का काम मराठों पर आ गया। अफगान-शासन को न चाहनेवाले गाजीउद्दीन के समान मुसलमानों ने मराठों का साथ दिया। नजीबखाँ व अन्य मुसलमान अब्दाली के पक्ष में थे। मराठों ने पंजाब प्रान्त पर अपना अधिकार फिर जमाया। इसी से अब्दाली ने फिर सन् १७५९ में भारत पर चढाई की। अन्त में सन् १७६१ में मराठों ने अब्दाली के साथ पानीपत के मैदान म युद्ध किया। इस युद्ध को पानीपत की तीसरी लडाई कहते हैं। इसका विस्तृत विवरण *महाराष्ट्र-शासन-काल* में दिया गया है। इस लडाई के गडबड़ में ही आलमगीर का वध किया गया।

(२) शाहआलम (सन् १७६१-१८०३)—दिल्ली में ऊपर बताई गई घटनाएं जिस समय हो रही थीं, उसी समय आलमगीर का लडका शाहजादा अलीगौहर बङ्गाल की ओर भाग गया

था। पिता के वध का समाचार सुनकर वह वहाँ शाहआलम की पदवी धारण कर बादशाही पद पर बैठा और बहुत दिनों तक अवध में रहा। अँगरेज़ और मराठे ये दोनों ही उसे अपने अपने अधीन रखना चाहते थे, लेकिन वह कहता था कि, 'जो मुझे दिल्ली पहुँचावेगा मैं उसी का आश्रय स्वीकार करूँगा'। अत वह मराठों की मदद से सन् १७७१ में दिल्ली आया। इस विषय का ख़ुलासा हाल महाराष्ट्र-शासन-काल के वर्णन में दिया गया है। उस समय राज्य में अनेक परिवर्तन हुए। रुहेलों की उन्नति हो रही थी। ये रुहेले वास्तव में अफगान थे। इन्होंने बाबर को बड़ी सहायता दी थी। इसी से उसने गङ्गा के उस पार हिमालय की तराई तक का भाग उनके बसने के लिए अलग दे दिया गया था। पहले इस प्रदेश का नाम करहल प्रदेश था। लेकिन रुहेलों के बसने से इस प्रदेश का नाम रुहेलखण्ड पड़ गया। इन्हीं में से एक सरदार नजीबखाँ इधर बीस वर्षों तक दिल्ली के शासन में प्रधान व्यक्ति बन रहा था। मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना अपना मुख्य कर्तव्य समझकर उसने बड़े ही प्रयत्न से अहमदशाह अब्दाली को बुलाया। वह सन १७७० में मरा। उसके बाद उसका लड़का जाबताखाँ बादशाही का काम देखता-भालता रहा। जाबताखाँ का लड़का गुलाम कादिर बड़ा अत्याचारी निकला। उसने बादशाह पर आक्रमण किया और दिल्ली में भयङ्कर और अनुचित काम किये। बादशाह को और उसके कुटुम्ब की स्त्रियों और बच्चों तक को चाबुकों से पिटवाया। उस दुष्ट ने बूढ़े और सीधे बादशाह की आँखें तक निकलवा लीं और राजगद्दी की अप्रतिष्ठा की। अत में बादशाह ने मराठों के सरदार महादजी सिन्धिया की सहायता लेकर गुलाम कादिर का अत्यन्त

क्रूरता के साथ वध किया। उस समय बादशाह मराठों के वश में रहा। सन् १८०३ में मराठों और अगरेजों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में दिल्ली शहर मराठों के अधिकार से निकल कर अगरेजों के हाथों में चला गया। अत बादशाह अगरेजों की शरण में रहने लगा। अगरेजों ने उसको वार्षिक वृत्ति बाँध कर उसका सब राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार मुगल बादशाही का अंत हुआ। सन् १८०६ में शाहआलम ८२ वर्ष की अवस्था में मर गया।

(३) अन्य मुगल वंशधर—शाहआलम का लड़का अकबर अगरेजों से वार्षिक वृत्ति लेकर बादशाह के नाम से दिल्ली में रहने लगा। सन् १८३७ में वह मर गया। उसके मरने पर अहमद बहादुरशाह बराबर अगरेजों से अपनी पेंशन पाता रहा। वह और उसके लड़के सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह में अगरेजों के विरुद्ध हो गये थे। इसलिए दिल्ली पर अगरेजों का अधिकार होने पर उन्होंने शाहजादों को मार डाला और बहादुरशाह को देश निकाले का दंड देकर रगून भेज दिया। वहाँ वह सन् १८६२ में मर गया। इस तरह पराक्रमी मुगल वंश का अन्त हुआ। सन् १७०७ से १८०७ तक का खुलासा महाराष्ट्र-शासन-काल और ब्रिटिश-शासन-काल के इतिहास में दिया गया है।

(४) मुगल-शासन में साम्पत्तिक तथा विद्योन्नति—मुगलों के शासन में अनेक यूरोपीयन यात्री भारत में आये। उनके लेख यद्यपि पक्षपातशून्य नहीं कहे जा सकते, तथापि उस समय की बहुत कुछ जानकारी उन लेखों से मिलती है। उस समय व्यापार की मुख्य वस्तुएँ, हर प्रकार के धान्य, कपास, नील, ऊन रेशम, इत्यादि थीं। रेशम और ऊन के यहाँ

अंग्रेज़ी शब्द होर्ड (Horde = फ़ौज का समूह) उर्दू शब्द का ही रूपान्तर है। हिन्दुओं ने भी उर्दू भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

लोकोपयोगी कार्य—(१) डाक भेजने का प्रबन्ध था। इसके लिए डाक वाले व सवार रहते थे। (२) सूरत, मुसलीपट्टन इत्यादि व्यापार के बड़े बड़े बन्दर थे। राज्य भर में बड़े बड़े मार्ग थे, जिन पर गाड़ियाँ चलती थीं। राह में धर्मशालाएँ, कुएँ, तालाब व कितने ही अन्नसत्र थे। मुख्य मार्ग काबुल, लाहौर, आगरा इलाहाबाद, ढाका तक चला गया था। आगरे से एक मार्ग चल कर अहमदाबाद-सूरत तक था। दूसरा मार्ग आगरे से बुरहानपुर, गोलकुंडा, मुसलीपट्टन तक था। सूरत से बुरहानपुर तक एक और मार्ग था। (३) मुगलों के समय के बने महल, मसजिदें, इत्यादि इमारतें आज भी निर्माण-कला के नमूने गिने जाते हैं। आगरे में "ताजमहल", और बीजापुर का "गोल गुम्बज" भारत में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में सुन्दरता के नमूने समझे जाते हैं।

सामाजिक बातें—(१) सतियों के मेले अधिक होते थे। (२) रईस लोगों के मकान बड़े ऊँचे बनते थे और इनमें नक़्क़ासी का काम ख़ूब रहता था। (३) विशेष साहस का कार्य करनेवाले को सरकार की ओर से इनाम अथवा पदवी दी जाने की व्यवस्था थी। (४) कला-कौशल की इतनी उन्नति हो रही थी कि विदेशी यात्री उन्हें नमूने की चीज समझ अपने देश में ले जाते थे। (५) देश में अपार सम्पत्ति थी। (६) पोलो नामक खेल, जो आजकल खेला जाता है, वास्तव में मुगलों के समय का खेल है। यह खेल मुगल-बादशाहों के महलों में बेगमें खेलती थीं।

मुगल-बादशाही के पतन के कारण—(१) बादशाह

के मरने पर तख्त पर बैठने के सम्बन्ध में कोई नियम न होने से घरेलू झगड़ों की उत्पत्ति। (२) नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली इत्यादि विदेशियों के भारत पर आक्रमण। (३) मराठे, सिक्ख, रुहेले, जाट, राजपूत इत्यादि लोगों द्वारा स्वातंत्र्य पाने का प्रयत्न। (४) दक्षिण में मुसल्मानी राज्यों का मुगलों द्वारा विनाश होना। (५) औरंगजेब का अदूरदर्शिता से शासन करना और उसके बाद के शासकों की दुर्बलता। (६) पश्चिमी हथियार और खासकर पश्चिमी ढंग की फौजी क्वायद और तोपखाने के ज्ञानोपार्जन की ओर न ध्यान देना। ऐसी अनेक बातें हैं जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है, जिनके कारण मुगलों का अंत हुआ।

६

तृतीय भाग

महाराष्ट्र-शासन-काल

ई० स० १६६४-१८१८

पहला अध्याय

स्वराज्य-स्थापन की शक्ति

१—महाराष्ट्र का पूर्व-वृत्तान्त २—बहमनी राज्य की आन्तरिक अवस्था
३—महाराष्ट्रों के उदय के कारण

(१) महाराष्ट्रों का पूर्व-वृत्तान्त—महाराष्ट्रों का क्रमबद्ध प्राचीन इतिहास आज भी नहीं मिलता। प्राचीन काल के ताम्रपत्र, शिलालेख इत्यादि साधनों से कुछ विद्वानों ने प्राचीन राजवंशों की थोड़ी-बहुत छानबीन की है। इस समह से महाराष्ट्रों की पूर्व स्थिति थोड़ी-बहुत जानी जा सकती है। पहले महाराष्ट्र-देश का नाम "दक्षिणपथ" व "दक्खन" था। "दक्खन" शब्द "दक्षिण" का अपभ्रंश है। नर्मदा-नदी के दक्षिण भूप्रदेश को यही नाम दिया गया है। लेकिन तापी और तुङ्गभद्रा के बीच के भूप्रदेश को "महाराष्ट्र"

कहते थे। ईसवी सन् के पूर्व इस प्रदेश में "राष्ट्रिक" या "रट्ठे" नाम के लोग बसते थे। वे आगे चल कर बड़े प्रबल हुए। इसलिए उन्होंने अपना नाम "महाराष्ट्रिक" अथवा "महारट्ठे" रक्खा। "रट्ठे" शब्द "राष्ट्रिक" शब्द का अपभ्रंश है। उनके नाम पर इस देश का भी नाम "महाराष्ट्र" पड़ा। लोनावला—स्थान के समीप "भाजे" व "कार्ले" की जो गुफाएँ हैं, उनमें खुदे हुए शिलालेखों में "महारट्ठा" अर्थात् "मराठा" शब्द का प्रयोग इस देश के लोगों के लिए किया गया है।

ई० स० पू० ७३ वर्ष से सन् २१८ तक इस देश पर जिन राजाओं का शासन था उन्हें आंध्र भृत्य शातवाहन या शालिवाहन कहते हैं। इस बीच में दश-बीस वर्ष तक "शक" जाति (यवन) ने भी इस देश पर शासन किया था। इसका वृत्तान्त विष्णु और मत्स्य पुराणों में मिलता है। शकों ने अपना नया संवत् चलाया था। इसी संवत् को बाद को शालिवाहनों ने भी स्वीकार किया था। इसलिए इस संवत् का नाम "शालिवाहन-शक" पड़ा। शक लोग हार कर देश से निकल भागे, लेकिन उनका चलाया संवत् आज भी यहाँ माना जाता है। शालिवाहनों के शासन-काल में महाराष्ट्र में बौद्धधर्म का प्रचार अधिक था। उस समय के राजा, धनिक, व्यापारी लोग बौद्ध भिक्षुओं के लिए वन में गुफाएँ इत्यादि तैयार कराते थे। वे गुफाएँ आज-कल "भाजे", "कार्ले" इत्यादि स्थानों में अब तक बनी हुई हैं। इन गुफाओं में भिक्षु लोग अर्थात् बौद्ध धर्मावलम्बी साधु भिक्षा माँग कर अपना जीवन व्यतीत करके वर्षा के दिनों में

आकर रहते थे। इन बौद्ध-भिक्षुओं की भांति ब्राह्मणों को भी दान देने की प्रथा चल पड़ी। महाराष्ट्रवालों का विदेशों के साथ बहुत व्यापार होता था। विदेशों को माल भेजने के लिए उस समय भड़ौच बहुत बड़ा बंदर था। शालिवाहनों की राजधानी पैठन नगर थी। उस समय पैठन नगर उन्नति पर था। प्रजा सुखी और धन धान्य से पूर्ण थी।

सन् २१८ से ६०० तक का ऐतिहासिक वृत्तान्त अनिश्चत है। इसके बाद ६०० से ७४७ तक चालुक्यवश का शासन रहा। इन चालुक्यों का शासन उत्तर मे नर्मदा तक और दक्षिण में ठेठ कन्या कुमारी तक था। बीजापुर-ज़िले मे बादामी नामक एक स्थान है। इसका पहला नाम बातापी या बातापीपुर था। यहीं चालुक्यो की राजधानी थी। इसी वश के राजा द्वितीय पुलकेशी ने कन्नौज के राजा श्रीहर्ष को हराया था। हुएनसेङ्ग नाम के प्रसिद्ध चीनी यात्री ने इस राजा से भेंट की थी। इस चीनी यात्री ने जो वर्णन तत्कालीन महाराष्ट्र-देश का किया है उससे पता लगता है कि महाराष्ट्र उस समय पूरी उन्नति कर चुका था। पुलकेशी के भेजे हुए राजदूत ईरान के शाहशाह के दरबार में रहते थे। उसके नक्क़ाशी के चित्र अजता की गुफा में अब भी देखे जा सकते हैं। चालुक्यों के समय में बौद्ध-धर्म की अवनति हो चली थी और वैदिक तथा जैन धर्म की उन्नति हो रही थी। चालुक्यों का अन्त होने पर राष्ट्रकूटो का शासन महाराष्ट्र देश में प्रारम्भ हुआ। यही महाराष्ट्रों का पहला राजवंश है। इस राजवश का शासन सन् ७४८ से ९२३ तक रहा। इसकी राजधानी का नाम मान्यखेट था। आजकल यह स्थान निज़ाम-राज्य में "मालखेड" के नाम से

प्रसिद्ध है। वेरूल में जो बड़ी सुन्दर गुफायें हैं वे इन्हीं के शासन-काल में बनी थीं। राष्ट्रकूट राजाओं ने विद्या के प्रचार में अच्छा उत्साह प्रदान किया था। ये राज बड़े वैभवशाली थे।

सन् ९७३ से सन् ११८९ तक चालुक्य फिर महाराष्ट्रों को अपने अधिकार में किये रहे। चालुक्य-राजा "उत्तर-चालुक्य" वंश के कहे गये। इनकी राजधानी उस स्थान पर थी जहाँ आज-कल कल्याण बसा हुआ है। यह कल्याण शहर निजाम-राज्य में है। "मिताक्षरा" का रचयिता विज्ञानेश्वर ही चालुक्यराज विक्रमादित्य का मन्त्री था। इस वंश के शासन का अन्त होने पर महाराष्ट्र में यादव वंश का शासन हुआ। इस वंश में "सिंघण" नाम का एक परम पराक्रमी राजा हुआ। इसने १२२० से १२४७ तक शासन किया। इसने मालवा, गुजरात दक्षिण महाराष्ट्र इत्यादि प्रान्त जीत कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। सतारा जिले में "शिंगणापुर" नाम का एक गाँव है। यह गाँव इसी राजा का बसाया हुआ है। उसके दरबार में अनेक ज्योतिषी एवं पण्डित उपस्थित रहते थे। सिंघण का पोत्र रामचंद्र या रामदेव देवगिर में जाकर शासन करने लगा। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने इसे हरा दिया। हार जाने पर रामदेव ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। रामदेव के मरने पर उसके राज्य को सन् १३१८ में मुसलमानों ने जीत लिया। हेमाद्रि नाम का एक विद्वान् पुरुष रामदेव के दरबार में प्रधान था। उसे लोग हेमाडपन्त भी कहते हैं। इस विद्वान् की चलाई मोडी लिपि और हेमाडपती पद्धति के भवन अब भी प्रसिद्ध हैं। "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" नाम का संस्कृत में धर्मशास्त्र का जो ग्रन्थ है उसे पंडित हेमाद्रि ने ही रचा था। इस ग्रन्थ को

पंडित लोग प्रामाणिक मानते हैं। सुप्रसिद्ध व्याकरणकार वोपदेव हेमाद्रि के ही पास रहा करता था। रामदेव के शासन-काल में ही प्रसिद्ध साधु ज्ञानेश्वर हुआ, जिसने महाराष्ट्र-भाषा का पहला बृहद् ग्रन्थ रचा। यादवों के समय में महाराष्ट्र भाषा की अच्छी उन्नति हुई।

(२) बहमनी या बहामनी शासन और उसकी आन्तरिक अवस्था—सन् १३१८ से १३४७ तक महाराष्ट्र-देश दिल्ली के सुल्तान के अधीन रहा। सन् १३४७ में बहामनी नामक एक स्वतन्त्र मुस्लिम-शासन इस देश में स्थापित हुआ। इस शासन में सम्पूर्ण महाराष्ट्र-देश शामिल था। इस शासन का कुछ वृत्तान्त हम पहले दे चुके हैं। दक्षिण में तुंगभद्रा-नदी के किनारे इन्हीं दिनों एक प्रवल हिन्दू-राज्य की स्थापना हुई थी। इस राज्य का नाम "विजयनगर" राज्य था। इस तरह दोनो की स्थापना हो चुकने पर दो सौ वर्षों तक इन दोनों राज्यों में बराबर पारस्परिक झगड़े चलते रहे। धीरे धीरे बहामनी राज्य की सीमा उत्तर में नर्मदा तक ओर दक्षिण मे तुङ्गभद्रा तक हो गई। इसमें कोंकण भी बहामनी शासन के अधीन हो गया। उस समय बहामनी शासन की विशालता के साथ साथ उसके ऐश्वर्य और बल की इतनी बृद्धि हुई कि उसकी बराबरी दिल्ली के साथ होने लगी। यही नहीं, उस समय बहामनी राज्य दिल्ली से भी कई अंशों में चढ़ा-बढ़ा था। किन्तु बहामनी सुलतानों ने अपने अधीनस्थ सूबेदारों को अनेक ऐसे अधिकार दे दिये जिससे वे स्वतंत्र हो गये। उसी समय बाबर ने दिल्ली में मुग़ल शासन जमाया। पर इधर महाराष्ट्र-देश में बहामनो राज्य टूट कर पाँच भिन्न भिन्न भागो में बँट गया। इनमें से बीजापुर की

आदिलशाही, अहमदनगर की निजामशाही व गोलकुंडा या गोवलकोंड्या की कुतुबशाही का सम्बन्ध महाराष्ट्र से रहा। शिवाजी के पूर्वज व अन्य महाराष्ट्र सरदार इन तीनों राज्यों में अधिक प्रवल थे। इन्हीं सरदारों को आगे चल कर शिवाजी ने एकत्र कर महाराष्ट्र-शासन की जड़ जमाई थी। इन तीनों राज्यों में अनेक विदेशी व्यापारी आकर मालामाल हुए। इतना होते हुए भी यादवकालीन महाराष्ट्रराजवंशधर, जो इन राज्यों में वसते थे प्रवल थे और मुसलमानी फौजों में इन्हीं की भरती अधिक थी।

(३) महाराष्ट्रों की उन्नति के कारण—(१) यद्यपि मुसलमानों ने भारत को जीत लिया था, तथापि मुसलमानों के मूल-स्वरूप में विकार पैदा हो गया था। दक्षिण में तो वे बहुत बदल गये थे। हिन्दू स्त्रियों से विवाह होने और हिन्दुओं से मिलने पर जो मुस्लिम प्रजा हुई उसके शरीर में विदेशी मुसलमानों का सा तेज न रह गया। (२) महाराष्ट्र जैसे पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ देश में मुसलमान लोग अच्छी तरह अपना पैर न जमा सके। (३) गाँववाले अपनी पद्धति के अनुसार अपने अपने काम में अपनी सीमा के भीतर बहुत कुछ स्वतन्त्र थे। (४) उत्तर-भारत में जैसा मुस्लिम शासन जमा, वसी पक्की नींव महाराष्ट्र-देश में मुस्लिम शासन की न जम पाई। फौज, व्यापार इत्यादि सभी वातों में मुसलमानों को महाराष्ट्रों का सहारा लेना पड़ता था। अनेक महाराष्ट्र सरदार और दरबारियों की उन्नति मुस्लिम शासन-काल में हुई। कबर सेन नामक एक ब्राह्मण विद्वान निजामशाही में प्रधान मन्त्री था। इसी प्रकार मुरार जगदेव

नाम का एक चतुर गृहस्थ आदिलशाही राज्य में था। मदन पंत (मादण्णा) व एकनाथ पंत (आकण्णा) नाम के दो दरबारी कुतबशाही राज्य में विख्यात थे। इसी प्रकार कदमराव, रामराव जगदेव राव, लखू जी, जाधव राव इत्यादि महाराष्ट्र सरदार फौजों में काम करते थे। जावली के मोरे, कोकण के शिर्के, फालटन के निंबालकर, खटाव व वड़ी के देशमुख, घाटगे, उसी प्रकार घोरपड़े, माने, डफले गुजर, भोंसले इत्यादि महाराष्ट्र सरदारों की भर्ती मुसलमानी फौजों में होती थी। (५) इन कारणों के अतिरिक्त महाराष्ट्र के उदय होने का एक कारण यह भी था कि दो सौ वर्षों में भारत के अनेक प्रसिद्ध साधु-संतों का उदय इसी देश में हुआ। इनमें मुकुन्दराव, ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, इत्यादि की मंडलियों ने अपने पवित्र व्यवहार और प्रेम पूर्ण उपदेशों से महाराष्ट्र में स्वदेश, स्वभाषा, व स्वधर्म के लिए लोगों के चित्त में अभिमान उत्पन्न किया और संस्कृत भाषा में लिखे ग्रन्थों को देशी भाषा में लिख कर उनका ज्ञान लोगों को कराया। मुसलमानों की परस्पर की कलह, उनके शासन की दुरवस्था, हिन्दुओं के साथ छल करने से उनमें उत्पन्न होनेवाला आवेश और विशेष कर इन संत मंडलियों द्वारा किये गये धर्म-सुधार के बल पर अभिमान इत्यादि बातों और उनमें शिवाजी जैसे योग्य नेता की सहायता ने उनका संगठन किया और इसी से उनके स्वतंत्र राज्य की स्थापना हुई।

दूसरा अध्याय

शिवाजी का पूर्व-चरित

ई० स० १६२७ १६६२

१—शाहजी भोसले   २—शिवाजी का बाल्यकाल
३—राज्य स्थापन का मूल   ४—बीजापुरवालों से पहला युद्ध

(१) शाहजी भोसले (सन् १५९४ १६६४)—भोंसले क्षत्रिय हैं। वे अपनी उत्पत्ति उदयपुर के शिसौदियों से मानते हैं। सैकड़ों वर्षों से वे पूना तथा उसके समीप हिंगणी, बेरडी, देवल-गाँव इत्यादि स्थानों में पटेल या सरदेशमुखी का काम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। बाद को उन्होंने दौलताबाद के समीप वेरूल गाँव की पटेली ले ली। सरदेशमुख वह व्यक्ति कहलाता है जो सरकारी कर वसूल कर १० फी सैकडा खुद ले लेता है। उस समय पटेल गाँव में राजा का सा सम्मान पाता था। उसी की सत्ता गाँववाले मानते थे। भोंसले-वंश में सम्भाजी नाम क एक व्यक्ति थे। उनका एक लडका सन् १५३३ में पैदा हुआ। इसका नाम बाबाजी भोंसले था। बाबाजी के दो पुत्र—मालोजी (जन्म सन् १५५०) विठोजी (जन्म सन् १५५३) थे। ये दोनों भाई निजामशाही दरबार के प्रधान सरदार लखूजी यादवराव के यहाँ नौकर हो गये। मालोजी का विवाह फाल-

और जिजाबाई में अधिक नहीं पटी। उसके दो बालक हुए। बड़े का नाम सम्भाजी था। इसका जन्म सन् १६२३ में हुआ था। छोटे का नाम शिवाजी था। उसका जन्म शिवनेरी क़िले में वैशाख शुक्ल २ शनिवार शक १५४९ ता० ७ अप्रैल सन् १६२७ के दिन हुआ (जेंठ शकावली के प्रमाणानुसार उनकी जन्म-तिथि शुक्रवार फाल्गुन वदी ३ शके १५५१ ता० १९ फरवरी १६३० है)। शाहजी ने बाद को अपना दूसरा विवाह किया। इस स्त्री का नाम तुकाबाई था। यह मोहिता की कन्या थी। इस स्त्री से व्यंकोजी नाम का पुत्र हुआ। बीजापुर की नौकरी में आकर शाहजी ने कर्नाटक में एक नया राज्य प्राप्त किया। यह तंजौर-राज्य उनके पुत्र व्यंकोजी को मिला। पूना और सूपा की दो जागीरें और शिवनेरी व चाकन के दो क़िले और उनके आस पास की भूमि की मालगुजारी निजामशाह से शाहजी को मिली थी। उस निजामशाही के नष्ट होने पर बीजापुर के अधिकार में वह सब भूमि चली गई। वहाँ रहने पर भी वह शाहजी के ही अधिकार में रही। इस जागीर में शाहजी के लड़के शिवाजी और उसकी माता रहने लगीं।

(२) **शिवाजी का बाल्यकाल**—जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय महाराष्ट्र देश में बड़ी खलबली मची हुई थी। माता का लाड़-प्यार इस बालक पर विशेष था। शाहजी के प्रबन्धक दादाजी कोंडदेव और शिवाजी की माता जिजाबाई दोनों ने मिलकर शिवाजी को बचपन से अच्छी शिक्षा दी। इन दोनों ही व्यक्तियों ने राज्यों की उलट पलट देखी थी। इसलिए जिजाबाई ने अपने पूर्वजों के शौर्य के कृत्य और उनके वैभव की बातें



श्री शिव जी महाराज



समर्थ गुरु रामदास



बघनखे

शिवाजी को सुना सुना कर उसके चित्त में शौर्य और साहस के कार्य करने की शिक्षा का प्रभाव पूरी तरह से जमा दिया। इसी प्रकार शिवाजी को अक्षर बोध, हिसाब किताब, पुराण की कथायें इत्यादि दादाजी कोंडदेव ने सिखाईं। जिजाबाई ने उसे देश की परिस्थिति का ज्ञान करा दिया। शिवाजी की मा स्वभाव से ही बड़ी अभिमानिनी और महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री थी। दूसरे की कही हुई बातों का बड़ी जल्दी प्रभाव उस पर पड़ता था। थोड़ी सी बात को वह बहुत बुरा मान जाती थी। उसका सारा जीवन संकट में बीता था। इससे उसमें साहस अधिक था। अन्य किसी का आधार न होने के कारण उसका सर्वस्व केवल शिवाजी ही था। अर्थात् माता पिता के उदाहरण को देख बाल्यकाल से ही पराक्रम दिखाने की स्फूर्त्ति शिवाजी में उत्पन्न हो गई थी।

दादाजी कोंडदेव ने पूना में महल बना कर शिवाजी के रहने का प्रबन्ध कर दिया था। उसने शिवाजी को गाँव की पंचायत और प्रबन्ध का कार्य भी सिखाया और उसमें बैठ कर उसके भूमि-सम्बन्धी झगड़े भी उससे मिटवाये। जमीन की पहचान, मालगुजारी की वसूलयाबी, हिसाब किताब रखने का काम, खेती को प्रोत्साहन करने तथा लोगों के झगड़े मिटाकर उनकी स्थिति सुधारने इत्यादि का कार्य दादाजी के साथ साथ रह कर शिवाजी ने गाँव गाँव फिर कर किया। घोड़े पर सवारी करना, निशाना मारना, लाठी चलाना इत्यादि वीरोचित कार्य भी दादाजी ने शिवाजी को सिखाये। जागीर की रक्षा के लिए दादाजी ने एक छोटी सी फौज रक्खी। जंगली जानवरों को मार खेतों की रक्षा की। लगान की माफी देकर उन्होंने खेत सुधारने के लिए खेतिहरों को समुत्साहित किया। शिवाजी ने आगे चल कर जो प्रतिभा अपने राज्य प्रबन्ध में दिखाई थी उस

प्रतिभा की जड़ इसी समय मजबूत की गई थी। जैसे जैसे शिवाजी की अवस्था बढ़ने लगी, वैसे ही वैसे वह अधिक पराक्रम के कार्य करने लगा। गाँवों में जाकर अपने समान साहसी व्यक्तियों को एकत्र करके वन्य पशुओं का शिकार करता पहाड़ी मार्गों को देखता, किलों के गुप्त मार्गों की देख-भाल करता। कौन धनी है, कौन शूर है, किस स्थान में कैसी परिस्थिति है, इत्यादि सब बातों को बडी सावधानी से मनन करता। सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) के पूर्वी ढालू देश का नाम मावल हैं। यह मावल देश १२ भागों में बँटा है। यहाँ के लोग बड़े विश्वस्त, सुहृद् और अपनी जान पर खेल कर अपने सौहार्द की रक्षा करना धर्म मानते थे। शिवाजी ने उनको अपने पक्ष में किया। कान्होजी जेढे, बाजी सर्जेराव, (कान्होजी के पुत्र) बाजी पासलकर (कान्होजी के श्वसुर), येसाजी कक, तानाजी मालुसुरे इत्यादि बाल्यकाल से ही शिवाजी के अभिन्न मित्र बन गये थे। इनके सिवा दादाजी की देख भाल में जागीर का काम करनेवाले श्राबाजी सोनदेव, रघुनाथ बल्लाल, कोरडे, बालकृष्णपंत, मुजुमदार और गोमाजी नाईक, पानसबल, इत्यादि जिजाबाई के पिता के घर की ओरवाले होकर भी ये सभी शिवाजी की सहायता करने लगे। शिवाजी ने अपने विलक्षण साहस और पराक्रम के द्वारा लोगों पर अपनी धाक जमा दी। सन् १६४७ में दादाजी कोंडदेव के मरने पर जागीर की व्यवस्था शिवाजी स्वत करने लगा, उसके इस उद्योग में गुप्त रूप से उसका पिता शाहजी भी सहायता देता था।

(३) राज्य-स्थापन का प्रारम्भ—शिवाजी ने पहले जागीर का प्रबन्ध किया। आसपास के अनेक किलेदारों को अपने वश में करके चारों ओर के मराठे सरदारों को दबा लिया। (१) सन् १६४६ के लगभग शिवाजी ने पूना के समीप "तोरण" नाम का किला दबा लिया। वहाँ उसे प्रचुर धन मिला। (२) मोरो पंत पिङ्गले की सहायता से समीप ही "राजगढ" नाम का किला बनवाया। (३) शाहजी की दूसरी स्त्री का भाई बाजी मोहिते सूपा में रहता था। वह शिवाजी को नहीं मानता था। अत शिवाजी ने एक बार आधी रात में छापा मार कर उसे कैद किया, और बाद को उसे कैद में ही शाहजी के पास भेज दिया। (४) चाकन के किलेदार फिरङ्गोजी नरसाला को पकड़ कर किले पर अपना अधिकार जमाया। (५) कोंडाणा किले में एक मुसलमान किलेदार था, उससे किला छीन कर उसका नाम सिंहगढ़ रक्खा। (६) पुरन्धर के किले में एक ब्राह्मण किलेदार था। उस समय वहाँ कुछ झगडा चल रहा था। उसका निपटारा करने के लिए वह वहाँ गया। उसने किलेदार को कैद करके उस को भी अपने अधिकार में कर लिया। (७) कल्याण प्रान्त में मौलाना अहमद सूबेदार था। उसे आबाजी सोनदेव के द्वारा पकड कर उस प्रान्त पर अपना अधिकार जमाया और वहाँ के खजाने को भी ले लिया। (८) कोंकण में पश्चिम-तट पर जजीरा में सीदी नाम का व्यक्ति बीजापुर की ओर से जहाजों का मुखिया था। ये सीदी लोग अबीसीनियाँ के रहनेवाले थे, इसलिए ये हबशी कहलाते थे। अरब-समुद्र पर अरब-लोग ही व्यापार करते थे। इससे पुर्तगेज व यूरोपीय व्यापा

रियों की उनके साथ सदैव लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। मुसलमान बादशाहों ने इनको सहारा दिया। इससे इनका प्रवश दक्षिण में भी हुआ। इन्हीं हवशियों की संतान ये सीदी लोग थ। जलमार्ग-द्वारा आनेजानेवालों की देख भाल रखना, मक्के के यात्रियों की यात्रा का प्रवन्ध करना इत्यादि कार्य सीदी लोगों को सिपुर्द किये गये थे। शिवाजी ने सीदी के देश पर चढाई की और कोंकन के अनेक क़िलों पर अपना अधिकार जमा लिया। वहाँ के रायगढ किले को जीत कर उसका सुप्रवन्ध किया। आगे चल कर इसी को शिवाजी ने अपने राज्य की राजधानी बनाया था। (९) कोंकन में समुद्रतटस्थ देश को अपने अधिकार में किया और "राजापुर" नामका एक बंदर भी जीता। इस चढ़ाई में बालाजी आवजी और उसके दो भाई भी शिवाजी के पक्ष में आ गये। बालाजी को शिवाजी ने अपना मन्त्री बनाया। इसी घराने में शिवाजी की चिटनवीसी का काम अन्त तक रहा। महाराष्ट्र-इतिहास की अधिकाश सामग्री इसी घराने द्वारा तैयार की गई है। बालाजी ने शिवाजी का कार्य बड़े विश्वास के साथ किया ।

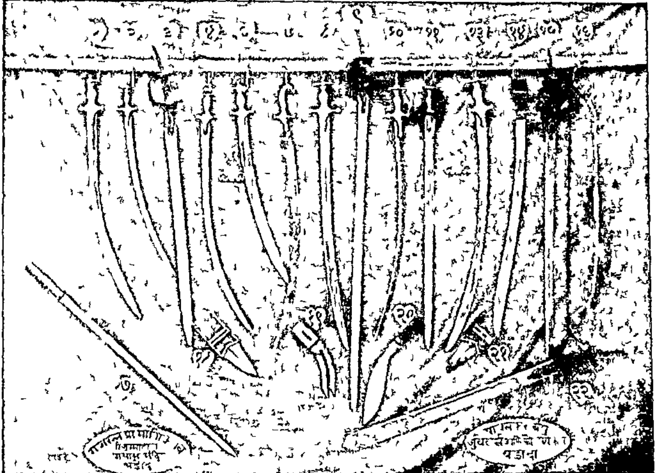
इस रीति से कल्याण से ले कर राजापुर तक कोंकन प्रदेश और घाट का शीर्प प्रदेश थोड़े ही समय में शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया। बड़े बड़े किले उनके अधिकार में आ गये। चारों ओर उनकी मालगुजारी लगने लगी, धन एकत्र कर फौज तैयार करने में खर्च किया गया। जीते हुए प्रदेश का सुप्रबन्ध करने के लिए उन्होंने अपने सहायनार्थ एक व्यक्ति रक्खा। बड़े बड़े योग्य पुरुप शिवाजी के पास आने और काम पाने। आज्ञानुसार चलनेवालों का पालन और आज्ञा का उल्लंघन करने-

घालों का नाश करना शिवाजी ने प्रारम्भ किया। धीरे धीरे शिवाजी ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।

(४) बीजापुरवालों के साथ पहला युद्ध (सन् १६५९-६२)- ऊपर बतलाये गये सभी कार्य शिवाजी ने सन् १६४५-४८ के बीच में कर लिये थे। इन कार्यों से अपनी हानि होती देख बीजापुर का सुलतान अली आदिलशाह शिवाजी पर क्रुद्ध हुआ। ओर शिवाजी के साहस को दबा रखने के लिए उसने शाहजी को बाजी घोरपड़े नामक सरदार-द्वारा पकड़वा कर कैद कर लिया। ६-८-१६४८ को जब यह समाचार शिवाजी को मिला तब वह स्वयं कुछ उलझन में पड़ गया। इस समय दिल्ली के तख्त पर शाहजहाँ था। शाहजहाँ दक्षिण पर अधिकार जमाने के लिए निगाह गड़ाये बैठा था। वह दक्षिण के राज्यों को अपने अधिकार में करना चाहता था। इस बात को भलीभाँति समझ कर शिवाजी ने एक दूत शाहजहाँ के पास भेज कर अपने पिता शाहजी को बीजापुर के शाह की कैद से छुड़वा देने की प्रार्थना की। बादशाह को शाहजी या शिवाजी जैसे मनुष्यों को अपनी ओर मिलाने की आवश्यकता भी थी। उस समय मुराद दक्षिण का सूबेदार था। इसलिए शाहजहाँ ने मुराद से बीजापुर के नाम पत्र लिखवा भेजा कि शाहजी तुरन्त छोड दिये जायें। इस प्रकार शिवाजी ने अपने पिता को कैद से छुड़वा लिया (ता० १६-५-१६४९)। और आगे ६ वर्ष तक शिवाजी ने कोई झगडा खडा न कर अपने राज्य के प्रवन्ध की ओर ध्यान दिया। सन् १६५५ में सतारा के पश्चिम में जावली के चंद्रराव मोरे नामक बीजापुरी जागीरदार शिवाजी के साथ छेड़छाड करने लगा। इसलिए उस पर छापा मार कर शिवाजी ने जावली पर अधिकार कर लिया और उसके प्रवन्ध के लिए

पास ही प्रतापगढ़ का क़िला बनाया। इसके बाद शिवाजी ने हिरडस के देशमुखों से रोहिडा का क़िला छीना। इससे नाराज होकर आदिलशाह ने अफजलखाँ नामक एक प्रबल सरदार को शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए भेजा। अफजलख़ाँ सह्याद्रि-प्रान्त में १० वर्ष तक शासन कर चुका था। इसलिए उसे उस प्रान्त की राई-रत्ती की ख़बर थी। इस समय शिवाजी प्रतापगढ में था। अफ़जल ख़ाँ का सामना करना उसके वश की बात नहीं थी। इसलिए पताजी गोपीनाथ नाम के अपने एक वकील को भेजकर ख़ाँ साहब से कहला भेजा कि मैं आपसे मिल कर मामले को तय करने के लिए तैयार हूँ। पर भेंट एकान्त में होनी चाहिए। इस सन्देश के अनुसार प्रतापगढ़ के नीचे एक सुन्दर ख़ीमे में दोनों की भेंट हुई। भेंट होने के समय अफ़ज़लख़ाँ ने शिवाजी को गिरफ़्तार करने का प्रयत्न किया। इस पर शिवाजी ने अपने हाथों में पहने हुए वघनखों से अफजलख़ाँ का पेट चीर डाला और वहीं उसे मार डाला। अफजलख़ाँ की फ़ौज का पीछा करके उसे तितर-बितर कर दिया (ता० २४-११-१६५९)।

अफजलख़ाँ का वध होने से बीजापुर के शाह का पक्ष बहुत दुर्बल हो गया। शिवाजी के वैभव की वृद्धि हुई और उसका नाम भी प्रसिद्ध हो गया। अगले वर्ष अफ्जलख़ाँ का पुत्र फाज़ल ख़ाँ व सीदी जौहर नाम के अन्य दो सरदारों ने शिवाजी को पन्हल किले में घेर लिया। लेकिन रात में शिवाजी ने घेरने-वालों की फ़ौज को भेद कर विशालगढ की राह पकडी। फाजल ख़ाँ ने उसका पीछा किया। रास्ते में फाजलख़ाँ से शिवाजी के सरदार बाजी देशपाडे से मुठभेड़ हो गई। उसने फाजलख़ाँ को आगे न बढने दिया और वहीं अपने प्राण गँवा दिये। सन्



१६६१ में मुधोल के बाजी घोरपडे पर शिवाजी ने छापा मारा और वहीं उसका अंत किया। सन् १६५७ के आस पास खेम सावत नाम के पुरुष ने अपना प्रबल पराक्रम दिखा कर बीजापुर के सुलतान के आश्रय में सावतवाड़ी में छोटा सा राज्य स्थापित किया था। शिवाजी ने इसको जीत कर सन् १६५९ में अपने अधीन किया। लेकिन उसने फिर शिवाजी के विरुद्ध उभड़ कर युद्ध प्रारम्भ किया। इस युद्ध में भी शिवाजी ने उसे पूरी तरह से हरा दिया। सभाजी के समय में यह सावत औरङ्गजेब से जा मिला था। बाद में साहू ने उसका पक्का प्रबन्ध किया। इसकी पदवी भोंसले है। सन् १६६२ में जजीरा के सीदी हार कर शिवाजी से मिल गये। इस प्रकार बीजापुर की ओर से लड़नेवाले सभी सरदारों की हार हो गई। इस प्रकार निरुपाय होकर बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के साथ सन्धि करने के लिए शाहजी को भेजा। शाहजी के पूना आने पर पिता-पुत्र का मिलाप बड़े प्रेम के साथ हुआ। शाहजी ने शिवाजी से अपने जीवन पर्यन्त बीजापुर के शाह को तङ्ग न करने का सङ्कल्प कराया। शाहजी इसके बाद कर्नाटक लौट गये। जजीरा के सीदी का प्रबन्ध करने के लिए दण्डाराजपुरी में शिवाजी ने एक नौसेना तैयार की और उसकी देख-भाल करने के लिए दरियासाँ और मायनाक भण्डारी नाम के दो सरदारों को मुखिया बनाया। आगे चल कर सीदी व मराठों में परस्पर अनेक युद्ध हुए। बीजापुर के साथ युद्ध करके शिवाजी को बड़े लाभ हुए। इन युद्धों में अनेक मराठे सरदार शिवाजी के पक्ष में आ गये और इससे उसने अपने राज्य की स्थापना की।

तीसरा अध्याय

राज्य-स्थापन

ई० स० १६६२-१६८०

१—मुगलों के विरुद्ध युद्ध और दिल्ली की यात्रा
२—शाहजी की मृत्यु व राज्य-स्थापन
३—बीजापुर वालो से दूसरा युद्ध
४—राज्याभिषेक
५—कर्नाटक पर आक्रमण व अन्त

(१) मुगल युद्ध (सन् १६२२-७२)—पहली लड़ाई—बीजापुर वालों के साथ संधि हो जाने पर सन् १६६२ में मोरोपन्त पिङ्गले व नेताजी पालकर दो सरदारों ने मुगलों की राज्य-सीमा में धावा मारकर बड़ी लूटपाट की और किलों पर अपना अधिकार जमा लिया। ये घटनाएँ जब औरङ्ग़ज़ेब के कान तक पहुँचीं तो उसने शिवाजी को वश में करने का काम शायस्ताखाँ को दिया। यह अमीर औरङ्ग़ज़ेब का मामा था और उसका विश्वासपात्र भी था। इस समय शायस्ताख़ाँ दक्षिण का सूबेदार था। उसने तत्काल शिवाजी से चाकन का किला छीन लिया और पूने पर आक्रमण कर नगर में आकर शिवाजी के महल में ठहरा (मई सन् १६६०)। उस पर शिवाजी ने ता० ५-४-१६६३ की रात में

अकस्मात् छापा मारकर शायस्ताखाँ के लड़के को मार डाला और खिड़की से निकल कर भागते हुए शायस्ताख़ाँ की एक उँगली काट ली। **दूसरी लड़ाई**—पहले युद्ध में शायस्ताखाँ का वृत्तान्त सुन कर औरङ्गजेब ने यशवन्तसिंह और अपने पुत्र मुअज्जम को शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सन् १६६४ में शिवाजी ने मुगलों का एक धनी नगर सूरत लूट लिया। **तीसरी लड़ाई**—इस घटना को सुन औरङ्गजेब ने जयसिंह और दिलेरखाँ को शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। उन्होंने पूना पर धावा करने के लिए पुरन्दर के पास घेरा डाल दिया। उनकी फौज बड़ी थी। शिवाजी ने देखा कि इस बड़ी फौज से लड़ना कठिन है। शत्रुओं ने पुरन्दर के किले पर घेरा डाल दिया था। और उसमें शिवाजी का एक शूर सरदार मुरार बाजी मारा गया। यह देख शिवाजी ने जयसिंह और दिलेरखाँ के पास सन्धि करने के लिए कहला भेजा। यह बात जयसिंह और दिलेरखाँ ने स्वीकार की। ये बातें निश्चित ठहरीं कि शिवाजी औरङ्गजेब से भेंट करने के लिए दिल्ली जाय और सभाजी बादशाह की फौज में नोकरी करे। यह पुरन्दर की सन्धि ता० १२ ६ १६६५ के दिन हुई। इसी समय बीजापुर के राज्य से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार शिवाजी को दिया गया। सम्पूर्ण आमदनी में से चतुर्थांश भाग कर के रूप में लेने को चौथ कहते हैं और वसूलयाबी की रकम के दशांश को सरदेशमुखी कहते हैं। इस विषय की अधिकार-सम्बन्धी बातें सातवें पाठ में दी गई हैं। इस अधिकार के मिलने से ही मराठों ने आगे चल कर अनेक प्रदेश जीते और अपना राज्य बढ़ाया।

दिल्ली की यात्रा (सन् १६६६)—दिल्ली जाने में किसी

प्रकार का भय नहीं होगा—शिवाजी ने इस बात का वचन जयसिंह से ले लिया था। जयसिंह दक्षिण में थे, लेकिन उन्होंने अपने पुत्र रामसिंह को दिल्ली में पत्र भेजकर शिवाजी का उचित प्रबन्ध करने को लिख भेजा था। सम्भाजी और शिवाजी पहले ही चल पड़े थे। इसलिए १२-५-१६६६ के दिन उनकी बादशाह से भेंट हुई। उस समय शिवाजी का कुछ अपमान हो गया और इससे दोनो एक दूसरे से चिढ़ गये। इस पर औरङ्गज़ेब ने शिवाजी को जिस मकान में ठहरे थे उसी मे नज़र बन्द कर दिया। शिवाजी ने अमीर-उमरा के पास मिठाई के टोकरे भेजने प्रारम्भ किये और १९-८-१६६६ के दिन सायंकाल के समय स्वयं व सम्भाजी दो टोकरों मे बैठ कर कैद से बाहर निकल भागे। शिवाजी वैरागी का वेष धर कर मथुरा, प्रयाग, काशी की राह से अपने किले रायगढ़ आ पहुँचे। बादशाह के समीप पहुँचने से शिवाजी को वहाँ की भीतरी बातें बहुत मालूम हो गईं, जिनका उपयोग भी उन्होंने बहुत किया।

पीछे सम्भाजी भी वापस आ गये। **चौथी लड़ाई**—रायगढ वापस आकर शिवाजी ने छीने हुए क़िलों पर फिर अपना अधिकार जमाया। और मुगलो की राज्य-सीमा में उपद्रव करना शुरू कर दिया। ता० ४-२-१६७० के दिन तानाजी मालुसरे को भेज कर सिंहगढ का क्लिा वापस ले लिया। इस युद्ध में तानाजी ने अद्वितीय पराक्रम दिखाया, किन्तु इस युद्ध में वह भी मारा गया। इसी घटना के कारण "गढ आया लेकिन सिंह गया" कह कर उस क्लिे का नाम कोंढ़ाणा से बदल कर "सिंहगढ" रख दिया। ता० ४-१०-१६७० के दिन सूरत शहर पर दूसरी चढ़ाई की और वहाँ से बहुत सा धन शिवाजी लाद कर ले आया। उसके लाने पर

"चाँदवड़" स्थान म मराठों व मुगलों की लड़ाई हुई। इसमें मुगलों की हार हुई। सन् १६७१ ७२ में खान देश पर मराठों के आक्रमण हुए। वहाँ साल्हेर के घनघोर युद्ध में भी मुगलों की फौज हार गई। अन्त में पुरन्दर वाली सन्धि को बादशाह ने स्वीकार किया और शिवाजी की स्वतन्त्रता भी उसने स्वीकार की। इसी प्रसङ्ग में सम्भाजी को पचहजारी का मनसब मिला और बरार की जागीर भी बादशाह से मिली।

(२) शाहजी की मृत्यु और राज्य-स्थापन—इसी बीच में सन् १६६४ फर्वरी मास में शाहजी हरिहर के समीप होदि-कैरी स्थान में ता० २३ १ १६६४ के दिन घोड़े से गिर पड़ने के कारण मर गये। शाहजी ने ८७ १५ वर्ष तक निजामशाही का कार्य करते हुए प्रत्यक्ष बादशाह की भी कुछ परवा नहीं की। यह देख कर तत्कालीन शासक वर्ग में शाहजी को अपने पक्ष में करने के लिए अनेक शासक सदैव लालायित रहते थे। आगे चलकर आदिलशाही में भी उसने अनेक पराक्रम के कार्य किये थे। कर्नाटक में तंजोर की महाराष्ट्र सत्ता उसी ने स्थापित की थी। वह बड़ा शूरवीर और प्रबन्ध करने में अत्यन्त चतुर था। शाहजी के मरने के बाद शिवाजी ने खुल्लमखुल्ला राज्य स्थापित कर अपने नाम के सिक्के प्रचलित किये (सन् १६६४) किन्तु शिवाजी का विधिवत् राज्याभिषेक बाद को हुआ।

(३) बीजापुरवालों के साथ दूसरा युद्ध (सन्१६७२ ७३)—सन् १६७२ में बीजापुर के अली आदिलशाह की मृत्यु हो गई। उसके मरते ही दरबार में फूट फैल गई। इससे शिवाजी के साथ फिर युद्ध होने लगा। शिवाजी ने बीजापुर वालों के पन्हाल गढ

पर अधिकार कर लिया और हुबली का नगर भी लूट लिया। उवराणी और जेसरी स्थानों में शिवाजी ने बीजापुर वालों की फ़ौज को बिलकुल हरा दिया। लेकिन इन युद्धों में शिवाजी के अनेक वीर काम आये। शिवाजी का शूर सेनापति प्रतापराव गुजर भी इसी युद्ध में मारा गया। हम्बीरराव मोहिते, संताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव इत्यादि सरदार इन्हीं लड़ाइयों में प्रसिद्ध हुए। इस युद्ध के समाप्त होते न होते औरङ्ग़ज़ेब की फ़ौजों के आने का समाचार सुन बीजापुर वालों ने शिवाजी के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के बाद शिवाजी ने बीजापुर वालों को औरङ्गजेब के विरुद्ध सहायता दी, जिससे बीजापुर का राज्य कुछ दिन और जीवित रहा।

(४) राज्याभिषेक (६ जूने १६७४)—इस प्रकार ३ वर्ष के कड़े परिश्रम के बाद शिवाजी ने बीजापुर-राज्य में मुगलों को नीचा दिखा कर और महाराष्ट्र मंडल में ऐक्य का सस्थापन करके स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। इस स्थापना को सर्वत्र भले प्रकार प्रसिद्ध करने के लिए अपने मंत्रदाताओं से अनुमति लेकर शिवाजी ने राज्याभिषेकोत्सव मनाने का निश्चय किया। इस राज्याभिषेक द्वारा उसने समस्त महाराष्ट्र मण्डल को एकत्र करके धार्मिक और लौकिक रीति द्वारा राष्ट्र के स्वातन्त्र्य की पक्की नींव जमाने और उसकी व्यवस्था पक्की करने का निश्चय उन्होंने कर लिया था।

पैठन के विद्वान् भट्ट घराने के तत्कालीन वंशधर काशी जाकर रहने लगे थे। उस वंश के गागा भट्ट नाम के पंडित रायगढ बुलाये गये और उनके ऊपर राज्याभिषेक के आयोजन का

भार रक्खा गया। राजों, राजदूतों, शास्त्रियों, सरदारों, पण्डितों इत्यादि से रायगढ भर गया। सन् १६७४ के मृग वर्ष के आरम्भ में अभिषेकोत्सव का आरम्भ हुआ था। उस दिन यथाविधि अभिषिक्त होकर शिवाजी राजसिंहासन पर बैठा। इस उत्सव को राज्य भर में प्रसिद्ध करने के लिए (१) अभिषेक के दिन सुवर्ण तुला चढ़ाई गई, तोपें दागी गई, दान दिये गये, पोशाकें बाँटी गई और जागीरें दी गई। इन सब कामों को करने के बाद शिवाजी ने राजचिह्न धारण किये। (२) राज्याभिषेक शक नाम की एक नई वर्ष गणना शुरू की (३) "क्षत्रिय कुलावतंस शिवछत्रपति महाराज सिंहासनाधीश्वर" की पदवी उन्होंने धारण की। इसी पदवी से कागज पत्रों में उनका नाम दिया जाने लगा। (४) अष्ट प्रधानों की नियुक्ति कर राज्य की व्यवस्था की। (५) रामदास के शिष्यत्व को प्रकट करने के लिए अपनी राजकीय ध्वजा गेरुए या भगवे रंग की रंगी। इस उत्सव में ४२ लाख हूनें अर्थात् ७ करोड रुपये खर्च हुए थे।

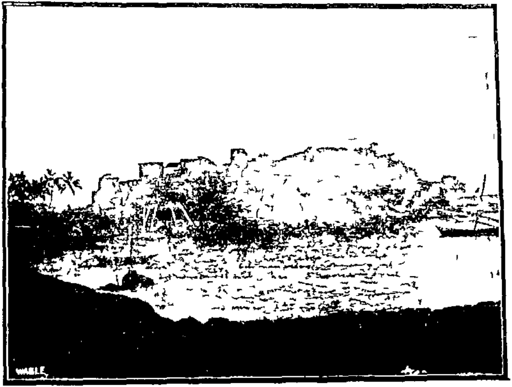
इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अङ्गरेज दूत रायगढ़ आया था। उसने शिवाजी के साथ व्यापारिक सन्धि की थी। अङ्गरेजों और पुर्त्तगीजों से आवश्यक बातें समझ कर शिवाजी ने अपना जहाजी बेडा तैयार किया। विदेशियों और सीदियों पर दबाव रखने के लिए ही शिवाजी ने अपनी राजधानी किसी अन्य प्रान्त में न रख कोंकन में रायगढ स्थान में बनाई।

(५) कर्नाटक पर आक्रमण व अन्त—राज्याभिषेक के अनन्तर २ ३ वर्ष तक शिवाजी ने राज्य को सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। इसके बाद रघुनाथ नारायण हणमंते

थे। ये सहायक गण मुख्य अधिकारी की अनुपस्थिति में उनका काम देखते थे। इन प्रधानों को नियुक्त करके उनके कामों के नियम शिवाजी ने बना दिये थे। उसने इस काम में एक योग्य पुरुष की सहायता ली थी। ये सभी आदमी राज्य के आधार स्तम्भ माने जाते थे।

(३) किले—सह्याद्रि के पहाड़ी देश में कोंकन के समुद्री किनारे के पूर्व की ओर मैदानों में अनेक टूटे फूटे किले आज-कल दिखाई पड़ते हैं। इनमें से अनेक अर्थात् कोई तीन सौ क़िले शिवाजी ने बनवाये थे, अथवा उनकी मरम्मत करवाई थी। इन क़िलों में भोजन की सामग्री तथा बारूद और लड़ाई के हथियार सदैव भरे रहते थे। क़िले पर जाने के मार्ग बड़े कठिन थे। इस लिए बड़ी बड़ी फोजों का प्रवेश ही इनमें न हो पाता था। वर्षों घेरे पड़े रहते, लेकिन किले के रहने वाले घेरा डालने वालों की तनिक भी परवा न करते थे, और गड़बड़ का अवसर आने पर क़िले से बाहर निकल जाने को गुप्त मार्गों से रक्षित स्थान को चले जाते थे। इसलिए थोड़ी सी फोज ही इन किलों की सहायता से राज्य की रक्षा कर लेती थी। आगे आने वाली अनेक विप त्तियाँ इन किलों की सहायता से दूर हुईं। प्रत्येक क़िले की रक्षा के लिए एक हवलदार उसे सहायता देने के लिए एक ब्राह्मण सबनीस व प्रभू जाति का एक कारखानीस रहता था। ये तीनों व्यक्ति किले की रक्षा, क़िले के नीचे मैदानों की देख-रेख, वसूल याबी, गोलाबारूद और मरम्मत का सामान एकत्र करते थे। ये कार्य इन लोगों में बँटे थे। इस कार्य विभाग के कारण सब लोग अपना अपना कार्य यथानुरूप करते थे।

(४) फौज व जहाजी बेड़े—शिवाजी की सेना के दो



विजय दुर्ग (समुद्रासील डोंगरी किल्ला-) — —



सिंहगढ़ (कल्याण दरवाजा)

भाग थे—पैदल और घुडसवार। (१) पैदल की सख्या अधिक थी। दस पदल सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पाँच नायकों पर एक हवलदार, दो हवल्दारों पर एक जुमलेदार और दस जुमलेदारों पर अर्थात् एक हजार सिपाहियों पर "हेरकरी सरनौवत" अर्थात् सेनापति रहता था। इस पैदल फौज में मावले और कोंकन के हेरकरी लोगों की भरती होती थी। ये लोग विश्वास पात्र और पहाडी रास्तों पर चलने में सहज अभ्यस्त थे। जुमलेदारों को १०० होन, एक हजारी को पाँच सौ होन व पाँच हजारी को आठ सौ होन वार्षिक वेतन मिलता था। इसके साथ साथ अनेक पदाधिकारियों को पालकी इत्यादि पर बैठने की राजाज्ञा थी। शिवाजी के पास तोपखाना न था। (२) घुडसवार फौज की व्यवस्था भी इसी प्रकार थी। पचीस सवारों पर एक हवलदार, पाँच हवल्दारो पर एक जुमलेदार दस जुमलेदारो पर एक सूबेदार, दस सूबेदारों पर एक पच हजारी, इत्यादि पदाधिकारी क्रमश नियत थे। प्रत्येक २५ सवारों की एक टोली में एक नालबन्द और एक भिश्ती रहता था। घुडसवार दो प्रकार के थे, शिलेदार और बारगीर। शिलेदारों की गणना ऊँचे दरजे में की जाती थी। सरकार से उनको सालाना सलामी नियत रहती थी। अपनी सवारी के लिए घोडा और हथियार वे खुद खरीदते थे। बारगीर दरजे के घुडसवार सरकारी नौकरी में रहनेवाले थे। इनको घोडे व हथियार सरकार की ओर से मिलते थे। शिलेदारो का वेतन ६ होन से १२ होन तक और बारगीरों का वेतन एक होन से ५ होन तक नियत था। फौज में खुफिया कारकून, मावनीस, और कारखानीस इत्यादि

भी रहते थे। बहिरजी नाईक नाम का चतुर महाराष्ट्र सरदार खुफियों का प्रधान था। फौज में नियत समय पर वेतन बाँट दिया जाता था। फौज में दासी, स्त्री, कलाल इत्यादि लाने का बिलकुल निषेध था। नये आदमी की भरती के समय उसकी ज़मानत पुराने सिपाहियों में से ली जाती थी। लूट का सारा माल सरकार में जमा होता था। विशेष पराक्रम दिखलाने वाले को सरकार की ओर से बहुमान और पदवी इत्यादि देने का नियम था।

(३) फौज के समान ही शिवाजी ने जहाजी बेड़े की भी व्यवस्था अच्छी तरह की थी। जहाज बनाकर उनकी सहायता से राज्य की रक्षा करने की आवश्यकता का महत्व उसे विदित था। सीदियों की शक्ति तोड़ देने के बाद पश्चिमी समुद्रतट पर शिवाजी ने अनेक किले बनवाये और स्थान स्थान पर जहाजी बेड़े तैनात किये। अलीबाग का किला कुलाबा के जहाजी बेड़ों का केन्द्र बनाया गया। सन् १६६५ में शिवाजी के पास ३० टन से लगा कर १५० टन तक के छोटे-बड़े कुल मिलाकर ८५ जहाज थे। उनमें बड़े बड़े तीन काठियों के डोल भी थे। इसके बाद छ वर्षों में ही १६० जहाज हो गये। समुद्री युद्ध मे प्रसिद्ध होने वाला कान्होजी आँगरे शिवाजी के जहाज़ी बेड़े का मुख्य सरदार था। इसके अतिरिक्त दरिया सारंग, इब्राहीम खाँ और मायनाक भंडारी शिवाजी के जहाज़ी बेड़े में समय समय पर काम कर चुके थे।

(५) राज्य-व्यवस्था—शिवाजी ने पहले की व्यवस्था में दो परिवर्तन किये थे। पहला, मालगुजारी की तहसील वसूल में

अनाज न लेकर नक्द रुपये लेना शुरू किया था, और दूसरा नया प्रबन्ध यह था कि किसानों से जमींदारों की मार्फत कर वसूल न कर अपने सरकारी आदमियों के द्वारा कर वसूल करना शुरू किया। इस काम के लिए कमाविसदार (तहसीलदार) महालकरी (जिलेदार) और सूबेदार (प्रान्त प्रधान) इत्यादि अधिकारी नियत थे। उपज का दो पचमांश भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था। इन्हीं अधिकारियों को फौजदारी के अधिकार दिये गये थे। अनेक न्याय के काम गाँव-पंचायतें करती थीं। शिवाजी के राज्य के दो मुख्य विभाग थे, स्वराज्य और मुगलाई। राज्य का वह भाग स्वराज्य के नाम से पुकारा जाता था कि जहाँ सर्व सर्वा अधिकार शिवाजी का था। किन्तु दूसरा भाग, जहाँ का स्वामित्व दूसरे का और प्रबन्ध उसके हाथ में था यह भाग मुगलाई के नाम से प्रसिद्ध था। स्वराज्य के कुल बारह सूबे थे। प्रत्येक सूबे में दो या तीन उपभाग भी होते थे। इन उपभागों का नाम "महाल" था। शिवाजी के राज्य की कुल आय नौ करोड़ रुपये थी। प्रत्यक्ष आमदनी बहुत कम थी। सूबेदारों का वेतन ४०० होन था, किले के संरक्षण करने वालों, देवस्थानों, लड़ाई में पराक्रम दिखाने वालों को शिवाजी की ओर से इनाम में जमीन भी कभी कभी मिलती थी। उन्होंने हिन्दू या मुस्लिम देवस्थानों की आमदनी जब्त नहीं की। मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि शिवाजी का राज्य उत्तर में ताप्ती नदी से लगाकर दक्षिण में तुंगभद्रा तक फैला था। इस राज्य विस्तार में कहीं कहीं विच्छिन्नता भी थी। लेकिन उक्त भूभाग के उत्तमोत्तम प्रदेशों पर शिवाजी का ही अधिकार था। जिन प्रदेशों पर अधिकार न था उन पर अपना प्रभाव शिवाजी

ने अच्छी तरह जमा लिया था। इसी व्यवस्था को आगे चल कर पेशवा भी बनाये गये और कर्नाटक, गुजरात, मालवा, बरार प्रान्तों में यद्यपि छोटे भूभागों पर उन्होंने अधिकार जमाया, तथापि सधन प्रदेशों को अपने अधिकार में लाने का विशेष प्रयत्न किया।

(६) उपसंहार—ऐसी व्यवस्था करके, भिन्न भिन्न विषयों में राष्ट्र की उन्नति करने के लिए शिवाजी ने अनेक उपाय किये। बजाजी निम्बालकर, नेताजी पालकर इत्यादि अनेक रूपों में त्रस्त होकर मुसलमान बन गये थे, वे पुन प्रायश्चित करके अपने धर्म पर आरूढ होकर शिवाजी के साथी बन गये। शिवाजी ने व्यापार में, विद्या में, और संस्कृत भाषा व महाराष्ट्र भाषा में उन्नति करने के लिए योग दान दिया। उसने पारिभाषिक शब्दों का एक राज-व्यवहार कोष तैयार कराया। राज्य की साम्पत्तिक नीति में शिवाजी को कैसा ज्ञान था, इसका परिचय हमें उस विभाग से मिलता है, जिसके द्वारा उसने परराष्ट्रों से अपना सम्बन्ध खोला था। सरकारी कागज़ो से पता चलता है कि सिक्के के लिए शिवाजी ने निम्न लिखित छाप स्थिर की थी—

प्रतिपच्चन्द्र रेखेव वर्धिष्णुर्लोक वन्दिता।
शाह सूनो शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

अर्थात् शाह जी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की चन्द्र रेखा के समान वृद्धिकरी है, यह लोक कल्याणार्थ अवतरित हुई है, और इसका सब संसार वंदन करने वाला है।

शिवाजी ने भारत के राष्ट्र की, जो सेवा की उसका श्रेय

यद्यपि शिवाजी को ही है, तथापि उसको इस कार्य में सहायता पहुँचानेवाले भी थे। उसके प्रसिद्ध सहायक स्वामी रामदास, जिजाबाई, दादाजी कोंडदेव, कङ्क मालसुरे, पासलकर कान्होजी जेधे और उसका पुत्र बाजी सार्जेराव मोरो पन्त पिङ्गले, निलो सोन देव, हणमन्ते, निराजी राव-जी, अण्णाजी दत्तो, दत्ताजी पन्त, वोकील, मुरार बाजी, बाजी देशपाडे, बालाजी जी आवजी, चिटणीस, फिरङ्गो जी नरसाला, नेताजी पालकर, प्रतापराव गुजर, हम्बीरराव मोहिते इत्यादि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

पाँचवाँ अध्याय

छत्रपति सम्भाजी

सन् १६८०-१६८९

१—राज्यारोहण और राज्य-व्यवस्था २—सम्भाजी का युद्ध ३—सम्भाजी का वध

(१) राज्यारोहण और राज्य-व्यवस्था—सम्भाजी का जन्म १४ मई सन् १६५७ को पुरन्दर के किले में हुआ था। सम्भाजी अपने पिता के समान बल्कि उससे भी अधिक शूर-वीर था। पिता के साथ अनेक लड़ाइयों में रहने से उसके चित्त में धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता भी कूट कूट कर भर गई थी। लेकिन इन गुणों के साथ साथ उसमें अन्य अवगुण भी आ गये थे। वह छोटी ही अवस्था में व्यसनी हो गया था। इससे उसका स्वभाव कठोर और क्रूर हो गया था, इसलिए वह किसी को कुछ नहीं समझता था। औरंगज़ेब के एक सरदार दिलेरख़ाँ ने शिवाजी पर सन् १६७८ में १३ दिसम्बर को चढ़ाई की। इसी दिन संभाजी अपने पिता से लड़कर दिलेरख़ाँ से जा मिला। लेकिन दिलेरख़ाँ ने उसे अपने यहाँ नहीं रहने दिया। सन् १६७९ में शिवाजी उसे समझा-बुझा कर ले आया और पन्हल किले में कैद कर दिया। उसकी देखभाल के लिए जनार्दन पंत हनमंते को तैनात कर दिया। शिवाजी की मृत्यु

के समय सभाजी पन्हलगढ में ही कैद था। शिवाजी का मृतक-संस्कार राजाराम ने रायगढ में ही किया था। राजाराम का जन्म सन् १६७० की २४ फर्वरी को हुआ था। इसलिए शिवा जी की मृत्यु के समय उसकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी।

अण्णा जी दत्तो और मोरोपंत पिंगले को मिलाकर राजा राम की माँ सोयराबाई ने शिवाजी की मृत्यु का समाचार सभाजी से नहीं बताया और राजाराम को गद्दी पर बिठा कर राज्य का कार्य चलाने लगी। लेकिन यह सब समाचार सभाजी को किसी न किसी तरह विदित हो गया, और वह वहाँ से चल कर तुरत रायगढ़ आ पहुँचा। रायगढ पहुँच कर उसने राजाराम और अण्णा जी दत्तो को क़ैद कर लिया और सोयराबाई को तत्काल मार डाला। अनन्तर सन् १६८१ की १६ जनवरी को वह राजगद्दी पर बैठा। रायगढ का प्रबंध करके सभाजी पन्हल गढ गया। इसी बीच मे औरंगजेब का लडका अकबर ओरङ्ग जेब से बागी होकर सभाजी के पास सहायता माँगने के लिए आया। १३ ११ १६८१ को उसने सभाजी से भेंट की। पदाधिकारियों ने उसके साथ संभाजी के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचा। किन्तु इसका रहस्य सभाजी को मालूम हो गया। इससे सभाजी के क्रोध का वारापार न रहा और क्रोधांध होकर वह अपने पिता के समय के समस्त पदाधिकारियों को अपने विरुद्ध समझ बैठा। उसने विचार किया कि जब तक इन लोगों का नाश न किया जायगा तब तक मेरी अवस्था निश्चित न रहेगी। उसकी यह बुरी धारणा यावज्जीवन बनी रही। इस दुर्वृत्ति के कारण उसने अपनी ही हानि नहीं की, बल्कि राज्य की भी भारी हानि की। विरोधी मंडल पर उसका विश्वास न जमा। वह सदैव यही सदेह करता रहता कि ये लोग मुझे फँसाना चाहते

हैं। इस भयकर दुश्चिता के कारण राज्य के अनेक नर-रत्न मारे गये।

अण्णाजी दत्तो—सोयराबाई के समीपी व पक्षपाती सरदार, बालाजी आवजी चिटणीस, इसका भाई श्यामजी और पुत्र आवजी, और हिरोजी फर्जंद इत्यादि लोगों को संभाजी ने हाथी के पैर से कुचलवा कर मार डाला। शिर्के सरदारों के घराने का उसने समूल नाश किया। लेकिन सभाजी की स्त्री येसूबाई बड़ी चतुर स्त्री थी। उसने संभाजी पर प्रभाव डाल कर बालाजी आवजी के दूसरे पुत्र खडो बल्लाल को सरकारी काम पर नियत करा दिया। इसी खडो बल्लाल ने बाद को राज्य की बड़ी बड़ी सेवाएँ की। सभाजी ने शिवाजी के समय के समस्त कर्मचारियों को राज्य के प्रबन्ध से अलग कर दिया और कवि कुलेश उर्फ "कलुशा" नाम के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण को पहले पंडितराव का पद देकर बाद को मुख्य प्रधान का पद दिया, और उसे ही अन्य कार्य भी सौंप दिये। यह ब्राह्मण मंत्र-तंत्र तथा शास्त्र जानता था। उसने अपनी मीठी मीठी बातों से सभाजी को प्रसन्न कर लिया था।

(२) सम्भाजी के युद्ध—शाहज़ादा अकबर को सभाजी ने आश्रय दिया था, इसलिए औरंगजेब स्वयं एक बड़ी फौज लेकर दक्षिण-देश जीतने के लिए सन् १६८३ में आया। उसने सोचा कि शिवाजी मर चुका है और सभाजी व्यसनी है। इससे महाराष्ट्र इस समय सहज में ही जीता जा सकता है। जंजीरा के सीदी और पुर्तगीज लोग सभाजी के साथ शत्रुता रखते थे। ऐसे कठिन अवसर पर संभाजी ने अपनी वीरता का परिचय दिया।

गोवा के पास "फोंडे" नामक स्थान पर पुर्त्तगीज़ों का एक थाना था। इसी स्थान पर मराठों ने पुर्त्तगीजों के साथ घमासान युद्ध कर २०० यूरोपीयों और एक हजार देशी लोगों को हताहत किया और पुर्त्तगीजों का वसई के समीप का देश अपने अधिकार में कर लिया।

इसी समय उत्तर की ओर से औरंगजेब की फौज "वागलाना" में आ पहुँची। वहाँ पर जो युद्ध हुआ उसमें मराठों ने मुगलों को हरा दिया। यह देख कर बादशाह ने अगले दो-तीन वर्षों में सभाजी को हराने की धुन छोड़ कर बीजापुर, गोलकुंडा (गोवल कोंडा) के राज्यों पर अधिकार कर लिया। इस अवसर का यथोचित उपयोग संभाजी ने नहीं किया। राज्य की आमदनी और शिवाजी द्वारा की गई राज्य व्यवस्था बंद हो जाने से यत्र-तत्र अंधाधुंधी ने अपना सिक्का जमा लिया। खजाना खाली हो गया। मालगुजारी की वसूलयाबी बंद हो गई। शौर्य के अतिरिक्त सम्भाजी में दूसरा कोई भी गुण न था। ऐसी अवस्था में महाराष्ट्र-शासन हीनावस्था को पहुँच गया।

(३) सम्भाजी का वध (सन् १६८९)—सन् १६८७ में औरंगजेब ने सभाजी के साथ फिर युद्ध शुरू किया। शाहजादा अकबर ने सभाजी को छोड़ कर ईरान की राह ली। बादशाह के सरदार सर्जेखाँ से हंबीरराव मोहिते ने वाई के पास युद्ध किया। इस युद्ध में मराठों की जीत हुई, लेकिन हंबीरराव गोली लग जाने से रण भूमि में मारा गया। उसकी मृत्यु से सभाजी का मानों दाहना हाथ ही बेकाम हो गया। बाद को मुगलों ने सभाजी को चारों ओर से घेर लिया और रायगढ जाते समय रास्ते में संगमेश्वर में सभाजी व "कलुशा" पर

कोल्हापुर क मुसलमान अधिकारी छापा मार कर संभाजी को १-२-१६८९ के दिन पकड़ कर तुलापुर में बादशाह की छावनी में ले गया। इस अधिकारी का नाम तकरीबखॉं था। उस समय बादशाह ने संभाजी से मुसलमान बन-जाने को कहा। संभाजी ने उत्तर देते हुए कहा कि "तुम अपनी बेटी का विवाह मेरे साथ कर दो तो मैं मुसलमान बनूँ" ऐसी कड़ा कड़ी की बातें कह कर संभाजी ने मुस्लिम धर्म की निन्दा की। यह बादशाह को सहय नहीं हुआ। इसलिए उसने संभाजी की जीभ कटवा डाली और क्रूरता के साथ उसका वध करा दिया। (११-३-१६८९)। व्यसनी होने के कारण संभाजी का नाश हुआ, तथापि वह शूर और कर्त्तव्यशील था। संभाजी मार डाला गया। उस समय संभाजी की स्त्री येसूबाई और उसका पुत्र शिवाजी (इसकी उम्र ९ वर्ष की थी) रायगढ में थे। इनको वहीं रखकर राजाराम व अन्य सरदार बाहर निकले। इधर रायगढ पर घेरा डाल कर इतकदखॉं उर्फ जुलफिकारख़ाँ ने ३-११-१६८९ को किला जीत लिया और येसूबाई तथा शिवाजी को कैद कर के साथ ले गया। येसूबाई वहॉं सत्रह वर्ष तक कैद में रहीं। संभाजी के हृदय द्रावक वध ने समस्त महाराष्ट्र-देश को हिला डाला। उन्होंने जोश में आकर मुगलों से बदला लेने का संकल्प किया। इधर येसूबाई और शिवाजी बादशाह के पास कैद थे। इनके साथ बादशाह की बड़ी शाहजादी जीनतुन्निसा की प्रीति हो गई। इससे उसने बड़ी सावधानी के साथ उनके सुख का सुप्रबंध रक्खा। गुप्त रीति से येसूबाई-और राजाराम एक दूसरे के पास आते जाते थे। येसूबाई

बादशाह की छावनी में रहते समय राजाराम के सम्बन्ध में अपना पक्षपात बिलकुल नहीं दिखाती थी।

छठा अध्याय

छत्रपति राजाराम व द्वितीय शिवाजी

सन् १६८९–१७०८

(१) मराठों पर भयकर सकट—मराठाशाही पर आज तक जितने संकट पड़े उन सब में यह संकट सबसे अधिक भयंकर और दुस्तर था। संभाजी के मारे जाने के बाद मराठों ने उसके बेटे को गद्दी पर बैठा कर राज्य की व्यवस्था शुरू की। राजाराम, प्रल्हाद, निराजी, रामचन्द्र, नीलकठ अमात्य, सताजी घोरपडे, खडो बल्लाल, धनाजी जाधव इत्यादि पहले ही रायगढ़ से बाहर निकल गये थे। इसलिए वे शत्रु के पंजे में न फँस सके। एक एक करके मराठों के सभी किले और प्रान्त मुग़लों के अधिकार में जाने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठाशाही का अन्त आ गया। लेकिन इस भयङ्कर परीक्षा ने मराठों के तेज को और भी चमका दिया। राजाराम का स्वभाव सभाजी के स्वभाव से बिलकुल भिन्न था। वह निर्व्यसनी, स्वार्थत्यागी व मिलनसार व्यक्ति था। रायगढ के

मुगलों के हाथ में जाते ही रामचंद्र पंत ने विशालगढ़ और पन्हाल के बीच में रह कर महाराष्ट्र की रक्षा की। राजाराम ने प्रह्लाद निराजी और खंडो बल्लाल के साथ जिंजी जाकर राज्य का शासन-कार्य देखना शुरू किया और सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जिंजी और महाराष्ट्र के बीच में घूम फिर कर बादशाह का पीछा करने लगा। इस क्रम के चलते ही कार्य ठीक होने लगा। शंकराजी मल्हार व परशुराम त्रिंबक कुलकर्णी किन्हईकर प्रतिनिधि के मूल-पुरुष रामचन्द्र के साथ काम करने में प्रसिद्ध हुए। राजाराम ने जिंजी में गद्दी को स्थापित कर अष्टप्रधान मंडल की फिर से स्थापना की। प्रह्लाद निराजी को चतुर, कर्त व्यशील और राज्य का एकमात्र आधार-स्तम्भ समझ और अपना दूसरा स्वरूप मान राजाराम ने उसे "प्रतिनिधि" का नया पद दिया। प्रतिनिधि का पद अष्टप्रधानों से भी ऊँचा रक्खा। इस तरह राज्य में पुनः प्रबन्ध स्थापित किया। इसके सिवा राष्ट्र की रक्षा के लिए उसने एक नई बात यह की कि जो व्यक्ति परा क्रम से राष्ट्र की सहायता करके शत्रु को हराने में सफल होगा और विपत्ति के समय धैर्य के साथ आगे बढ़ कर राज्य की सहा यता करेगा वह पुरस्कार, पदाधिकार, इनाम इत्यादि से संतुष्ट किया जायगा। इस प्रकार की राजाज्ञा का प्रचार होते ही अनेक लोगों ने राज्य का पक्ष लेकर अपना कर्त्तव्य पालन किया और अनेक प्रकार के राज-सम्मानों से व विभूषित हुए। यह क्रम आज तक सरदारों में जारी है।

(२) सन्ताजी घोरपडे व धनाजी जाधव—औरंगजेब की फ़ौजी तैयारी बड़ी प्रबल थी। लेकिन उसके सैनिक बड़े धीमे और

अभिमानी थे। इसलिए महाराष्ट्र-देश के ऊँचे-नीचे ऊबड़-खाबड़ रास्तों में उनको चलने में बड़ी कठनाई झेलनी पड़ती थी। बादशाह के पास तोपखाना और हरबे हथियारों की कमी न थी। लेकिन तेज मराठों पर वे ठीक निशाना न लगा सकते थे। मराठों ने बादशाही फौज की इस दुर्बलता को जान कर उसके ऊपर लुक छिप कर मौका देख कर छापा मारने का निश्चय किया। मराठे सवारों की समस्त आवश्यक वस्तुएँ उनके छोटे से घोड़ों पर ही लदी रहती थीं। जगल में उन्हें जो कुछ मिल जाता उसे ही खा-पी कर अपना निर्वाह कर लेते थे। बादशाही फौज के साथ खुले मैदान में न लड़कर मौका देखकर उस पर टूट पड़ते और खज़ाना व रसद का सामान लूट ले जाते और देखते ही देखते वे पासवाले पहाड़ की ओट में छिप कर विलीन हो जाते। उनके ऊपर हमला करने में बादशाही फौज के अभिमानी सिपाही चाहे जितनी शीघ्रता क्यों न करते, समय लग ही जाता था। इस प्रकार युद्ध करने की शैली को अंग्रेजी में "गुरीला वार" कहते हैं। इन छापों ने बादशाह की बड़ी फौज को तग कर डाला। रामचन्द्र पंत, संताजी, धनाजी इत्यादि लोगों ने युद्ध की इस पद्धति को पसन्द कर इसके अनुसार कार्य किया था। ये दोनों वीर सरदार पहले शिवाजी की फौज में नौकर थे। बाद को इन्होंने युद्ध की ऊँची योग्यता प्राप्त कर ली थी। इनकी वीरता के विषय में इतिहासकार खाफीखाँ कहता है कि सन्ताजी ने मुग़ल-सरदारों को विवश कर दिया था। उसके सामने जो व्यक्ति जाता वह जीता-जागता कभी नहीं लौट पाता था। अपने सामने किसी को कुछ न गिननेवाले मुग़ल-सरदार उसके सामने जाते ही काँप उठते थे। उसके सामने जम कर लड़नेवाला एक

भी सरदार मुग़ल-पक्ष में न था, धनाजी भी वैसा ही शूर था। मुगल तो उससे इतना भय मानते थे कि यदि किसी का घोड़ा पानी न पीता तो वे उससे पूछते कि क्यों रे पानी पीता क्यों नहीं? क्या तुझे पानी में धनाजी की परछाईं दीखती है?" संताजी ने एक बार खास बादशाह के तम्बू पर हमला करके उसका सोने का कलश काट लिया था। उस समय भाग्यवश बादशाह अपने तम्बू में न था, इसीसे वह बच गया। इसके बाद बादशाह की छावनी भीमा के किनारे से उठ कर ब्रह्मपुरी में आ गई। मराठों ने कर्नाटक से लगा कर खानदेश की उत्तरी सीमा तक सारे देश में खलबली पैदा कर दी थी। सन् १६९१ में बादशाह की आज्ञा से ज़ुल्फ़िकारखाँ ने जिंजी के किले को घेर लिया। यह घेरा डाले छ वर्ष तक पड़ा रहा। इस क़िले के भीतर ही राजाराम और उसकी मंडली इत्यादि घिरी हुई थी। अन्त में बादशाह ने ज़ुल्फ़िकारख़ाँ को बड़ी सख्त-सुस्त बातें लिख भेजीं। तब उसने जिंजी के किले पर अधिकार कर लिया। लेकिन किले पर अधिकार होने से पहले ही राजाराम अपनी मंडली के सहित सकुशल बाहर आ कर स्वदेश पहुँच चुका था।

(३) **राजाराम की मृत्यु** (मार्च १७००)—राजाराम ने जिंजी से लौट कर सतारा के क़िले में महाराष्ट्र की राज्य-गद्दी स्थापित की। मराठाशाही की यह गद्दी अन्त तक सतारे में ही रही। गद्दी स्थापित करने के बाद उसने अपने सरदारों से सम्मति लेकर मुगलों पर चढ़ाई की। उसने स्वयं फ़ौज लेकर मुगलों के प्रान्तों पर हमला किया और वहाँ से चौथ और सरदेशमुखी वसूल की। उसने खानदेश तक बराबर हमले किये और चौथ इत्यादि वसूल की। इस प्रकार वह सिंहगढ़ वापस आया। उसका सारा जीवन

शाही के सङ्कट दूर हो गये। इसके बाद मराठों की धाक मुगलों पर जम गई।

(५) शाहू का छुटकारा—सम्भाजी का पुत्र शिवाजी उर्फ शाहू का जन्म १८ मई १६८२ में हुआ था। उस पर औरङ्गज़ेब की पूर्ण कृपा थी। उसे छुड़ाने के लिए मराठा सरदारों ने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सब निष्फल गये। अठारह वर्ष तक बादशाह के जनानखाने में रहने से योग्य अनुभव से मिलने वाले ज्ञान से वह वञ्चित रहा। उसमें तेज, निश्चयात्मक बुद्धि और शौर्य इत्यादि गुणों का अभाव था।

औरङ्गज़ेब की मृत्यु होते ही उसके पुत्रों में गद्दी के लिए झगड़े उठ खड़े हुए। अज़ीमशाह ने जुल्फिकारखाँ की सहायता पाकर शाहू को साथ लेकर दिल्ली को यात्रा की। जुल्फिक़ारख़ाँ की सम्मति से सन् १७०७ में अप्रैल मास में भोपाल के पास शाहू को अज़ीमशाह ने क़ैद से मुक्त किया। वापस लौटते समय खानदेश में परसोजी भोसले इत्यादि मराठे सरदार शाहू से मिल गये। आगे बढ़ कर गोदावरी-नदी के किनारे पहुँच कर शाहू ने ताराबाई से कहला भेजा कि "मैं आ रहा हूँ। मेरा राज्य मुझे सौंप दो।" ताराबाई को यह बात पसन्द न आई। उसने धनाजी जाधव, खण्डो बल्लाल और परशुराम त्रिंबक को शाहू के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा। इनमें से पहले दो व्यक्ति ताराबाई का पक्ष छोड़ कर शाहू से जा मिले और नवम्बर सन् १७०७ में खेड़ के समीप परशुराम लड़ाई में हार कर वापस लौट गया। इसके बाद शाहू ने सतारा पर चढ़ाई की और परशुराम पन्त को क़ैद करके किले पर अपना अधिकार कर लिया। ताराबाई अपने साथियों

के साथ भाग गई। सन् १७०८ के जनवरी मास में शाहू ने अपना राज्याभिषेक करके अष्टप्रधानों की नियुक्ति की।

शाही के मद्धूट दूर हो गये। इसके बाद मराठों की धाक मुगलों पर जम गई।

(५) शाहू का छुटकारा—सम्भाजी का पुत्र शिवाजी उर्फ शाहू का जन्म १८ मई १६८२ में हुआ था। उस पर औरङ्ग़ेब की पूर्ण कृपा थी। उसे छुडाने के लिए मराठा सरदारों ने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सब निष्फल गये। अठारह वर्ष तक बादशाह के ज़नानख़ाने में रहने से योग्य अनुभव से मिलने वाले ज्ञान से वह वञ्चित रहा। उसमें तेज, निश्चयात्मक बुद्धि और शौर्य इत्यादि गुणों का अभाव था।

औरङ्गजेब की मृत्यु होते ही उसके पुत्रों में गद्दी के लिए झगड़े उठ खड़े हुए। अजीमशाह ने जुल्फिकारखॉ की सहायता पाकर शाहू को साथ लेकर दिल्ली को यात्रा की। जुल्फ़िक़ारख़ाँ की सम्मति से सन् १७०७ में अप्रैल मास में भोपाल के पास शाहू को अजीमशाह ने कैद से मुक्त किया। वापस लौटते समय खानदेश में परसोजी भोसले इत्यादि मराठे सरदार शाहू से मिल गये। आगे बढ कर गोदावरी-नदी के किनारे पहुँच कर शाहू ने ताराबाई से कहला भेजा कि "मैं आ रहा हूँ। मेरा राज्य मुझे सौंप दो।" ताराबाई को यह बात पसन्द न आई। उसने धनाजी जाधव, खण्डो बल्लाल और परशुराम त्रियक को शाहू के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा। इनमें से पहले दो व्यक्ति ताराबाई का पक्ष छोड़ कर शाहू से जा मिले और नवम्बर सन् १७०७ में खेड़ के समीप परशुराम लड़ाई में हार कर वापस लौट गया। इसके बाद शाहू ने सतारा पर चढ़ाई की और परशुराम पन्त को क़ैद करके किले पर अपना अधिकार कर लिया। ताराबाई अपने साथियों

विश्वनाथ भट श्रीवर्धनकर की उसे पूर्ण सहायता मिली।

(२) बालाजी विश्वनाथ का उदय—बालाजी विश्वनाथ भट कोंकन में सीदियों के राज्यान्तर्गत श्रीवर्धन गाँव का देशमुख था। कई वर्षों पूर्व सकुटुम्ब देश में आकर मराठी राज्य में नोकरी करते करते सरसूबेदारी तक प्राप्त की थी। जिस समय ताराबाई और ओरङ्गजेब का युद्ध चल रहा था, उस समय सेनापति धनाजी जाधव व बालाजी में परस्पर प्रीति हो गई थी। इससे बालाजी को मराठाशाही में होनेवाले परिवर्त्तनों का अच्छा परिज्ञान हो गया था। जब शाहू कैद से छूट कर दक्षिण पहुँचा उस समय बालाजी ने उसे अच्छी सहायता दी और इस सहायता से प्रसन्न होकर शाहू ने बालाजी को "सेना कर्त्ता" का पद दिया। बाद को शीघ्र ही अर्थात् सन् १७०८ के जून मास में धनाजी जाधव की मृत्यु हो गई। तब उसके लड़के चन्द्रसेन को शाहू ने सेनापति बना दिया। चद्रसेन का झुकाव ताराबाई की ओर जिस समय हुआ और वह खुल्लमखुल्ला शाहू के विरुद्ध होगया, उस समय बालाजी ने उसे भी लड़ाई में हराया। इस हार से उद्विग्न होकर चद्रसेन ने मराठाशाही को त्याग कर मुगल सूबेदार निज़ामुल्मुल्क के पास जाकर उससे मिल गया। निजाम ने उसे अपने राज्य में नवीन जागीर दे दी। यह जागीर बाद को सन् १७६९ में चद्रसेन के लड़के रामचद्र जाधव के मरने पर सरकार में मिला ली गई। इसी प्रकार रामचन्द्र पन्त अमात्य शिवाजी के पास काम करते करते एक चतुर दरबारी हो गया था। वह ताराबाई के पक्ष में था। शाहू के पक्ष में वह कभी सम्मिलित नहीं हुआ। लेकिन ताराबाई ने उसका अविश्वास किया। इससे उसकी स्थिति विचित्र हो गई। इसलिए तत्कालीन राजनैतिक

सातवाँ अध्याय

छत्रपति शाहू, पेशवा बालाजी विश्वनाथ

ई० स० १७०८-१७२०

१—ताराबाई के साथ युद्ध	२—बालाजी विश्वनाथ का उदय
३—मराठों का नवीन उद्योग	४—स्वराज्य, चौथ और सरदेशमुखी

(१) ताराबाई के साथ युद्ध—शाहू का प्रवेश जिस समय महाराष्ट्र की राजधानी सतारा में हुआ उस समय उसकी स्थिति कुछ भी अच्छी न थी। बड़े बड़े प्रभावशाली सरदार ताराबाई के पक्ष म थे। वे भिन्न भिन्न प्रान्तों में शाहू के विरुद्ध लड़ कर उसको चिन्ताग्रस्त बनाये रहते थे। उनको दबाने और शान्त करने म शाहू को चार या पाँच वर्ष लग गये। हैवतराव निम्बारकर सरलश्कर, खण्डेराव, दाभाडे, मानसिंह मोरे, परसोजी भोंसले, चिमणाजी दामोदर व पेशवा बहिरोपन्त पिङ्गले, खण्डे बल्लाल, ये सब लोग शाहू के पक्ष में थे। अप्पाजी व दामाजी थोरात, शाहजी निम्बारकर, सन्ताजी पांढरे, रामचन्द्र नीलकण्ठ अमात्य, वाडीकर खेमसावन्त, उदाजी चौहान, कान्होजी आगरे, शङ्कराजी नारायण सचिव व परशुराम पन्त प्रतिनिधि इत्यादि लोग ताराबाई के पक्ष का समर्थन करते थे। इन आपसी झगड़ों के दबाने में चार पाँच वर्ष लग गये और इस काम में बालाजी

विश्वनाथ भट श्रीवर्धनकर की उसे पूर्ण सहायता मिली।

(२) बालाजी विश्वनाथ का उदय—बालाजी विश्वनाथ भट कोंकन में सीदियों के राज्यान्तर्गत श्रीवर्धन गाँव का देशमुख था। कई वर्षों पूर्व सकुटुम्ब देश में आकर मराठी राज्य में नौकरी करते करते सरसूबेदारी तक प्राप्त की थी। जिस समय ताराबाई और औरङ्गजेब का युद्ध चल रहा था, उस समय सेनापति धनाजी जाधव व बालाजी में परस्पर प्रीति हो गई थी। इससे बालाजी को मराठाशाही में होनेवाले परिवर्त्तनों का अच्छा परिज्ञान हो गया था। जब शाहू कैद से छूट कर दक्षिण पहुँचा उस समय बालाजी ने उसे अच्छी सहायता दी और इस सहायता से प्रसन्न होकर शाहू ने बालाजी को "सेना कर्त्ता" का पद दिया। बाद को शीघ्र ही अर्थात् सन् १७०८ के जून मास में धनाजी जाधव की मृत्यु हो गई। तब उसके लड़के चन्द्रसेन को शाहू ने सेनापति बना दिया। चन्द्रसेन का झुकाव ताराबाई की ओर जिस समय हुआ और वह खुल्लमखुल्ला शाहू के विरुद्ध होगया, उस समय बालाजी ने उसे भी लड़ाई में हराया। इस हार से उद्विग्न होकर चन्द्रसेन ने मराठाशाही को त्याग कर मुगल-सूबेदार निज़ामुल्मुल्क के पास जाकर उससे मिल गया। निजाम ने उसे अपने राज्य में नवीन जागीर दे दी। यह जागीर बाद को सन् १७६९ में चंद्रसेन के लड़के रामचन्द्र जाधव के मरने पर सरकार में मिला ली गई। इसी प्रकार रामचन्द्र पन्त अमात्य शिवाजी के पास काम करते करते एक चतुर दरबारी हो गया था। वह ताराबाई के पक्ष में था। शाहू के पक्ष में वह कभी सम्मिलित नहीं हुआ। लेकिन ताराबाई ने उसका अविश्वास किया। इससे उसकी स्थिति विचित्र हो गई। इसलिए तात्कालीन राजनैतिक

रंगमंच से वह एक दम विरक्त हो गया और बड़ी सावधानी से अपनी रक्षा करता हुआ राजकाज से अलग हो गया। उसने देख लिया कि अब हमारा सम्मान और आदर नहीं है। इतिहास में यही एक ऐसा सरदार दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार सब कामों से छुट्टी पाकर इस सरदार ने राजनीति नाम की एक छोटी सी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक अपूर्व है। सन् १६७० तक इसने राज्य का कार्य भार सँभाला था। संभाजी के मारे जाने के बाद औरंगज़ेब से टक्कर लेकर कठिन विपन्न अवस्था में मराठाशाही की रक्षा करने का श्रेय रामचंद्र पंत को ही है। यह सरदार सन् १७३४ के लगभग मरा। इसका पुत्र भगवंतराव शाहू के समय में बहुत प्रसिद्ध हुआ है।

चन्द्रसेन के उदाहरण से मराठों की परस्पर फूट का स्वभाव व्यक्त होता है। वे जितने शूर, कुशल, और पराक्रमी होते थे, उतने ही अधिक स्वार्थी, अपने मुखिया के नियत्रण में न रहने वाले, उच्छृङ्खल और चाहे जिस शत्रु से मिल कर राजद्रोह करने में प्रवृत्त हो जानेवाले थे। उनके गुणो का उपयोग कर महाराष्ट्र शक्ति का विस्तार करना और उनके दुर्गुणों को दबाये रखना, इन दो मुख्य विषयों से ही पेशवाई का आगे का इतिहास भरा हुआ है। आगरे, दाभाड़े, रघूजी भोसले व आगे चल कर स्वय रघुनाथ राव पेशवा इत्यादि ने राजद्रोह किया। इसी से स्वय अपनी शक्ति के आधार पर सिंधे, होलकर इत्यादि नवीन सरदारों की उत्पत्ति कर पेशवाओं ने अपना उद्योग जारी रक्खा।

चन्द्रसेन का राजद्रोह बालाजी ने शान्त किया, इसी प्रकार दामाजी थोरात व कृष्णराव खटावकर इत्यादि ने शाहू

के विरुद्ध दंगे किये। इन दंगों को भी पेशवा ने बड़े धैर्य और चातुर्य के साथ दबा दिया। कुलाबा का आंगरे सरदार इस समय बड़ा जोर पकड़ रहा था। कान्होजी आंगरे ताराबाई का पक्ष लेकर लड़ रहा था। उसने शाहू के राज्य पर चढ़ाई कर दी और बड़ी तेजी से सतारा की ओर बढ़ रहा था। इसको रोकने के लिए पहले शाहू ने बीहरोपन्त पिङ्गले पेशवा को भेजा। आंगरे ने उसे हरा कर कैद कर लिया। उस समय शाहू ने निरुपाय होकर बालाजी को "अतुल पराक्रमी सेवक" समझ उसे १३ ११-१७१३ को पेशवा का पद देकर आंगरे का सामना करने को भेजा। बालाजी ने आंगरे का बल प्रबल देख उसके साथ समझौता कर लिया और उसे कोंकन के कई किले देकर शाहू के पक्ष में मिला लिया (सन् १७१४)। बाला जी तथा उसके पुत्रों को अत्यत तेजस्वी समझ कर उस कुटुम्ब को ही शाहू ने राज्य का भार सौंप दिया। छत्रपतियों की सत्ता पेशवाओं के हाथ में जाने का यही एक कारण हुआ। इधर राजसबाई ने ताराबाई व उसके पुत्र शिवाजी को सन् १७१२ में कैद कर लिया और अपने पुत्र सभाजी को गद्दी पर बैठाया। शिवाजी बाद को कैद में ही मर गया (सन् १७२६)। राजसबाई व सभाजी का संबंध कोल्हापुर से था। इसलिए शाहू ने आगे चल कर वह राज्य उन्हीं को दे दिया। वही कोल्हापुर-राज्य आज भी उक्त वंश में चला आता है। इस प्रकार बड़ी सावधानी और नम्रता से इस कौटुम्बिक झगड़े का अन्त शाहू ने कर दिया। इससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

(३) मराठों का नवीन उद्योग—शाहू का पक्ष धीरे धीरे

अधिक वलिष्ठ हो गया। लेकिन उसके सामने अन्य अ
कठिनाइयाँ थीं। उस समय दिल्ली की मुग़ल-बादशाही विल
कमजोर हो चुकी थी। भिन्न भिन्न प्रान्तों पर शासन करने के
जिन सूबेदारों को बादशाह ने नियुक्त किया था वे सब स्व
होकर अपना राज्य स्थापित करने का उद्योग करने लगे। दि
के बादशाह का प्रभाव नष्ट हो गया। ऐसी अवस्था में सभी ल
को अपना अपना राज्य स्थापित करने का उद्योग करते देख
शाहू के महाराष्ट्र शासन को भारत व्यापी बनाने की इच्छा उ
हुई। शिवाजी का जो कार्य बीच में आकर रुक गया था उसे
करके दिल्ली में हिन्दू पद बादशाही स्थापित करके शिवाजी
कार्य पूरा करने की लगन बालाजी विश्वनाथ को लग
औरङ्गज़ेब से पचीस वर्ष तक युद्ध करते रहने से मराठों को
करने का अच्छा अभ्यास हो गया। पेशवा ने सोचा था कि इन
बाहरी प्रान्तों में काम न दिया गया तो शीघ्र ही ये लोग आ
में लड़ कर महाराष्ट्र की बढ़ती हुई शक्ति को शिथिल कर
और यदि ये दूर प्रान्तों में लड़ाई में अटका रक्खे गये तो घ
झंटों का अन्त हो जायगा और अस्तगत मुगलशाही का र
महाराष्ट्र-शक्ति में आ मिलेगा। यही विचार अन्य दूरदर्शी सर
के भी थे। इसी स्थिति में बालाजी विश्वनाथ को पेशवा
पद मिला था। इतने में ही दिल्ली में बादशाह और
भाइयों के बीच झगड़ा खड़ा हो गया। उनमें से एक पक्ष
मराठों से सहायता की याचना की। यह याचना पेशवा के
के अनुकूल थी। शाहू की आज्ञा से पेशवा बालाजी व खंडे
दाभाडे फौज लेकर दिल्ली जा पहुँचे, और वहाँ अपना काम क
वापस आये। उस समय बादशाह ने मराठों को दक्षिण के

सूबों* पर स्वराज्य दिया तथा अन्य मुगल शासनाधीन प्रान्तों में चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इन अधिकारों की सनद बादशाह ने पेशवा को दी थी (१७१९)। इसी के आधार पर बाद को मराठों का विस्तार सारे भारत में हुआ।

(४) स्वराज्य, चौथ व सरदेशमुखी—स्वराज्य अर्थात् सम्पूर्ण रीति से मराठों के अधिकारगत देश। इसकी स्वीकृति बादशाह ने ऊपर कही गई सनदद्वारा दी। सरदेशमुखी अर्थात् मराठे सरदारों की परम्परागत आय। प्रत्येक गाँव का सरकारी कर वसूल करते समय सरकारी रकम भरने का उत्तरदायित्व लेने के बदले में आमदनी का दस फी सदी भाग सरदेशमुख ले—ऐसा नियम था। शिवाजी के बाद भोंसले छत्रपति अपने को देश भर का सरदेशमुख समझते थे। अपने इच्छानुसार अपने अनुचरों को वेतन देते थे।

तीसरी सनद चौथ की थी। बादशाह अथवा अन्य शासक जब स्वयं शासन करने में असमर्थ हो गये तब उन्होंने मराठों की सहायता ली और इस सहायता के बदले में उन्होंने अपनी आमदनी का चतुर्थांश देने का निश्चय किया। गुजरात, मालवा, बरार इत्यादि प्रदेश शाह ने भिन्न भिन्न सरदारों को बाँट दिये और उनको चतुर्थांश या चौथ वसूल करने की आज्ञा दी। इस

*मुगल साम्राज्य के उत्तर-भारत के सूबे—१ काबुल, २ लाहार, ३ मुल्तान, ४ सिन्ध, ५ काश्मीर, ६ गुजरात, ७ मालवा, ८ अजमेर, ९ दिल्ली, १० आगरा, ११ इलाहाबाद, १२ अवध, १३ बिहार, १४ बङ्गाल, १५ उड़ीसा। दक्षिण के सूबे—१ बुरहानपुर, २ बरार, ३ बीदर, ४ हैदराबाद, ५ बीजापुर ६ कर्नाटक।

काम को सरजामी पद्धति कहते हैं। इसके अनुसार कार्य करने से मराठा-शक्ति का विस्तार फैला। अंगरेज़ों की तैनाती फौज की पद्धति के समान (Subsidiary System) ही यह चौथ लेने की पद्धति मराठों की थी। अंगरेजों ने आगे चल कर इसी पद्धति के अनुकूल "तैनाती फौज" का खर्च क्रम से निश्चय करके अपना सार्वभौमत्व भारत में स्थापित किया है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है। पहले की ग्राम-संस्था और मराठों के अपने पुराने वतनों के लोभ को ध्यान में रख शाहू और बालाजी विश्वनाथ ने इस पद्धति की रचना पहले की थी। ग्राम संस्था में बारह अलूतों और बारह बलूतों के ऊपर ग्राम का सारा कार्य भार रहता था। इस व्यवस्था से सरकार का सम्बन्ध कर वसूल करने के अतिरिक्त प्राय बहुत कम रहता था। देसाई अथवा देशाई अर्थात् देश का अथवा गाँव का कर एकत्र करनेवाले अधिकारी का नाम था। उसको लिखनेवाला कुलकर्णी, कर्नाटक में नाडगौडा, कह कर पुकारते हैं। १०५ गाँवो पर शासन करने वाला सरदेशमुख कहलाता था। इस प्रकार राज कर्मचारियों की व्यवस्था महाराष्ट्र में थी। इस प्रकार मालगुजारी और तहसील-वसूल का प्रबन्ध करके पहला पेशवा बालाजी विश्वनाथ २४-१७२० को अकस्मात् मर गया। वह बुद्धिमान, नियामक और दूरदर्शी था।

आठवाँ अध्याय

छत्रपति शाहू, पेशवा बाजीराव व नाना साहब

ई० स० १७२०-१७४०

१—पेशवा पहला बाजीराव
२—निजामुल्मुल्क
३—मराठा शक्ति का विस्तार
४—पेशवा नाना साहब
५—शाहू की मृत्यु

(१) पेशवा पहला बाजीराव—बालजी के बाद पेशवाई का कार्य उसके लड़के को न देकर किसी अन्य व्यक्ति को दिलाने का आग्रह अनेक सरदारों ने किया। लेकिन बालाजी का पुत्र अपने पिता के समान चतुर था और पराक्रमी भी था। उसका भाई चिमणाजी अप्पा भी उसके समान कर्त्तव्यशील था। शाहू को स्वयं लड़ाई पर जाने की इच्छा न रहने से उसने बालाजी की सहायता से आज तक राज्यश्री का भोग किया था। इसलिए यह उद्योग वैसा ही आगे भी चलाने के अभिप्राय से शाहू ने पेशवाई की पोशाक बाजीराव को ही पहनाई। उसने भी अपने पिता के उद्देश को यथाशक्य शीघ्र सफल करने का निश्चय कर नवीन उद्योग शुरू किया।



बाजीराव



निजामुल्मुल्क

धोलापुर की लड़ाई के बाद शीघ्र ही सैय्यदों का नाश कर निजाम ने कुछ दिनों दिल्ली की बादशाही की वजीरी की। लेकिन बादशाह को कमजोर और अपने हाथ में बादशाह का भला होता न देख स्वतंत्र होने का विचार कर वह दक्षिण में आया और औरङ्गाबाद में आकर उसने अपना राज्य स्थापित (सन् १७२३) किया। वही आजकल हैदराबाद का राज्य है। निजाम से मराठे लोग चोथ व सरदेशमुखी माँगने लगे। इसी से दोनों में बिगाड उठ खड़ा हुआ। दोनों ही महाराष्ट्र-देश पर अपना शासन जमाना चाहते थे। इसलिए बाजीराव और आगे के पेशवा इस निजाम-राज्य से बराबर नियम से लड़ाई लड़ते रहे। इसी प्रकार पश्चिमी किनारे पर जजीरा में सीदी सरदार मुगल जहाजी बेड़े के कर्त्ता धर्ता थे। वे लोग मराठों को तंग किया करते थे। इनके अतिरिक्त यूरोप से आये हुये पुर्त्तगीज लोग भारत में आकर गोवा, बसई इत्यादि स्थानों पर अपना अधिकार जमाये बैठे थे। वे भी पेशवा के साथ लड़ाई करने लगे। एक ही समय कौन कौन शत्रु थे और उनके साथ मराठे कहाँ कहाँ लड़ाई लडते थे, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

निजामुल्मुल्क मराठों का शासन शान्ति के साथ चलने न देता था और शाहू तक को उखाड फेकने का प्रयत्न करता था। तब बाजीराव ने उसके साथ प्रबल युद्ध करके सन् १७२८ में पालखेड में उसे बिलकुल हरा दिया और मराठा शक्ति की गृह-कलह में हाथ न डालने की प्रतिज्ञा निजाम से करा ली।

ताराबाई के झगड़े का निपटारा करने के लिए उसके साथ शाहू ने पहले ही सन्धि करके उसे कोल्हापुर का राज्य अलग कर

मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिन्धे, उदाजी पवार, इत्यादि अनेक सरदार उसके बचपन के ही साथी थे। उनकी सहायता तथा पिलाजी जाधव, खंडेराव दाभाडे, फतहसिंह भोंसले उसी प्रकार कान्होंजी आँगरे, रघुजी भोंसले, और श्रीपतिराव प्रतिनिधि शाह के भरोसे के सरदार इत्यादि लोगों की सहायता से सम्पूर्ण देश को जीतने का उद्योग उसने प्रारम्भ किया।

२—निजामुल्मुल्क—मुग़लों के भारत में प्रवेश करने के समय अनेक घराने भारत में विदेश से आये और यहाँ नामाङ्कित हुए। इनमें निज़ाम का वंश प्रधान था। इस वंश के लोग बादशाह के दरबार में वजीर इत्यादि ऊँचे ऊँचे पदों पर थे। उन्हीं लोगों में से चिनकिलिजख़ाँ उर्फ़ निजामुल्मुल्क नामक एक पराक्रमी सरदार औरङ्गजेब के दरबार में उन्नति कर चुका था। सैय्यदों को निर्बल करने के लिए निजाम ने एक बड़ी फौज तैयार की। सैय्यदों का सरदार आलमअली इस फौज पर चढ़ दौड़ा। बालाजी विश्वनाथ की सन्धि के अनुसार सैय्यदों की सहायता करने के लिए खंडेराव दाभाडे मराठों की फौज लेकर गया। बरार में बालापुर नामक स्थान में निजाम और आलम अली की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में आलमअली मारा गया। (सन् १७२०)। इस लड़ाई में दामाजी ने विशेष पराक्रम दिखाया था इसलिए शाह ने उसे दाभाड़े का सहायक बना कर "शमशेर बहादुर" की पदवी दी। दामाजी से ही गायकवाड़ राज घराने की उत्पत्ति हुई है। इसके बाद दामाजी की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। बालापुर की लड़ाई में निज़ाम को जीत न मिली होती तो भारत का भावी इतिहास आज कुछ और ही होता।

बालापुर की लड़ाई के बाद शीघ्र ही सैय्यदों का नाश कर निजाम ने कुछ दिनों दिल्ली की बादशाही की वजीरी की। लेकिन बादशाह को कमज़ोर और अपने हाथ से बादशाह का भला होता न देख स्वतंत्र होने का विचार कर वह दक्षिण में आया और औरङ्गाबाद में आकर उसने अपना राज्य स्थापित (सन् १७२३) किया। वही आजकल हैदराबाद का राज्य है। निजाम से मराठे लोग चौथ व सरदेशमुखी माँगने लगे। इसी से दोनों में बिगाड उठ खड़ा हुआ। दोनों ही महाराष्ट्र-देश पर अपना शासन जमाना चाहते थे। इसलिए बाजीराव और आगे के पेशवा इस निजाम-राज्य से बराबर नियम से लडाई लड़ते रहे। इसी प्रकार पश्चिमी किनारे पर जंजीरा में सीदी सरदार मुगल जहाजी बेडे के कर्त्ता धर्ता थे। वे लोग मराठों को तंग किया करते थे। इनके अतिरिक्त यूरोप से आये हुये पुर्त्तगीज लोग भारत में आकर गोवा, वसई इत्यादि स्थानों पर अपना अधिकार जमाये बैठे थे। वे भी पेशवा के साथ लड़ाई करने लगे। एक ही समय कौन कौन शत्रु थे और उनके साथ मराठे कहाँ कहाँ लडाई लडते थे, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

निजामुल्मुल्क मराठों का शासन शान्ति के साथ चलने न देता था और शाहू तक को उखाड फेकने का प्रयत्न करता था। तब बाजीराव ने उसके साथ प्रबल युद्ध करके सन् १७२८ में पालखेड में उसे बिलकुल हरा दिया और मराठा शक्ति की गृह-कलह में हाथ न डालने की प्रतिज्ञा निजाम से करा ली।

ताराबाई के झगडे का निपटारा करने के लिए उसके साथ शाहू ने पहले ही सन्धि करके उसे कोल्हापुर का राज्य अलग कर

दिया था। इस स्थान पर राजसबाई का लडका राज्य करता था। इसका नाम सम्भाजी था। यह निजाम से जा मिला। तब शाहू ने उससे लड़ने के लिए प्रतिनिधि को भेजा। इस युद्ध में प्रतिनिधि से वह हार गया। उसे भेंट करने के लिए बुलाकर उसने उससे संधि करके कोल्हापुर के स्वतन्त्र राज्य का दान पत्र दिया। यही संभाजी कोल्हापुर के वर्त्तमान छत्रपति राजवंश का आदि-पुरुष था (सन् १७३१)।

मराठाशक्ति के कितने ही पुराने सरदार पेशवाओं के विरुद्ध थे। उन्हें पेशवा का शासन रुचिकर न था। अवसर पाकर वे पेशवा के शत्रुओं से मिल जाते थे। सेनापति खंडेराव दाभाडे के सन् १७२९ में मरने के बाद उसका लड़का त्रिंवकराव दाभाडे गुप्तरीति से निजाम के साथ लिखा पढ़ी करके पेशवाओं का पतन करने का उद्योग कर रहा था। इसलिए बाजीराव ने उस पर चढ़ाई करके गुजरात में डभई नामक स्थान में उसको परास्त किया। उस लड़ाई में त्रिंवकराव मारा गया (१४-१७३१)। उसका भाई पराक्रमी न था, इसलिए गुजरात का कार्य दाभाडे के सहायक पिलाजी गायकवाड़ को दिया गया। उसके वंशज बड़ौदा के गायकवाड़ हुए। सन् १७३३ में बाजीराव ने कोंकन पर चढाई कर जंजीरा के सीदियों का अंत कर दिया।

निजामुल्मुल्क ने बाजीराव के साथ फिर छेड़छाड़ शुरु की। दिल्ली से सहायता पाकर वह मराठों का पतन करना चाहता था। बाजीराव ने ठेठ दिल्ली तक चढाई करके बादशाह को हरा दिया। यह बात निजाम न सह सका, इसलिए उसने बाजीराव से लड़ाई ठानने के लिए फौजें भेजीं। इन दोनों

फौजों की मुठभेड़ भोपाल के समीप हुई। इस लड़ाई में घोर युद्ध के बाद निजाम को बुरी तरह की हार हुई। यह हार सन् १७३८ में ८ जनवरी को हुई। इसमें अनेक वीरों के मारे जाने से निज़ाम शिथिल होकर बैठ रहा।

(३) **मराठाशाही का विस्तार**—बाजीराव के समय के मराठे सरदार सारे भारत में विजय प्राप्त करने लगे। भिन्न भिन्न प्रान्तों पर अधिकार जमाने का काम भिन्न भिन्न सरदारों को बाँट दिया गया, और वे स्थान स्थान पर जाकर सदैव के लिए बस गये। शाहू ने उन्हें बहुमान और जागीर देकर इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। अलिजा बहादुर, सेना साहेब सूबा, शमशेर बहादुर, सर लश्कर इत्यादि आकर्षक पद वियाँ मराठे सरदारों को शाहू के समय में मिलीं। सिंधे उत्तर-भारत में जा बसा, मालवे में होल्कर और पँवार की नियुक्ति हुई। वहाँ के राजा गिरधर और मुहम्मदखाँ बगश को हरा कर वह प्रान्त मराठों ने ले लिया। बुंदेलखंड में छत्रसाल की सहायता कर बाजीराव ने वहाँ बहुत सी भूमि अपने अधिकार में की। नागपुर को भोसलों ने अपना घर बनाया। गुजरात में सेनापति दाभाडे तथा उनके सहायक गायकवाड रहने लगे। उन लोगो ने बादशाह के सूबेदार सर बुलन्दखाँ और मारवाड़ के राजा अभयसिंह को परास्त किया। कोंकन में आँगरे रहता ही था। दक्षिण में कर्नाटक प्रात को रघुजी भोंसले ने अपने अधिकार में किया। दक्षिण महाराष्ट्र म आगे चल कर पटवर्धनो की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और म्यन

पेशवा दक्षिण से उत्तर तक घूम-फिर कर महाराष्ट्र-सत्ता का विस्तार करने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों में मराठे सरदारों की राजधानियाँ बन गईं। ग्वालियर, धार, सागर, झाँसी, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा अक्कल कोट इत्यादि स्थानों में मराठों का शासन होने लगा और उनका ज़ोर धीरे धीरे इतना बढ़ा कि लगभग एक सौ वर्ष तक उनकी सत्ता सार्वभौम कायम रही। इस प्रकार माराठा सरदारों ने मुग़ल-बादशाही को चारों तरफ़ से घेर लिया। बाजीराव के भाई चिमणाजी अप्पा ने सन् १७३९ में पुर्त्तगीज लोगों से बसई छीन कर कोंकन के किनारे पर महाराष्ट्र-शासन का अधिकार जमाया। इस राज्य-विस्तार से हर प्रकार के लोगों का कर्त्तव्यक्षेत्र बढ़ गया। अनेक प्रकार के उद्योगों द्वारा व्यवसाय में सैकड़ों घरानों का उदय हुआ। इनमें से अनेक लोगों के वतन अब भी विद्यमान हैं। इनके उस समय के उद्योगों की कथाओं से महाराष्ट्र-काल का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक हो गया है। सारस्वत तक समस्त ब्राह्मण, मराठे, परभू, वैश्य और सब प्रकार के कला प्रवीण साहूकार इत्यादि प्राय बड़ी तेजी के साथ उन्नति करने लगे। इन सब का हाल जानने के लिए बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। शाहू के दरबार में उनके निज का काम-काज करने वाले चिटणीस गोविन्द खंडो की निस्पृहता और राष्ट्र सेवा, तथा उसके बाप और बाबा का अनुपम स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है। इस चिटणीस घराने ने लेखनी ही पकड़ी थी और सरंजामी सरदार पद का त्याग किया था। लेकिन राष्ट्र के इतिहास को लेखबद्ध करने का सौभाग्य उसी को प्राप्त हुआ। ऐसे कितने ही कुटुम्बों की नामावली दी जा सकती है जिसको देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इस प्रकार पेशवाओं द्वारा शुरू किया गया उद्योग उन्नत होने लगा परन्तु मराठे सरदार सब एक मत होकर न रहते थे। इसलिए उनकी सत्ता चिरस्थायी न रही। बाजीराव को पैसे की बडी अडचन पड़ती थी। उसके ऊपर कर्ज भी अधिक हो गया था। सन् १७४० में उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में नर्मदा के तट पर अकस्मात् उसने शरीर त्याग किया। वह "गुरीला" ढङ्ग की लडाई लड़ना खूब जानता था। वह शूर और यशस्वी योद्धा था। उसके समय में अनेक लोगों की प्रसिद्धि हुई। बाजीराव के दो पुत्र—बालाजी राव और रघुनाथ राव थे। चिमणाजी अप्पा भी इसी वर्ष दिसम्बर मास की १७ तारीख को मर गया। उसके लड़के का नाम सदाशिव राव था। ये तीनों ही आगे चलकर प्रसिद्ध हुए।

(४) पेशवा नाना साहब—इसके समय में रघूजी भौंसले और फतहसिंह भौंसले ने कर्नाटक पर आक्रमण करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार किया। वहाँ मुरारराव घोरपड़े को प्रबन्ध के लिए नियुक्त करके तथा तजौर के महाराष्ट्र राजा को तग करने वाले कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को मार कर उसके दामाद चदा साहब को सतारा लाकर कैद कर दिया था। बाजीराव के मरने पर उसके बडे लड़के बालाजी उर्फ नाना साहब को शाहू ने पेशवाई का पद दिया। वह भी अत्यन्त चतुर था। अपने पूर्वजों के द्वारा किये हुए कार्य को उसने जोरों के साथ आगे बढाया। नागपुर के भोंसले और बडोदे के गायकवाड ये दोनों ही नाना साहब के विरुद्ध थे। ये चाहते थे कि पेशवा के प्रतिबन्ध में न रहकर उसका नाश करके स्वतत्रता से राज्य करें। गायकवाड़ ने गुजरात प्रान्त पर अपनी सत्ता जमाई थी और भौंसलों

ने नागपुर व ठेट बगाल तक का देश अपने अधिकार में किया था।

पेशवा नाना साहब पर शाहू का पुत्रवत् स्नेह था। जिस समय उसे पेशवाई मिली उस समय उसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। शीघ्र ही बाजीराव और चिम्माजी अप्पा के द्वारा किये गये उद्योग को सफल करने का नाना साहब ने सकल्प किया। वह स्वभाव से गम्भीर, लिखने में कुशल, व्यवहार में चतुर और बातचीत में दूसरे पर प्रभाव डालनेवाला था। उसने कोल्हापुर के महाराज सम्भाजी के साथ मैत्री कर ली थी। निज़ाम से मिलकर उसने उसे अपना लिया था। उत्तर-भारत में बुन्देलखंड, प्रयाग, काशी, गया, मुर्शिदाबाद तक आक्रमण कर उन प्रान्तों में मराठों की धाक जमा दी थी। दिल्ली के बादशाह से मालवा की सूबेदारी मराठों के लिए लिखा ली थी। पहले रघुजी भोंसले पेशवों के बहुत विरुद्ध रहता था। इसीलिए नाना साहब ने युद्ध में शाहू के द्वारा उसका गर्व नष्ट करा के उसके साथ सन्धि करके स्नेह स्थापित किया। प्रतिनिधि और आँगरे भी पेशवा के विरुद्ध थे। इनमें से प्रतिनिधि के हाथ में कोई सत्ता न थी। सन् १७५६ में नाना साहब ने अगरेजों की सहायता लेकर आँगरे को हराया। अंगरेजों ने बम्बई-द्वीप लेकर उस पर अपनी बस्ती बसाई थी। पेशवों ने पुर्तगीज़ों का नाश करके पश्चिमी किनारे पर अंगरेज़ों का एक शत्रु कम कर दिया था और नाना साहब ने अगरेज़ों को सहायता देकर आँगरे का पतन किया। इससे पश्चिमी किनारे पर अगरेज़ों को कोई रोक-टोक करनेवाला न रहा। अपने जहाजी बेड़े को स्वय ही डुबाना पेशवा की बड़ी भारी भूल थी।

(५) शाहू की मृत्यु—१४ १२ १७४९ को शाहू छत्रपति की मृत्यु हुई। इस राजा को बड़ा भाग्यशाली कहना चाहिए। आठ वर्ष की अवस्था में अपनी माता के साथ बादशाह की कैद में रहा। वहाँ से पचीसवें वर्ष में उसका छुटकारा हुआ। इसके बाद ४२ वर्ष तक शान्ति और न्याय के साथ शासन करके उसने राष्ट्र का प्रेम सम्पादित किया। सभी सरदार और प्रजागण उस पर श्रद्धा रखते थे और उसकी आज्ञा का पालन करते थे। उसी के शासन-काल में मराठों का देश के सभी प्रान्तों में प्रवेश हुआ। लेकिन उसने शासन की कोई चिरस्थायी व्यवस्था नहीं की। तो भी उसने अपने सादे और पवित्र व्यवहार से शत्रु मित्र के चित्त पर एक सी छाप लगा कर सब जातियों व सब पेशों के लोगों के सामने उद्योग करने के लिए नवीन क्षेत्र खड़ा कर दिया था। महाराष्ट्र में अनेक घरानों का उदय इसी शाहू के शासन काल में हुआ था। शाहू के कोई सन्तान न थी। इसलिए ताराबाई के नाती रामराजा को गद्दी पर बैठाने और पेशवा को राज-काज करने की आज्ञा देकर वह मरा था। इस आज्ञा के अनुसार ताराबाई की सम्मति लेकर नाना साहब ने रामराजा को लाकर सतारा की गद्दी पर बैठाया। परन्तु रामराजा निर्बल था। उसको गद्दी पर बैठाकर ताराबाई शासन की सारी सत्ता अपने हाथ में लेना चाहती थी। इसलिए उससे पेशवा की नहीं पटी। यही कारण है कि उसने पेशवा के हाथ से सारी सत्ता छीन लेने के अभिप्राय से दमाजी गायकवाड़ को गुजरात से फौज ले कर बुलाया। दमाजी ने आकर बड़ा गड़बड़ फैला दिया। परन्तु पेशवा ने उसको नीचा दिखाकर कैद कर लिया और उससे आधा गुजरात देने की प्रतिज्ञा लिखा ली। इसके बाद पेशवा

ने सतारा छोड़कर पूना में ही अपना सारा कार्य शुरू किया और प्रतिनिधि, सचिव इत्यादि मंडली के साथ स्वतंत्र संधि कर के ताराबाई हार कर बैठ रही। उधर ताराबाई ने रामराजा को सतारा के किले में सख़्त कैद कर पेशवा के साथ विरोध खड़ा किया। किन्तु इस विरोध का कुछ फल न हुआ और वह सन् १७६१ में ९ नवम्बर को मर गई। रामराजा को वास्तव में ताराबाई के नाती न होने की बात पीछे प्रकट हुई। इससे मराठों में बड़ा प्रपंच उठ खड़ा हुआ। उसमें चतुरता भी न थी। और इधर राज-वंश के साथ कृत्रिम सम्बन्ध खुलने से छत्रपति के राज्य का विलक्षण उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। इससे कोल्हापुर और सतारा दोनों के ही राज्य का क्षय हुआ।

पेशवे पूने में रहने लगे। इससे सतारा का महत्त्व कम होकर पूना ही आगे मराठा-राज्य की राजधानी बना। भिन्न भिन्न सरदारों के एक होकर एक साथ उद्योग करने की पद्धति शिवाजी ने चलाई थी। लेकिन बादशाह के आक्रमण के समय से इस पद्धति का नाश हो गया और एक दूसरे से अलग रह कर उद्योग करने वाले, सरंजामी सरदार बन कर वे अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति करने लगे। उनको एक सूत्र में बाँधने का काम शाहू ने केवल अपने प्रभाव से थोड़ा बहुत किया था। उसकी मृत्यु ने यह एक बन्धन भी तोड़ दिया। इससे मराठा मंडल में फूट फैल गई। इस फूट को दूर करने का प्रयत्न कुछ समय तक पेशवों ने किया, लेकिन जब उन्हीं के घर में कलह उठ खड़ी हुई तब अन्त में राज्य का नाश हो गया।

नवाँ अध्याय

छत्रपति रामराजा, पेशवा नाना साहब

सन् १७५०-१७६१

१—राज्य विस्तार के दो विभाग २—उत्तर-भारत में चौथवसूली का अधिकार
३—दत्ताजी सिंधिया का वध ४—पानीपत का भीषण संग्राम

(१) राज्य-विस्तार के दो विभाग—मराठों का राज्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों ही देशों में फैल रहा था। इनमें से दक्षिण भारत में महाराष्ट्र-शक्ति के विस्तार करने का कार्य शाहू ने कोल्हापुर के संभाजी को सौंप दिया था और उत्तर भारत में महाराष्ट्र-शक्ति के विस्तार का भार स्वयं शाहू ने अपने हाथ में लिया था। किन्तु जिस प्रकार शाहू ने नवीन सरदारों को जमाकर जोरों के साथ उत्तर भारत में महाराष्ट्र शक्ति की स्थापना करने का कार्य किया था, वैसे ही उत्साह के साथ दक्षिण भारत में संभाजी ने कोई काम न किया। दक्षिण में तंजौर भोसलों का छोटा सा राज्य शाहजी के समय से ही अनेक शत्रुओं से अपनी रक्षा करता हुआ निर्वाह कर रहा था। उसकी रक्षा और शिवाजी द्वारा जीते हुए भूभाग की रक्षा करने के लिए शाहू ने " आक्रमण करवाये थे। इस ओर के कार्य का जारी रखने के लिए शाहू की मृत्यु के बाद नाना साहब ने भी ध्यान दिया और

सदाशिवराव को साथ लेकर नाना साहब ने कर्नाटक पर लगातार आक्रमण कर वहाँ का अधिकांश भूभाग महाराष्ट्र-सत्ता के अधीन किया।

उत्तर में राज्य विस्तार का जो कार्य बाजीराव ने प्रारंभ किया था उसको भी नाना साहब ने अपने ऊपर ले लिया, लेकिन उसके स्वयं उत्तर-भारत में न जाने से काम बिगड़ता गया। मुगल-बादशाही बिगड़ती चली जा रही थी। सन् १७३८ में ईरान के नादिर शाह ने दिल्ली पर आक्रमण करके वहाँ के लोगों का भयंकर नाश करके अनेक शताब्दियों की जमी हुई सम्पत्ति लूट कर स्वदेश की राह पकड़ी थी। इस भयंकर परिस्थिति के कारण मुगल-बादशाह में आगे बढ़ने या अपनी रक्षा करने की शक्ति न रह गई थी। नादिर-शाह के बाद अहमदशाह अब्दाली ने अफ़ग़ानिस्तान से आकर सन् १७४८ से भारत पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था। दिल्ली के पड़ोस में रुहेले नाम के कुछ अफ़गान सरदार रहते थे, वे अब्दाली से जा मिले थे और उन्होंने मराठों से झगड़ा मोल ले लिया था। इस झगडे का कारण आगे दिया जाता है।

(२) उत्तर-भारत मे चौथवसूली का अधिकार—भारत के भिन्न भिन्न भागों में चौथ और सरदेशमुखी के कर बैठा कर उन प्रान्तों को अपने अधीन करने का कार्य बाजीराव ने प्रारंभ किया था। उसी का अनुसरण करते हुए सिन्धिया, होलकर, बुंदेले इत्यादि सरदार मालवा और बुन्देलखंड को हस्तगत कर आगरा और दिल्ली की ओर बढने लगे और यमुना को पारकर दुआबे में भी उन्होंने अपना प्रभाव जमाया। जिन प्रान्तों में मराठों का अधिकार हो जाता या जहाँ ये लोग कर वसूल करते, विदेशियों के आक्रमणों से वहाँ की रक्षा करने का भार

अपने ऊपर ले लेते । उत्तर में अकाली और दक्षिण में मराठे दोनों ओर से शत्रुओं का भय दिल्ली के बादशाह को सदैव बना रहता था। दोनों ओर से भय त्रस्त होने के कारण बादशाह को अपनी रक्षा का उपाय सोचना पड़ा। नादिरशाह द्वारा की गई दिल्ली की लूट की पुनरावृत्ति रोकने के लिए बादशाह ने यह निश्चय किया कि अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों को रोकने के लिए मराठों से मेल किया जाय। उसके वजीर गाजीउद्दीन का मराठों से मेल था। उसके परामर्श से बादशाह ने सिन्धिया और होल्कर को बुलाकर उनके साथ सन् १७५० में सन्धि कर सिन्धु-पर्यन्त प्रान्तों की चौथ और सरदेश मुखी वसूल करने का अधिकार उनको दे दिया। और इसके बदले में सिन्धिया और होल्कर ने बादशाह के दुश्मन अब्दाली और रुहेलों का प्रबन्ध करने का भार अपने ऊपर ले लिया। वास्तव में अटक से प्रयाग काशी तक के प्रदेश को सुरक्षित रखने का काम बहुत बड़ा होने के कारण उन्हें नहीं सौंपा गया था, क्योंकि इस काम के लिए धन और फौज की अधिक आवश्यकता थी। यह सन्धि जयाप्पा सिन्धे और मल्हारराव होलकर ने पेशवा के नाम लिखाई थी। इस समय दिल्ली के बादशाह के दरबार में दो पक्ष थे। एक पक्ष गाजीउद्दीन और मराठों का था। इसका मत था कि भारतीय लोग एक होकर विदेशियों के आक्रमणों से भारत की रक्षा करें। दूसरे पक्ष में रुहेले व अन्य मुसलमान सरदार थे। ये लोग यह चाहते थे कि सब मुसलमान एकत्र होकर हिन्दुओं से दिल्ली की रक्षा करें, इस काम में विदेशी मुसलमानों की सहायता भी यदि लेनी पड़े तो कोई हानि नहीं। दिल्ली के मुसलमानों को मराठों का इस प्रकार दिल्ली के बादशाह से मिल जाना अच्छा न

लगा। इनमें नजीबखाँ नाम का एक रुहेला सरदार मुखिया था। उसने बादशाह की माँ से मिलकर और उसकी सम्मति प्राप्त कर मराठों को शिथिल करने का उद्योग किया। इसी अभिप्राय से उसने अब्दाली को हर प्रकार की सहायता देकर उसे बार बार भारत में आने के लिए प्रेरित किया। इस षड्यंत्र को निष्फल करने के लिए पेशवा ने रघुनाथराव को सिन्धे और होलकर की सहायता के लिए भेजा। इस प्रकार मराठों और अब्दाली के बीच झगड़े की जड़ पड़ी, उसका अन्त पानीपत के मैदान में ही हुआ।

सैकड़ों वर्षों से जमे हुए मुसलमानों के राज्य के इस समय मराठों-द्वारा जीते जाने का अनुमान लोगों को हो रहा था। वास्तव में दिल्ली की बादशाही जीतने का काम हाथ में न लिया गया था। मराठे उत्तर भारत पर आक्रमण करने लगे थे। उस समय वहाँ के लोगों को बड़ा दु ख हुआ। शिवाजी की चलाई पद्धति का नाश इस समय तक हो चुका था। धन का अभाव होने लगा था। इसलिए मराठे लोग मनमानी लूट करने लग गये थे। प्राय लूट के अभिप्राय से ही वे लोग लड़ाई में जाते थे। उस समय राजपूत इत्यादि उत्तर के हिन्दू लोगों को मराठों की लूट-पाट से बड़ा दु ख हुआ। इससे मराठों की उद्देशसिद्धि में अड़चनें आने लगीं। उन पर प्रभाव जमाने में रघुनाथराव अशक्त था। उत्तर में लड़नेवाले सरदारों को वश में रखने तथा उनसे काम कराने की शक्ति भी उसमें न थी। उसका व्यवहार भी शुद्ध न था। इससे किसी भी प्रश्न में वह स्वयं कोई बात निश्चय न कर सकता था। इसलिए उद्योगशील मराठे सरदारों को वह एक दूसरे के साथ मेल करा कर न रख सका। सिंधिया और होल्कर में बिगड़ रही थी। इस वैमनस्य का अन्त भी रघुनाथराव न कर

सका। कुम्भेरी पर घेरा डालते समय मल्हारराव का लड़का प्रसिद्ध अहिल्याबाई का पति खण्डेराव होल्कर १७३१७५४ को गोली लगने से मर गया। इससे होल्कर अत्यधिक चिढ़ गया। इससे जयाप्पा रूठ कर मारवाड़ की ओर चला गया। वहाँ राजपूतों ने नागार में उसे मार डाला (३० ६-१७५५)।

इधर नजीबखाँ ये सब बातें अब्दाली को अच्छी तरह बता कर भारत पर उसे चढ़ा लाया। उसने आकर दिल्ली पर सन् १७५७ में अधिकार जमा लिया। इस प्रकार दिल्ली लेकर वह दक्षिण की ओर बढ़ा और उसने मथुरा के हिन्दू-देवालय को नष्ट कर दिया और उसे लूटा। इसी समय उसने दिल्ली को अपने अधिकार में रखने का पक्का प्रबन्ध करना चाहा, लेकिन उसकी फौज में महामारी फैल जाने से उसके सिपाही अफगानिस्तान को लौटने लगे।

अब्दाली का प्रबन्ध करने के लिए फिर भी रघुनाथराव को ही पेशवा ने दिल्ली भेजा। उसके दिल्ली पहुँचने तक अहमद-शाह दिल्ली से निकल गया था। रघुनाथराव ने दिल्ली का प्रबंध कर पञ्जाब पर चढ़ाई की। पञ्जाब की रक्षा उस समय अहमद शाह अब्दाली का लड़का तैमूरशाह कर रहा था। उसको भी मराठों ने मार भगाया और अटक तक उसका पीछा करके सिन्धु नदी का पानी दक्षिण के घोड़ों को पिलवाया (सन् १७५८)। बस यहाँ मराठों के उत्कर्ष की सीमा का अन्त हुआ। मराठों का झंडा अटक पर फहरा गया। नजीबखाँ इत्यादि मुसलमान सरदारों को मराठों की यह विजय बेतरह खटकी। पञ्जाब का पक्का प्रबन्ध किये बिना ही रघुनाथराव दिल्ली को लौट पड़ा। वहाँ के बन्दोबस्त का कार्य उसने दत्ताजी सिन्धिया को सौंप दिया। इस

काम में होल्कर ने दत्ताजी की सहायता न की। स्थान स्थान पर मराठों की छोटी छोटी फौजें थीं। उनमें ऐक्य न होने से उनकी स्थिति शिथिल हो गई। इस स्थिति का ठीक ठीक अनुमान नाना साहब पेशवा को न हो पाया। स्वयं तो कभी उत्तर-भारत में उसने पैर रक्खे न थे। इसी से वहाँ गडबड़ और अव्यवस्था फैल गई और अब्दाली व नजीबख़ाँ का बल बढने लगा।

(३) दत्ताजी सिन्धिया का वध (१०-१०-१७६०)— नजीबख़ाँ की मंत्रणा से प्रेरित होकर अहमदशाह अब्दाली सन् १७५९ के अन्त में पञ्जाब पर चढ दौड़ा और वहाँ से मराठो की फौजों को भगा कर सीधा दुआवे में पहुँचकर दत्ताजी सिन्धिया पर वार करने लगा। उस समय मल्हारराव होल्कर जयपुर के समीप था। इसलिए कुछ समय ठहरकर अपना बचाव न करके दत्ताजी ने एकाएक अब्दाली का सामना करने का निश्चय किया। उसका नाती जयाप्पा का लड़का जनकोजी भी उसके साथ था। इसके सिवा सिन्धिया के साथ अन्य अनेक शूरवीर भी थे, जो सिन्धिया के लिए प्राण त्याग करने में हिचकने न थे। उसने मल्हारराव को अपनी फौज लाने के लिए लिखा और स्वय अब्दाली का सामना करने को निकला। थोड़े दिनों के बाद सिन्धिया और अब्दाली इन दोनों का सामना हुआ। यमुना के तट पर दिल्ली के समीप एक तट पर सिन्धिया और दूसरे तट पर अब्दाली का पड़ाव पड़ा। १० जनवरी सन् १७६० को अब्दाली और नजीबख़ाँ की फौजें यमुना पारकर दत्ताजी पर आक्रमण करने लगीं। उस समय दत्ताजी उनको रोकने के लिए गया था, अत॰ नदी में ही दोनों फौजो का आमना-सामना हुआ और लड़ाई शुरू हुई। इसमें दत्ताजी जख्मी होकर गिर पड़ा उसी समय शत्रु ने उसका सिर काट लिया। जनकोजी के हाथ

में गोली लग जाने से वह भी गिर पड़ा, लेकिन उस लोगा ने घोड़े पर सवार कराकर भगा दिया। इस तरह सिन्धिया की पीछे हटी हुई फौज होल्कर से आ मिली। कुछ दिनों आराम करके फिर सिन्धे और होलकर की फौजों ने मिलकर दुआबे पर अधिकार किया। किन्तु वहाँ सफलता न मिलने से ये सभी फौजें चंबल के दक्षिणी तट पर आ गईं। इस प्रकार अब्दाली ने मराठों का इतने दिनों का किया हुआ उद्योग निष्फल कर दिया। और इस समय स्वदेश वापस न जाकर वह दिल्ली के उस पार सालाबाद के पास दुआब में अपना घेरा डालकर बैठ गया।

(४) पानीपत का भीषण संग्राम (१४१ १७६१)—ये समाचार नाना साहब पेशवा के पास पहुँचे। उस समय उसके स्वयं अहमदनगर में रहने के कारण उसकी फौजें निजाम पर चढ़ाई कर रही थीं। इन फौजों का आधिपत्य सदाशिवराव को दिया गया था और पेशवा का बड़ा लड़का विश्वासराव भी निजाम से लड़ रहा था। इब्राहीम खाँ गार्दी* इत्यादि तोपखाना चलाने वाले शूर सरदार सदाशिवराव के साथ थे। इन सबों ने उदगीर

* गार्दी अर्थात् गान, पश्चिमी कवायद सीखे हुए पैदल सिपाही बहुधा उत्तर के पठान और पुरबिया इत्यादि जाति के लोग थ। इनमें मराठे न थे। हथियार, बन्दूक और वेतन ८) से १५) प्रतिमास। प्रथम सेनापति बुसी ने ये पलटन पहले महाराष्ट्र में तैयार की थीं और उन्हें तोपखाने का भी काम सिखाया था। इस विषय में पेशवों ने अपने निज के आदमी तैयार न कर बुसी के सिवाय मुजफ्फरखाँ, इब्राहीमखाँ, इत्यादि को अपनी नौकरी में रख लिया था। ये भाड़े के काम करनेवाले सिपाही, पैसे के लिए अनेक साहस के करते थे। एक बार खाँ ने सदाशिवराव को मार डालने

में निजाम को परास्त किया और उसका ६० लाख का भूभाग छीन लिया। लेकिन साथ ही दत्ताजी के मारे जाने का समाचार सुन सदाशिवराव सीधा उत्तर-भारत की ओर चल पड़ा और पटदूर में पेशवा से मिल गया। यहाँ पेशवा ने सदाशिवराव और विश्वासराव को फौजें, सरंजाम और इब्राहीमखाँ को तोपखाना देकर सन १७६० का बदला लेने के लिए अब्दाली के विरुद्ध भेजा। सदाशिवराव पक्का, निस्पृह, हिसाब और व्यवहार में जल्दबाजी करने वाला और सब से जबरदस्ती काम लेने में चतुर था। केवल उसका स्वभाव हठी था। अपने ऊपर आई विपत्ति का ठीक ठीक अनुमान न करने की कमी उसमें थी। सेनापति के काम में वह अब्दाली के बराबर न था, तो भी महाराष्ट्र में उसकी योग्यता का अन्य आदमी न मिलने के कारण पेशवा ने फौजों का मुख्याधिकार उसी को सौंपा था। उसके साथ मराठों के बड़े बड़े सरदार भी थे। वर्षा-काल में ही मराठों की फौजों ने दिल्ली पर अधिकार जमा लिया। अहमदशाह की फौज यमुना के उस पार छावनी डाले पड़ी थीं। परन्तु नदी को पारकर अब्दाली पर मराठों ने आक्रमण न किया। इसलिए यमुना के किनारे किनारे उत्तर की ओर जाकर उन्होंने कुञ्जपुरा में अब्दाली के मुख्य मोर्चे को ले लिया। यह स्थान कुरुक्षेत्र के समीप था। इसके बाद ही अब्दाली को बागपत के समीप यमुना पार करने की सुविधा मिलने से उसने अपनी फौजें यमुना के इस पार दिल्ली की ओर उतार दीं और अपनी फौजों को मराठों के दक्षिण की ओर ले आया। इससे सदाशिवराव का दिल्ली का पाया टूट गया। वहाँ से थोड़ी दूर लौटकर इब्राहीम की सलाह से सदाशिवराव ने पानीपत गाँव के पास

मोर्चाबंदी की। उसकी इच्छा थी कि अब्दाली को भूखों मारकर स्व उसको पराजित करे। लेकिन रूहेले आदि अब्दाली के साथ थे, इसलिए अब्दाली ने मराठों की उपेक्षा की। दो अढ़ाई मास तक दोनों शत्रु मोर्चाबंदी किये एक दूसरे के सामने बैठे रहे। इस बीच में कई छोटी मोटी लड़ाइयाँ हुई, जिनमें बलवन्तराव मेहेंदले, गोविन्द पंत बुन्देले इत्यादि सरदार मारे गये। बाद को अन्न इत्यादि आना बन्द हो जाने से भी मराठे निरुपाय हो गये। तब १४ जनवरी सन् १७६१ को मराठी सेनाओं ने अब्दाली पर चढ़ाई की। दोपहर तक तुमुल युद्ध हुआ, तीसरे पहर विश्वासराव हाथी पर सवार होकर निकला। वह गोली लगने से तत्काल मर गया। तब सदाशिवराव का धैर्य जाता रहा और वह लड़ाई में स्वयं घुस पड़ा। उस समय सर्वत्र गड़बड़ फैल गया और मराठों का संहार हुआ। सदाशिवराव, जनकोजी सिन्धे, यशवंतराव पवार, इब्राहीमखाँ गार्दी, शमशेर बहादुर इत्यादि अनेक नामांकित सरदार मारे गये। मल्हारराव होलकर, दामाजी गायकवाड, महादजी सिन्धिया, नाना फड़नवीस इत्यादि कुछ गिनती के सरदार बचकर लौट पाये।

पानीपत के इस लोमहर्षण काण्ड से महाराष्ट्र में बड़ा आतंक फैल गया। सभी कार्यकर्त्ताओं की एक सम्पूर्ण पीढ़ी कट डाली गई। पेशवा नाना साहब और फौज लेकर ग्वालियर तक पहुँच पाया था कि पानीपत के इस पराजय का समाचार उसे मिला। यदि उस समय लड़ाई से बचे हुए लोग दिल्ली में ही ठहरे रहते तो पेशवा के साथ आई हुई सेना की सहायता से मराठों का कार्य सिद्ध हो गया होता, क्योंकि अब्दाली की भी फौज इस युद्ध में खप चुकी थी और भारी हानि उठा चुकी थी।

अब्दाली को धन की कमी पड़ गई थी, इसलिए इस युद्ध के बाद ही उसे महीने दो महीने के भीतर स्वदेश लौट जाना पड़ा। वास्तविक अव्यवस्था के कारण ही मराठों का इतना संहार हुआ। कौन मरा और कौन बचा, इसी का पता लगाते लगाते उनके दिन व्यर्थ चले गये। विश्वासराव, सदाशिवराव तथा अन्य बड़े बड़े सरदारों के मारे जाने से पेशवा को भारी धक्का लगा। इससे उसको चित्तभ्रम हो गया और पूना वापस आकर २३ जून १७६१ के दिन पर्वती के बाड़े में उसने शरीर त्याग किया। इस समय उसकी अवस्था केवल चालीस वर्ष की थी।

बालाजी पन्त नाना, बाजीराव, नानासाहब व माधोराव—ये चारों पुरुष पेशवा घराने में एक दूसरे के जोड़ के पराक्रमी और कर्त्तव्यशूर निकले। पहले व्यक्ति ने मराठा-शक्ति की जो जड़ जमाई उसको सिद्ध करने का सब ने प्रयत्न किया। हिसाब की पद्धति मराठी राज्य में न चल पाई थी। उसे नाना साहब ने परिपूर्ण की। नाना फड़नवीस इत्यादि बाद को प्रसिद्ध होनेवाले व्यक्ति नाना साहब के समय में ही शिक्षित और प्रबुद्ध हुए थे। उसके बाद उसके लड़के माधवराव को जो सोलह वर्ष का था, पेशवाई का भार सौंपा गया। उसने पानीपत के अधूरे कार्य को पूरा किया।

दसवाँ अध्याय

छत्रपति रामराजा—पेशवा माधवराव

सन १७६१-१७७२

१—राक्षस-भुवन की लड़ाई २—रघुनाथराव को कैद
३—बादशाह की दिल्ली में स्थापना ४—माधवराव की अकाल मृत्यु
५—मुरारराव घोरपड़े

(१) राक्षस-भुवन की लड़ाई—नाना साहब की मृत्यु के बाद पेशवाई के वस्त्र यथाविधि माधवराव को मिले। उस समय उसके चाचा रघुनाथराव की अवस्था सत्ताइस वर्ष की थी। इसलिए बड़प्पन तथा अनुभव अधिक होने के कारण उसी के कुटुम्ब का महत्त्व अधिक माना जाने लगा। किंतु उसका स्वभाव उस महत्त्व का अधिकारी न था, क्योंकि वह चंचल प्रकृति का था। सब की बातें शान्ति से सुनकर उनकी साध्यता और बाधकता का यथाविधि विचार करके उसका सार निकाल कर उसके पालन में वह सर्वथा असमर्थ था। जैसा कुछ किसी ने कह दिया वैसा मान लिया। दूसरी बार किसी ने अन्यथा समझाया तो बस वैसा ही कर लिया। इस प्रकार चंचलमति का परिणाम पेशवा माधवराव को सहन करना पड़ा।

१७६८ में नासिक के समीप धोडप किले के पास लड़ाई हुई इस लड़ाई में माधवराव ने रघुनाथराव को कैद कर पूने में शनिवार वाड़े में अच्छा प्रबंध करके रक्खा। यह कैद सिर्फ बाहर की राजनीति से रघुनाथराव को अलग रखने के लिए थी। इस प्रकार रघुनाथराव को ठीक ठिकाने बैठाकर माधवराव राज कार्य निर्विघ्न चलाने लगा। कैद में भी रहकर अनेक प्रकार की कार्रवाइयाँ करने में रघुनाथराव ने कमी न की।

(३) बादशाही की दिल्ली मे स्थापना—आगे के चार वर्षों में माधवराव का उद्योग निर्विघ्न रूप में बड़ी शीघ्रता से सफल होने लगा। नागपुर के भोंसले बहुधा मराठा-शक्ति के उद्योग में सम्मिलित न होकर अपनी स्वतंत्रता जताते थे और मराठों के शत्रुओं से मिलकर हानि पहुँचाते थे। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए माधवराव ने नागपुर पर आक्रमण करके जानोजी भोंसले का अहंकार ढीला किया और कनकापुर में उसके साथ सधि कर आगे के उद्योग का मार्ग निश्चित किया। यह सधि माधवराव की कार्य कुशलता का द्योतक है। भोंसले पर गई हुई फौजें वहाँ से सीधा उत्तर-भारत की ओर चली गईं। इन फ़ोजों के साथ माधवराव ने चार मुख्य सरदार भेजे थे। इनके नाम महादजी सिंधिया, तुकोजी होल्कर, रामचन्द्र गणेश कानडे, और विसाजी कृष्ण बिनीवाले थे। इन सरदारों को आदेश दिया गया था कि वे उत्तर-भारत में मराठों का शासन पूर्णरूप से स्थिर करके बादशाह शाहआलम को लाकर दिल्ली की मसनद पर फिर बैठा दें और उससे पूर्व की प्रतिज्ञाएँ पूरी कराई जायँ। बड़ी मेहनत और ३ वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद



नाना फड़नवीस



महादा जी सेंधिया

इन सरदारों ने सब काम यथावत् सफल किये। सन् १७७१ के अन्त में बादशाह को दिल्ली लाकर सिंहासन पर बैठा दिया और इस प्रकार पानीपत से पहले अधूरा रहा हुआ काम पूरा करने से देश भर में माधवराव का यश फैल गया। नजीबखाँ इत्यादि विद्रोही रुहेलों को परास्त कर उनके द्वारा की गई हानि का पूरा पूरा प्रतिशोध लिया गया। दत्ताजी सिंधिया के वध का प्रतिशोध लेने पर महादजी सिंधिया को पूरा पूरा सतोष हुआ। इसी से महादजी का नाम महाराष्ट्र-इतिहास में इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इसके अतिरिक्त माधवराव ने अपनी छोटी उमर में ही हैदर को परास्त किया। उसने निजाम के साथ मेल किया। नागपुर के भोंसलों को महाराष्ट्रों के उद्योग में सम्मिलित किया। ऐसी रीति से प्रारम्भ से चलाये गये हिन्दू पद पातशाही के उद्देश में उसने सर्वांगीण सफलता प्राप्त की। इस कार्य को करने के लिए माधवराव के समय में अनेक नवीन कार्य-कर्त्ता तैयार हुए। उस समय के कार्यकर्त्ताओं में सखाराम बापू, मोरोबा दादा, नानाफडनवीस, गोविंद शिवराम खासगी-वाले, मानाजी फाकडे, सखाराम हरि गुप्ते, महादजी बल्लाल, गुरूजी गोपालराव पटवर्धन, चिंतो विट्ठल, गगाधर यशवत विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हीं लोगों के कारण पानीपत में मारे गये नेताओं का अभाव लोगों को नहीं खला। माधवराव के उद्योग का यह परिणाम था।

(४) माधवराव की अकाल-मृत्यु—माधवराव का शरीर दुर्बल था ही, इसलिये दस-बारह वर्षों की कड़ी मेहनत का भार पड़ने

से उसे क्षय रोग ने घर पकड़ा। धीरे धीरे यह व्याधि प्रबल होती गई और २८ वर्ष की अल्पावस्था में थेंडर ग्राम में १८ नवम्बर सन् १७७२ को उसकी मृत्यु हो गई। उस समय उसकी स्त्री रमाबाई उसके साथ सती हो गई। उसकी माँ गोपिकाबाई पहले से ही नासिक के समीप गङ्गापुर में तीर्थवास करती थी, उसने फिर कभी पूना नहीं देखा। माधवराव के कोई लड़का न था। नारायणराव उसका छोटा भाई सत्रह वर्ष का था। माधवराव ने पेशवाई वस्त्र नारायणराव को देने और सखाराम बापू व नाना-नवीस को राज्य भार सँभालने का निर्णय मरने के समय किया था। शौर्य, न्याय, निष्पक्षपात, चतुरता तथा शासन-सुप्रबन्ध की दृष्टि से माधवराव अपने कुल में एक ही जन्मा था। उसके न्यायाधीश रामशास्त्री प्रभुणे की कीर्त्ति महाराष्ट्र में आज भी गाई जाती है। वास्तव में माधवराव के चल बसने से महाराष्ट्र की भारी हानि हुई। इतनी बड़ी हानि पानीपत के संहार से भी न हुई थी। माधवराव की मृत्यु होते ही महाराष्ट्र के अध पतन का समय प्रारम्भ हुआ।

(५) **मुरारराव घोरपडे**—शिवाजी के पहले उद्योग से ही जिन मराठे घरानों ने कितने ही शताब्दियों तक बराबर मेहनत की थी, उनमें घोरपड़े का घराना मुख्य है। औरङ्गज़ेब को वश में करने वाला सन्ताजी घोरपड़े का वध होने पर उसका भाई बहीरजी आगे आया। इस बहीरजी के नाती मुरारराव का चरित अनेक कारणों से बड़ा विचित्र है। उसका जन्म सन् १७०४ में हुआ और उसकी मृत्यु हैदरअली के श्रीरङ्गपट्टन के समीप कपालदुर्ग क़िले में सन १७७६ में हुई। इसके इतने लम्बे जीवन में जितने अनुभव और पराक्रम देखे जाते हैं उतने अन्य किसी

क जीवन में नहीं देखे गये। कृष्णा के दक्षिण पूर्व का कर्नाटक-प्रदेश शिवाजी ने जीत लिया था। वहाँ गुत्ती की जागीर वंश-परम्परानुसार मुरारराव को मिली। कर्नाटक पर शाहू का आक्रमण होते ही उसमें मुरारराव सम्मिलित हुआ। मराठी फौजों द्वारा देश के जीते जाने पर उस प्रदेश का उत्तरदायित्व मुरारराव पर आ गया सन् १७४० में त्रिचनापली जीतकर चन्दा साहब को पकड़कर उसने उसे सतारा में ८ वर्ष तक कैद रक्खा। उस समय त्रिचनापली पर मुरारराव का अधिकार रहा। इसी बीच में अँग्रेजों और फ्रेंचों के परस्पर झगड़े शुरू हुए। उस समय उस झगडे में मुरारराव की सहायता वहाँ के सत्ताधीश चाहते थे। अर्काट के घेरे के समय मुरारराव ने मुहम्मदअली को सहायता दी। इसके बाद नाना साहब और माधवराव के धावे हुए। इन धावों में मुरारराव का पराक्रम ख़ूब चमका। नारायणराव का वध हो जाने के बाद कर्नाटक में मराठों का प्रभाव घट गया और हैदरअली ने कर्नाटक में प्रलय करना प्रारम्भ किया। उसने गुत्ती पर अधिकार करके मुरारराव को हथकड़ी-बेड़ी डाल कैद में रक्खा। वहीं उसका हृदय-द्रावक अन्त हुआ।

ग्यारहवाँ अध्याय

नारायणराव और सवाई माधवराव

सन् १७७२-१७९५

१—नारायणराव का वध २—अंग्रेज-मराठों का पहला यु
३—महादजी द्वारा बादशाही का प्रबंध ४—खड़ी की लड़ाई
५—कर्ता पुरुष की मृत्यु

(१) नारायणराव का वध और राज्य का ह्रास—
रघुनाथराव की यह इच्छा न थी कि वह स्वयं राज्य का शास
करे। किन्तु माधवराव के जीते जी उसकी यह इच्छा फलवती
हो पाई। माधवराव ने उसका क़र्ज़ चुका कर उसका वेतन बाँध
दिया था। इस प्रकार रह कर वह राज्य का उद्योग करता तो उसे
किसी बात की कमी न थी। लेकिन भाई-बन्धुओं द्वारा आपस
झगड़ा खड़ा कर उसने राज्य की हानि की। वास्तव में पेशवा
लोग छत्रपति के नोकर थे, लेकिन छत्रपतियों में दम न रहने से
राज्य का भार पेशवाओं पर आ पड़ा। यद्यपि पेशवे भी अयोग्य
हो गये, तो भी उनसे राज्याधिकार लेकर राज्य की दूसरी व्यवस्थ
करने का उपाय न हो सका। नाना साहब का सब से छोट
लड़का नारायणराव ही केवल इस समय जीवित था। उसने
सतारा जाकर पेशवाई के वस्त्र प्राप्त किये। स्वभाव का हठी होने

से अपनी बातों-द्वारा लोगों पर प्रभाव डाल कर शासन करने की योग्यता उसमें न थी। माधवराव के तेजस्वीपन का ही उसने अनुसरण किया। इससे अनेक लोग उससे नाराज या उदासीन हो गये। मार्च मास में वह अपनी माता से भेंट करने के लिए गंगापुर गया। उसकी अनुपस्थिति में रघुनाथराव हैदरअली से षड्यंत्र रचने लगा। उसका समाचार पाते ही नारायणराव तुरन्त वापस आया, और उसने अपने चाचा पर कड़ा पहरा बैठा दिया। इससे उसकी पूजा इत्यादि के नित्य नैमित्तिक कार्यों में अड़चन पड़ने लगी। रघुनाथराव नियमित जीवन व्यतीत करनेवाला था। उसका नित्य-कर्म समय पर न होने से उसने भोजन त्याग दिया। इससे उसकी स्त्री भी उपवास करने लगी। सखाराम बापू इत्यादि कार्यकर्ताओं ने नारायणराव को बड़ी नम्रता के साथ समझाया, लेकिन उसने किसी की एक न सुनी। ऐसी स्थिति में ही बाहर के राज्य-सम्बन्धी काम की भी भरमार हुई। उस समय रघुनाथराव और उसकी स्त्री ने अनेक लोगों से विचार कर स्वय कैद से निकल भागने और नारायणराव को कैद करने का षड्यन्त्र रचा। पेशवा के बाड़े में गारदी अर्थात् कवायद सीखे हुए पहरे पर रहनेवाले सिपाहियों के सरदार सुमेरसिंह और मुहम्मद यूसफ को अपनी ओर मिला कर रघुनाथराव ने उन्हें लिख कर हुक्म दिया कि नारायणराव को गिरफ्तार कर लो। ३० अगस्त सन् १७७३ को नारायणराव दोपहर के समय आराम कर रहा था। हजार पाँच सौ गारदी अपने वेतन का तगाजा करने के लिए पेशवा के बाड़े में घुस पड़े और उन्होंने नारायणराव को पकड़ कर तलवार से काट डाला। इस झगड़े में पेशवा के नौकर

भी जो उसे बचाने आये थे, मारे गये। इसके अतिरिक्त ७-८ मनुष्यों का और भी ख़ून हुआ। शिव छत्रपति के गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन के व्रत को चरितार्थ करनेवाले पेशवा के वाड़े में ही यह नर-हत्या देख कर विचारवानों की यह धारणा हो गई कि महाराष्ट्रों के अस्त का समय आ पहुँचा। इसके बाद रघुनाथराव ने पेशवाई के वस्त्र लाकर दो तीन मास राज्य का प्रवन्ध किया। इसी अवधि में रामशास्त्री ने वारकों में अनुसन्धान करके यह निश्चय किया कि यह दुष्कृत्य स्वयं रघुनाथराव ने करवाया है। यह ख़बर फैलते ही लोगों में रघुनाथराव के प्रति कोपाग्नि भड़क उठी। उसने अवश्य ही पेशवाई के वस्त्र धारण किये थे। किन्तु स्त्री-हत्या, ब्रह्म-हत्या व गो-हत्या के कारण उसे पेशवा के अधिकार से च्युत करने के लिए सखाराम बापू ने बाहर की लड़ाइयों से लौट कर सारी कार्रवाई का पता युक्ति से लगा लिया, और गर्भवती गङ्गाबाई को पुरन्दर ले जाकर जनवरी सन् १७७४ से उसके नाम पर राज्य का प्रवन्ध करना शुरू किया। उसी समय से ख़ूनी अपराधियों को खोज खोज कर दण्ड दिया जाना शुरू किया गया। यह कार्य लगभग दस वर्ष तक चला। एक वर्ष के बाद सुमेरसिंह बीमार पड़ कर मर गया। महम्मद यूसुफ तथा रघुनाथराव के दरबार में रहनेवाले अन्य अनेक अपराधियों को कठिन दण्ड दिया गया।

पेशवा के यहाँ ऐसा गड़बड़ सुन निजाम हैदरअली इत्यादि की मंडली को बड़ा आनन्द हुआ। इनको परास्त करने के लिए रघुनाथराव दक्षिण की ओर गया। उसके साथ सखाराम बापू इत्यादि कारबारी और हरिपंत फड़के व त्रिंबकराव पेठे भी गये। मौक़ा पाकर इन लोगों ने राघोबा पर शस्त्र उठाया। २६-३ १७७४ के दिन पढरपुर के पास लड़ाई हुई। इसमें त्रिंबकराव

मारा गया, लेकिन हरिपन्त ने राघोबा का पीछा किया। रघुना
राव भागता हुआ मालवा पहुँचा, लेकिन वहाँ सिन्धिया
होलकर ने उसे कुछ भी सहायता न दी। वहाँ से वह गुजरा
पहुँचा। वहाँ सिन्धिया, होल्कर और फड़के राघोबा का पी
करते हुए पहुँचे। तब राघोबा ने सूरत पहुँच कर पेशवाई पाने
इच्छा से अँगरेजों की सहायता माँगी।

इधर पुरन्दर में १८ ४ १७७४ के दिन गङ्गाबाई की को
से लड़का उत्पन्न हुआ। इसका नाम सवाई माधवराव रख
कार्य कर्त्ताओं की मण्डली ने उसके नाम से चालीसवें दि
पेशवाई के वस्त्र सतारा के रामराजा से लाकर राज्य का क
भार चलाना शुरू किया। राघोबा ने आनन्दीबाई को धार
छोड़ दिया था। वहाँ ७-१ १७७५ के दिन उसकी कोख से
बालक उत्पन्न हुआ उसका नाम सवाई बाजीराव पड़ा। रामरा
की मृत्यु १७७७ में हुई और उसका दत्तक पुत्र द्वितीय शा
गद्दी पर बैठा। राघोबा ने अंग्रेजों की सहायता माँग कर मरा
और अंग्रेजों के युद्ध का प्रारम्भ किया। यह युद्ध "अंग्रेज़ों अ
मराठों का पहला युद्ध" के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

(२) प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध—(१७७५-८२)—बंगा
और मद्रास के प्रान्तों को जीत लेने के बाद अंग्रेज़ों की सत्ता भा
के पूर्वी किनारे पर स्थापित होते ही उनका ध्यान पश्चिमी किन
की ओर गया। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को देख और उसे अप
बाधक समझ कर अंग्रेजों ने सन् १७७२ में मास्टिन को पूना में अप
राजदूत के रूप में नियत किया। नारायणराव के मारे जाने
लाभ उठाते हुए उन्होंने राघोबा को अपनी ओर मिला लिय
इस मामले में आगे चल कर वारेन हेस्टिंग्ज का सम्बन्ध हुआ

यह अंग्रेज़ सन् १७७४ में गवर्नर जनरल बना और अनेक प्रकार के उपाय कर इसने भारत में अंग्रेजों की शक्ति जमाने और देश को उनके शासन में लाने का प्रयत्न किया। इसका जन्म सन् १७३२ में हुआ था और अठारह वर्ष की अवस्था में यह भारत में आया था। क्लर्की का काम करते हुए इसकी पद वृद्धि हुई। इससे इसको भारत की अच्छी जानकारी थी। कौंसिल की सलाह से न चलने में इसे अनेक अड़चनों और झगड़ो का सामना करना पड़ा। परन्तु शान्त-चित्त रह कर धैर्य के साथ कठिनाइयाँ सहकर इसने अंग्रेजी शक्ति को बहुत लाभ पहुँचाया। इसने कई अन्याय के भी काम किये थे, इसलिए बाद को इङ्गलेंड की पार्लमेंट में इस पर मुक़दमा भी चला। इस युद्ध में हेस्टिंग्ज़ के सम्बन्ध को ध्यान में रखना चाहिए।

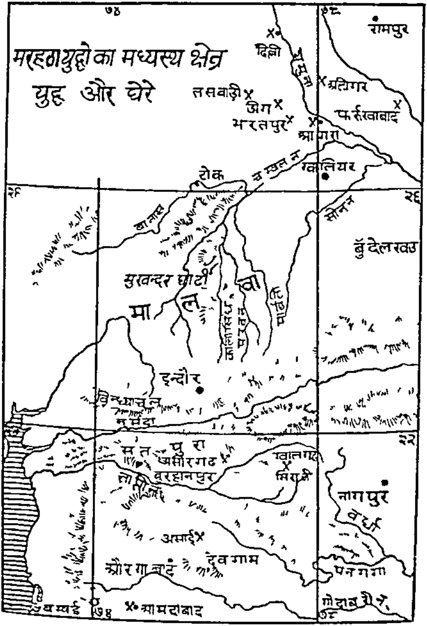
राघोवा अंग्रेजों की सहायता माँगने के लिए सूरत पहुँचा। वहाँ बम्बई के अंग्रेज़ों के साथ सन् १७७५ में उसकी संधि हुई। इस संधि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि—(१) अंग्रेज़ लोग ३००० फौज लेकर राघोवा की सहायता करे। (२) इस फौज के खर्च के लिए १॥ लाख रुपये प्रति मास राघोवा देगा। (३) साष्टी, वसई इत्यादि बम्बई के पास के थाने और भड़ोंच व सूरत के परगने मिला कर ११ लाख की जायदाद राघोवा अंगरेजों को दे। इस संधि के अनुसार अंग्रेज़ों ने कर्नल कीटिङ्ग को फौज देकर राघोवा के साथ कर दिया। गुजरात में अरास नामक स्थान में सन् १७७५ में हरिपंत फड़के ने इस फौज का सामना किया, लेकिन हार कर वह पूना वापस आ गया। बरसात शुरू हो जाने के कारण राघोबा और अंगरेजी फौजें गुजरात में ही रहीं। बम्बई के अंगरेजों-द्वारा की गई राघोवा के साथ उपर्युक्त संधि

को कलकत्ता कौंसिल और गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज ने नापसन्द करके पूना-दरबार के साथ दूसरी संधि करने के लिए कर्नल अप्टन को भेजा, और बम्बईवालों को मराठों के साथ प्रारम्भ किया हुआ युद्ध बंद करने की आज्ञा दी। कर्नल अप्टन ने पूना-दरबार के साथ १-३ १७७६ के दिन पुरंदर में संधि करके निश्चय किया कि (१) सूरत की संधि रद्द समझी जाय, (२) राघोवा की सहायता अंगरेज लोग न करें, (३) प्रतिमास २५,००० रुपया लेकर वे चुप बैठ जायें, (४) पूना दरबार साष्टी इत्यादि के थाने और ख़र्च के १२ लाख रुपये दे।

वारेन हेस्टिंग्ज के इस कृत्य को नापसंद कर बम्बईवालों ने राघोबा को आश्रय दिया। हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते से जनरल गडार्ड को फौज देकर राघोबा की सहायता के लिए गुजरात भेजा और इधर बम्बई की फौज राघोबा को लेकर सन् १७७८ के अंत में खंडाला घाट पर चढ़ने लगी। कार्ला में एक छोटी सी लड़ाई हुई। इसमें कर्नल स्टुआर्ट मारा गया। इस लड़ाई में अंगरेजों की हार हो जाने से वे वडगाँव में ठहर गये, इस स्थान में महादजी सिंधिया की मध्यस्थता में अंग्रेजों और मराठों में संधि होकर यह निश्चय ठहरा कि (१) राघोबा सिंधिया के सुपुर्द किया जाय, (२) अंग्रेजों द्वारा जीते हुए मराठों के सभी स्थान उन्हें वापस दिये जायें, और (३) मराठे अंग्रेजों को कुशलपूर्वक अपने स्थान को लौट जाने दें। इस संधि के अनुसार राघोबा को सिंधिया के हवाले कर अंगरेजी फौज बम्बई वापस गई। इधर राघोबा नर्मदा के पास पहुँच कर फिर सूरत भाग गया। उसको जनरल गडार्ड ने सहायता दी। फतहसिंह गायकवाड़ भी उनसे मिल गया। इन तीनों ने मिल कर गुजरात प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया (सन् १७८०)।

विरुद्ध उठ खड़े हुए थे उनका भी ठीक ठीक प्रवन्ध किया इसके लिए महादजी ने फ्रेंच लोगों को नौकर रख उनसे अपने सिपाहियों को पाश्चात्य युद्ध-शिक्षा दिलाई और बादशाह से कह कर उसने "वज़ीरी" का पद पेशवा के नाम लिखा कर स्वयं पेशवा का नायब बना।

यद्यपि दिखावे के लिए भिन्न भिन्न सरदार और अधिकारी दिल्ली में महादजी के अनुकूल हो गये थे, तथापि गुप्त रूप से वे महादजी के सर्वथा विरुद्ध थे। राजपूत और मुसलमान दोनों एकत्र होकर महादजी के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे, क्योंकि मराठों का शासन राजपूतों को नहीं पसन्द था। और मुसलमान इस लिए रूठे हुए थे कि उनकी जागीरें महादजी ने ज़ब्त कर ली थीं। किन्तु दो-चार लड़ाइयों में ही महादजी ने उनको परास्त कर दिया। इस मामले में महादजी के साथ अवाजी इंगले, लखवा दादा बक्षी, राणेखान, खंडेराव हरि, तुकोजी होलकर और अली बहादुर इत्यादि ने अच्छा पराक्रम दिखाया। इनकी सहायता से महादजी ने दिल्ली में अपना प्रवन्ध सफलता पूर्वक किया। राजपूतों को जीत कर अजमेर, पुष्कर इत्यादि स्थान महादजी ने अपने अधिकार में किये। यह सब कार्य कर वह सन् १७९२ की गरमी की ऋतु में पूना आया। विजय प्राप्त कर पूना आने में उसकी बड़ी बड़ाई हुई। पूना में एक बड़ा दरबार करके बादशाह से प्राप्त हुए ख़िताब और ख़िलअत इत्यादि उसने पेशवा को अर्पित की। परन्तु कुछ दिनों बाद नाना और महादजी के बीच राज काज के मामले में तना तनी हो गई। लेकिन हरिपंत फड़के ने इन दोनों में फिर मेल करा दिया। इसके बाद महाराष्ट्रों के दुर्दैव से महादजी सिंधिया बहुत दिनों तक जीवित न रहा। १२-२-१७९४ के दिन नव-ज्वर से पीडित होकर वानवड़ी नामक स्थान में उसका देहान्त



मरहठायुद्धों का मध्यस्थ क्षेत्र
युद्ध और घेरे
दिल्ली
रामपुर
भरतपुर
आगरा
फर्रुखाबाद
ग्वालियर
बुंदेलखण्ड
मा
ल
वा
इन्दौर
नर्मदा
असीरगढ
बुरहानपुर
नागपुर
वर्धा
देवगाम

हो गया। मरने के समय उसकी अवस्था ६७ वर्ष की थी। महाराष्ट्र-शक्ति के निर्माताओं में महादजी का भी नाम गिना जाता है। वह स्वभाव से शांत और धैर्यवान् था। चाहे जैसी बात बना कर दूसरे के चित्त की छिपी बात निकाल लेने में वह बड़ा प्रवीण था। लेकिन अपने चित्त का आशय कभी किसी पर नहीं प्रकट होने देता था। विपत्ति के समय उसकी शान्ति में जरा भी फर्क न पड़ता था। लेकिन हिसाब किताब और कारकुनी के काम में बिलकुल कोरा था। नाना फडनवीस का स्वभाव इसके विपरीत था, अर्थात् कड़े बर्तावबाला, कभी किसी तरह की रियायत न करनेवाला, संकट में घबरा कर बावला सा बन जानेवाला, और हिसाब किताब में अत्यंत पटु था। नाना काम काज में पूरा अभ्यस्त होने से सभी बारीक से बारीक बातें याद रखता और उनका निरीक्षण स्वयं करता था। महादजी धीमी चाल चलनेवाला, ढीला और दीर्घसूत्री था। दोनों एक दूसरे से सहमत होते तभी राज का कारबार अच्छा चल पाता। एक दूसरे के बिना दोनों लंगड़े हो जाते। "बार भाई" की सभा में प्रधान मंडली के अधिक मतानुसार शासन कार्य करने की उत्कृष्ट व्यवस्था हो गई थी। उसे नष्ट करके नाना फडनवीस ने अकेले ही अपने हाथों में शासन का सब काम रक्खा। इसके अभाव में सब चतुरों की मंडली का उसने एक मंडल बना कर शासन भार की व्यवस्था स्थिर की, तथापि महाराष्ट्र शक्ति इतनी जल्दी अग्रसर न हो पाती थी। महादजी का दूसरा नाम "पाटील बुवा" भी था। उसके कोई संतान भी न थी। इसलिए दौलतराव को उसने गोद लिया। लेकिन यह महादजी के समान पराक्रमी और कर्त्तव्यशील न था।

(४) खर्डी की लड़ाई (सन् १७९५)—निजाम और

मराठों में परस्पर बहुत दिनों तक शान्ति रही। इधर मराठों की शक्ति को एक दम बढ़ती देख निजाम के चित्त में विकार पैदा हुआ। वह मराठों को चौथ और सरदेशमुखी देता था। लेकिन इधर बहुत दिनों से उसने मराठों को उपर्युक्त कर नहीं दिया था। यह बहुत दिनों का चढ़ा हुआ कर जब उससे मराठों ने माँगा तब देने की बात अलग रही, उसके दीवान मशीरुल्मुल्क ने पेशवा पर कटाक्ष किया। निजाम को अंग्रेज़ों का आश्रय था। इसलिए वह यह सोचता था कि अंग्रेजी सहायता से वह मराठों को परास्त कर देगा। इसलिए उसने युद्ध की तैयारी की। इधर नाना फड़नवीस ने भी सब मराठे सरदारों को एकत्र करके निज़ाम के गर्व को खर्व करने का निश्चय किया। इसी बीच में अनुभवी सेनापति हरिपंत फड़के का देहान्त हो गया (१९६-१७९४)। अब परशुराम भाऊ पटवर्धन को नाना ने निजाम पर धावा मारने वाली फौज का सेनापति बनाया। कुल फौज एक लाख तीस हजार इकट्ठी हुई। इसके साथ सवाई माधवराव पेशवा और नाना फड़नवीस भी थे। उधर से निज़ाम भी चलकर खर्डी के पास छावनी डालकर जम गया। उसे आशा थी कि अंग्रेज लोग उसकी सहायता करेंगे। लेकिन अंग्रेज़ों ने सहायता न की। ११ मार्च सन् १७९५ को बड़ी घमासान लड़ाई हुई। इसमें निज़ाम की पूरी हार हुई। लड़ाई को छेड़नेवाला मशीरुल्मुल्क पेशवा के अधिकार में किया गया। निजाम ने पिछली बाकी व लड़ाई का ख़र्च चुका दिया। इसके साथ साथ निजाम ने अपनी सरहद का २७ लाख का राज्य मराठों को दिया। इसमें दौलताबाद का किला भी मिला। मराठे सरदारों का एकमत होकर राष्ट्र का कार्य करने का यह अन्तिम मौका था।

(५) सवाई माधवराव व अन्य कार्यकर्त्ताओं की

मृत्यु—इस प्रकार यद्यपि बाहर से महाराष्ट्र-राज्य का प्रबन्ध सब ठीक था और वह शक्ति सम्पन्न दिखाई देता था, तथापि उसकी भीतरी दशा ख़राब हो चली थी। धीरे धीरे अंग्रेजी सत्ता की वृद्धि हो रही थी। बड़ी सावधानी से पुष्ट किया गया सवाई माधवराव बड़ा ही दुर्वृत्त पुरुष निकला। राघोबा का पुत्र बाजीराव शिवनेरी किले में कैद था। वहाँ बैठे बैठे गुप्त रीति से उसने सवाई माधवराव के साथ कार्रवाई करनी शुरू की। यह बात नाना फड़नवीस को भी विदित हो गई। अत उसने बाजीराव की कैद और भी सख्त कर दी, सवाई माधवराव पर भी दृष्टि रखनी शुरू की। सन् १७९५ के वर्षाकाल में वह ज्वर से पीड़ित हुआ और उससे वह दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। अक्टोबर मास में दशहरा के दिन ज्वर का प्रकोप अधिक हुआ। द्वादशी के दिन वह ऊपर के छज्जे पर बैठा था। अचानक उठने के कारण उसे चक्कर आया और वह नीचे फर्श पर आ गिरा। इस चोट से विह्वल होकर पूर्णिमा के दिन (२१-१० १७९५) उसकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना के दो ही-चार वर्षों के अनन्तर रामशास्त्री, हरिपंत फड़के, अहिल्याबाई, महादजी सिंधिया, तुकोजी होल्कर इत्यादि महाराष्ट्र के समुन्नत कार्यकर्त्ताओं की भी मृत्यु हो गई। आगे चलकर परशुराम पंत और नाना फड़नवीस के चल बसते ही मराठों के स्वातन्त्र्य का अंत हो गया।

ऊपर अहिल्याबाई की चर्चा की जा चुकी है। भारत के शासकों और पराक्रमशालिनी स्त्रियों में अहिल्याबाई की गिनती होती है। वह मल्हारराव होल्कर की पुत्रवधू और खंडेराव होल्कर की पत्नी थी। एक लड़का होने पर पति की मृत्यु हुई। बाद को ससुर की भी मृत्यु २० ५ १७६६ को हो गई। मल्हारराव की



राघोबा



अहिल्याबाई

मृत्यु—इस प्रकार यद्यपि बाहर से महाराष्ट्र-राज्य का प्रबन्ध सब ठीक था और वह शक्ति सम्पन्न दिखाई देता था, तथापि उसकी भीतरी दशा ख़राब हो चली थी। धीरे धीरे अंग्रेजी सत्ता की वृद्धि हो रही थी। बड़ी सावधानी से पुष्ट किया गया सवाई माधवराव बड़ा ही दुर्वृत्त पुरुष निकला। राघोबा का पुत्र बाजीराव शिवनेरी किले में कैद था। वहाँ बैठे बैठे गुप्त रीति से उसने सवाई माधवराव के साथ कार्रवाई करनी शुरू की। यह बात नाना फड़नवीस को भी विदित हो गई। अतः उसने बाजीराव की कैद और भी सख्त कर दी, सवाई माधवराव पर भी दृष्टि रखनी शुरू की। सन् १७९५ के वर्षाकाल में वह ज्वर से पीड़ित हुआ और उससे वह दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। अक्टोबर मास में दशहरा के दिन ज्वर का प्रकोप अधिक हुआ। द्वादशी के दिन वह ऊपर के छज्जे पर बैठा था। अचानक उठने के कारण उसे चक्कर आया और वह नीचे फर्श पर आ गिरा। इस चोट से विह्वल होकर पूर्णिमा के दिन (२१.१०.१७९५) उसकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना के दो ही-चार वर्षों के अनन्तर रामशास्त्री, हरिपंत फड़के, अहिल्याबाई, महादजी सिंधिया, तुकोजी होल्कर इत्यादि महाराष्ट्र के समुन्नत कार्यकर्त्ताओं की भी मृत्यु हो गई। आगे चलकर परशुराम पंत और नाना फड़नवीस के चल बसते ही मराठों के स्वातन्त्र्य का अंत हो गया।

ऊपर अहिल्याबाई की चर्चा की जा चुकी है। भारत के शासकों और पराक्रमशालिनी स्त्रियों में अहिल्याबाई की गिनती होती है। वह मल्हारराव होल्कर की पुत्रवधू और खंडेराव होल्कर की पत्नी थी। एक लड़का होने पर पति की मृत्यु हुई। बाद को ससुर की भी मृत्यु २०.५.१७६६ को हो गई। मल्हारराव की

योग्यता अत्यधिक थी। पहला बाजीराव ही "गुरीला" लड़ाइयों का निर्माता था। अपना स्वार्थ साधकर राज्य का कल्याण यदि सधे तो वह राज्य का कार्य करता था। वह केवल लड़ने में ही प्रवीण न था, बल्कि उसमें विचारशक्ति, दूरदर्शिता और सावधानी के साथ कार्य करने के भी विशेष गुण थे। उसके मरने के बाद अहिल्याबाई ने ३० वर्ष तक होलकर-राज्य का शासन किया, और लौकिक हित के अनेक काम भी उसने किये। वह अत्यन्त धर्मनिष्ठ थी। उसके मंदिर, घाट, धर्मशाला, अन्नसत्र इत्यादि परोपकार के काम भारत में आज भी मौजूद हैं। यदि वह पुरुष होती तो महादजी सिंधिया की अपेक्षा उसका महत्त्व कम न होता। उसके ऊपर जो अनेक कष्ट आये उन्हें उसने धैर्यपूर्वक झेल लिया।

बारहवाँ अध्याय

छत्रपति द्वितीय शाहू पेशवा द्वितीय बाजीराव

सन् १७९६-१८०८

१—पेशवा द्वितीय बाजीराव
२—नाना फड़नवीस की मृत्यु
३—सैनाती फौज
४—मराठों के साथ दूसरा युद्ध
५—होल्कर-युद्ध

(१) पेशवा द्वितीय बाजीराव (सन् १७९६)—सवाई माधवराव की मृत्यु के बाद पेशवा का पद किसको दिया जाय, इस प्रश्न पर बड़ी उखाड़ पछाड़ के बाद नाना परशुराम भाऊ और दौलतराव सिन्धिया इत्यादि ने मिलकर बाजीराव को पेशवाई की गद्दी पर बैठाया। वह विपत्तिदशा प्राप्त होने से राज्य का भार सँभालने में बिल्कुल असमर्थ था। भोग विलास में वह मस्त रहता था। स्वभाव से अविश्वासी और चंचल होने के कारण उसने राज-काज के सम्बन्ध में किसी से परामर्श न लेकर हर काम में केवल असफलता ही प्राप्त की। इसकी अपेक्षा दौलतराव का प्रभाव अच्छा था। लेकिन राज्य का कल्याण किस में है, यह जानने की शक्ति उसमें भी न थी। सिन्धिया के पास जो फौज थी उसी के बल पर उसने बाजीराव को अपने हाथ की

कठपुतली बना लिया। बाजीराव के चित्त में नाना फड़नवीस के विरुद्ध विद्वेषाग्नि भभकती रहने के कारण उसने नाना को कैद कर लेने के लिए सिन्धिया को प्रेरित किया। इस काम के लिए बाजीराव ने दो करोड़ रुपये देने का वचन सिन्धिया को दिया। इस शर्त के अनुसार सिन्धिया ने नाना फड़नवीस को कैद कर लिया और बाजीराव से उसके वचनानुसार दो करोड़ रुपये माँगे। पैसा पास न होने से उसने सिन्धिया से पूना शहर लूट कर दो करोड़ रुपये वसूल करने को कहा। अतः सिन्धिया ने नगर के सेठ साहूकारों के घर लूटकर अपना रुपया वसूल किया। लोगों का संरक्षण न कर धनियों को लूटना इत्यादि निंद्य कर्मों के विषय में आगे वर्णन किया जायगा। इसके बाद अधिक गड़बड़ फैलने पर नाना का छुटकारा हुआ और सिन्धिया वहाँ से भाग खड़ा हुआ (सन् १७९९)।

(२) नाना फडनवीस की मृत्यु—इस घटना के बाद सिन्धिया और बाजीराव में परस्पर अनबन हो गई। अतः सिन्धिया ने नाना को कैद से छोड़ दिया। यद्यपि बाजीराव ने उसे फिर राज-काज का काम पूर्ववत् सौंप दिया, तथापि वह नाना के साथ अविश्वास और कपट का ही व्यवहार करता। नाना यह सोचा करता था कि बाजीराव स्वयं अकेले राज्य-कार्य चला सकता है, किन्तु उसका यह अनुमान गलत निकला। अतः जितना उससे हो सका उसने उद्योग कर राज्य के बचाव करने का कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य किया। अन्त में १३ मार्च सन् १८०० को उसकी मृत्यु हुई। लड़कपन से ही नाना ने शासन की उन्नति और अवनति देखी थी। उसका प्रबन्ध और देख-भाल बड़े मार्के की होती थी। वह नियम से रहता और मेहनत करता था। उसकी

स्मरण-शक्ति अपूर्व थी। वह बड़ा मेधावी था। चारों ओर की खबरों का पता रखना उसके हाथ की बात थी। परन्तु स्वयं शूर और दृढ़चित्त का सरदार न होने से उससे स्थिर व्यवस्था न हो सकी। विभिन्न राज्यों में अपने राजदूत भेजकर उनके द्वारा उनके दरबार में अपना प्रभाव जमाये रक्खा। उसके रहते विदेशियों का प्रवेश मराठों के राज्य में न हो सका। "नाना फड़नवीस की मृत्यु होने से मराठों के राज्य में चतुरता और नीति की इतिश्री होगई।" यह कथन अंग्रेज नीतिज्ञों का है। परशुराम भाऊ पटवर्धन १८-९-१७९९ के दिन मरा और राज्य में कार्यकर्त्ता पुरुष अब कोई न रह गया।

(३) तैनाती फौज—नाना फड़नवीस की मृत्यु के बाद उसके पक्ष के लोगों को दुःख देने का कार्य बाजीराव ने प्रारम्भ किया। इधर सिन्धिया और होल्कर की परस्पर अनबन हो गई। यशवंतराव होलकर के भाई विठोजी को बाजीराव ने हाथी के पाँव से कुचलवाकर मार डाला। इस कार्य से यशवंतराव को बड़ा दुःख हुआ और उसने पूना पर आक्रमण कर दिया। बाजीराव ने अपनी फौज उसके विरुद्ध भेजी और स्वयं भागकर सिंहगढ में जा ठहरा। होलकर ने पूना पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने बाजीराव को सिंहगढ से बसई लाकर उसे अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ अंग्रेजों से सन्धि कर पेशवाई वापस दिलाने के लिए बाजीराव ने अंग्रेजों से सहायता ली। पच्चीस वर्ष पहले रघुनाथराव की जो अवस्था हुई वही अवस्था कुछ कुछ बाजीराव की भी हुई। इन पच्चीस वर्षों में अंग्रेजी राज्य का फैलाव बहुत हो गया था और अंग्रेज़ों ने अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक निश्चय कर लिया था। इसलिए पहले

जिस प्रकार युद्ध में ध्येय बिगड़ गया, वैसा कहीं फिर न बिगड़े, इसकी सावधानी रखने का उन्होंने निश्चय किया।

पेशवा के दरबार में जैसी अव्यवस्था फैल रही थी, वैसी ही अव्यवस्था किसी न किसी अंश और रूप में सारे भारत के रजवाड़ों में फैल रही थी और बाजीराव के समान सहायता माँगनेवाले अनेक लोग अंग्रेज़ों के सामने खड़े रहते थे। अतः "हम तुमको सहायता के लिए फौजें देते हैं। उसके खर्च भर के लिए तुम अपने राज्य का कुछ अंश सदैव के लिए हमें दे दो। तुम अंग्रेजों की सार्वभौम सत्ता स्वीकार करो और तुम्हारे आपस के झगड़े खड़े होने पर एक दम लड़ाई इत्यादि न करके उसका निर्णय हम से लो, और जो निर्णय हम करें उसे तुम मानो।" इस प्रकार का अपना मतलब अंग्रेजों ने इस सन्धि द्वारा साध लिया। जिस राजा ने सहायता ली वह अंग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता के नीचे आ दबा। और यदि सहायता न ली तो दूसरा अन्य कोई उसका सहायक होने पर शत्रुओं द्वारा घेरा जा कर उसका नाश होना अवश्यम्भावी था ही। इस प्रकार भारत के रजवाड़ों में तैनाती फौज रखने की जो पद्धति अंग्रेज़ों ने निकाली वह **"तैनाती फौज की पद्धति"** (Subsidiary Alliance) के नाम से प्रसिद्ध है। बाजीराव ने अन्य कोई उपाय अपने ध्येय के साधन का न देख ऊपर की लिखी हुई शर्तें स्वीकार करके अंग्रेज़ों की फौज अपनी सहायता के लिए ले ली। इस पद्धति के निकालने और उसके योग से भारत के राज्यों पर अधिकार करने में नीतिनिपुण गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली, बम्बई के कर्नल क्लोज और मध्य-भारत के कर्नल माल्कम विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके बराबर का एक भी व्यक्ति इस समय महाराष्ट्र में न

था। भारतीय राज्यों पर अधिकार करने में अंग्रेजों को जो कुछ थोड़ी सी कठिनाई थी वह महाराष्ट्र के कारण थी। वह भी बाजी राव के ऊपर के कृत्य ने दूर कर दी। उसने २० लाख की आय का देश देकर ८ हजार अंग्रेजी फौज अपनी सहायता के लिए ली। इस फौज का सेनापति गवर्नर जनरल का भाई जनरल वेलेजली था। यही बाद को इङ्गलेण्ड जाकर ड्यूक आव वेलिंग्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाजीराव ने ३१ दिसम्बर सन् १८०२ को अंग्रेजों को प्रतिज्ञापत्र लिख कर दे दिया। इसको वसई की सन्धि कहते हैं। उसमें ये शर्तें थीं—(१) अंग्रेज अपनी दस हजार फौज बाजीराव के संरक्षण के लिए नियतरूप में रखेंगे, और उसके खर्च के लिए ३६ लाख का अपना राज्य बाजी राव अंग्रेजों को देगा। (२) अंग्रेजों के यूरोपीय शत्रुओं को बाजीराव अपने देश में आश्रय न देगा। (३) अन्य रजवाड़ों के साथ बाजीराव का झगड़ा होने पर अंग्रेज उसको निर्णय करेंगे। (४) अंग्रेजों की परवानगी लिए बिना वह कोई युद्ध अथवा कोई संधि किसी राज्य के साथ न करेगा। बस इस सन्धि ने महाराष्ट्र-शक्ति का अंत कर दिया।

यशवंतराव होलकर को बाजीराव का यह काम न पसन्द आया। यशवंतराव की इच्छा पेशवा के राज्य को अपने अधीन करने की न थी। बाजीराव अंग्रेजी फौज को लेकर पूना आ रहा है, यह खबर सुनते ही होलकर ने पूना छोड़कर अपने राज्य की राह ली। जाने से पूर्व पूना शहर को मनमाने ढङ्ग से लूट कर वह बहुत धन अपने साथ ले गया। अंग्रेजी फ़ौज ने पूना में प्रवेश कर बाजीराव को पेशवाई पर बैठाया। इस फौज की छावनी बाद को बहुत दिनों तक पूना के पूर्व घोड नदी के किनारे शिरूर में रही।

(४) अंग्रेज-मराठों का दूसरा युद्ध—बाजीराव ने अँग्रेज़ों से तैनाती फौज की संधि की, यह बात अन्य मराठे सरदारों को बिलकुल न रुची। वास्तव में छत्रपति की ओर से पेशवा सब राज्य का और उसकी शाखा का केवल कार्यकर्त्ता मात्र था। वह मालिक न था। इसलिए उसकी की हुई यह संधि अन्य लोगों को मान्य न हुई। गायकवाड़ ने चार मास पूर्व ऐसी संधि अंग्रेजों के साथ की थी। नागपुर के भोंसले इत्यादि कितने ही सरदार पहले से ही पेशवा का साथ न देते थे। अब सिंधिया और होलकर बाजीराव को विचलित देख उसकी संधि को उन्होंने नहीं स्वीकार किया। अंग्रेजों ने मराठे-सरदारों से कहा कि तुम्हारा सब का प्रधान पेशवा है। उसने हमारी इस सधि को स्वीकार कर ही लिया है, इसलिए तुम्हें भी अब इसे स्वीकार करना चाहिए और तुम्हें बाजीराव के या इतर राज्य में फौजें ले जाकर लड़ाई नहीं करना चाहिए। अपने राज्य में जाकर रहो। यह बात मराठे सरदारों को न रुची। उन्होंने कहा कि "हम पर हुकूमत करनेवाले तुम कौन हो?" लेकिन हुकूमत करनेवालों की शक्ति का पता उन्हें न था। अंग्रेजों ने मन में कहा कि जब तुम अपने अपने राज्य-सीमा से निकल कर आओगे तब तुमको दिखावेंगे कि यह हुक्म देनेवाला कौन है। ऐसा विचार कर अंग्रेजों ने मराठे सरदारों के साथ एक साथ युद्धघोषणा की।

इस युद्ध में दो लड़ाइयाँ हुई। एक बरार में, दूसरी उत्तर में। दिल्ली शहर और मुगल बादशाह सिंधिया के अधिकार में थे। अत' दिल्ली पर अधिकार किये बिना अंग्रेजों को भारत का स्वामित्व मिलनेवाला न था। सिंधिया को फ्रेंचों की सहायता मिलने से

फ्रेंचों को परास्त करने का ही अंग्रेजों का उद्देश था। उत्तर के युद्ध में जनरल लेक और दक्षिण के युद्ध में जनरल वेलेजली अंग्रेजी फौजों के मुख्य सेनापति थे। अगस्त सन् १८०३ में वेलेजली ने अहमदनगर के किले पर अधिकार कर लिया। इधर गुजरात में अंग्रेजी फौजों ने भड़ोच शहर ले लिया। सितम्बर मास में असाई स्थान में बड़ी घमासान लड़ाई होने के बाद वेलेजली ने सिंधिया को परास्त किया। अन्य फौजों ने असीरगढ़ व बुरहानपुर भी सिंधिया से ले लिये और बंगाल की फौजों ने भोंसले के कटक नगर पर अधिकार कर लिया। उत्तर में जनरल लेक ने अलीगढ और दिल्ली की सिंधिया की फौजो को हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अत वृद्ध मुगल बादशाह शाहआलम अंग्रेजों के अधीन हो गया। बाद को लासवाड़ी में फिर घमासान लड़ाई हुई और सिंधिया की फौजों पर लेक को विजय मिली। इधर बरार में अरगाँव में सिंधिया, और भोंसले की सम्मिलित फौजों को वेलेजली ने फिर हराया। पूरे चार महीने की लड़ाई के बाद अंत में सन् १८०३ के दिसम्बर मास में देवगाँव में अंग्रेजों और भोंसले की सधि हुई। इसकी शर्तें ये थीं—(१) वर्धा नदी के पश्चिम ओर का बरार प्रान्त व कटक-प्रान्त भोंसला अंग्रेजों को दे। (२) निजाम के ऊपर जो हक है उसको भोंसला छोड़ दे। (३) अन्य रजवाड़ों के साथ झगड़ा खड़ा होने पर जो निर्णय अंग्रेज करें वह भोंसला स्वीकार करे और (४) अंग्रेजों का रेजिडेंट नागपुर में रहे। इसी प्रकार की सधि अर्जुनगाँव में सिंधिया के साथ अंग्रेजों ने की। वह यह थी—(१) गंगा-यमुना के बीच का भूभाग और दक्षिण के कुछ

भूभाग सिंधिया अंग्रेजों को दे। (२) दिल्ली के बादशाह, पेशवा, निजाम और गायकवाड़ पर से अपने हक़ सिंधिया छोड़ दे। (३) अंग्रेज़ो की सम्मति के बिना किसी भी यूरपीय को अपने दरबार में न रक्खे और (४) अंग्रेजो से स्नेहभाव से रहनेवाले रजवाड़ों में उपद्रव न करे। इसी संधि से अंग्रेज़ों की सार्वभौम सत्ता का भारत में आरंभ हुआ। आज तक यहाँ पहले मुग़ल और बाद को मराठे प्रधान बने। उनके बाद अंग्रेजी राज्य की स्थापना भारत मे हुई।

(५) होलकर के साथ युद्ध (सन् १८०४ १८०५)— सिंधिया और भोंसले दोनों ही के चुप हो बैठने पर अंग्रेज़ों ने होलकर का सामना किया। इस युद्ध को ऊपर के युद्ध की तीसरी लड़ाई कहते हैं। सिंधिया के साथ संधि हो जाने पर राजपूत राजा अंग्रेजी छत्रछाया में आ गये थे। लेकिन यशवंत राव होलकर अपने को स्वतंत्र समझकर राजपूताने में लूट मार करके कर वसूल करने लगा। इसे बन्द करने के लिए अंग्रेज़ों के पत्र लिखने पर होलकर ने अंग्रेजों को धमकी और फटकार का पत्र लिखा। वह अपने को स्वतंत्र समझता था। अत उसके साथ युद्ध शुरू करके सेनापति लेक ने सन् १८०४ में होलकर के टोंक-रामपुरा नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। जनरल मान्सन सात हजार फौज लेकर मालवे से गुजरात जा रहा था। उसकी फौज पर हमला करके होलकर ने उसे हरा दिया और अंग्रेजी फौज की फौज काट डाली। बाद को दिल्ली पर होलकर ने धावा किया। लेकिन वहाँ उसकी हार हो गई। बाद को भरतपुर के जाट राजा ने होलकर का साथ दिया। उन दोनो को ही सन् १८०४ के नवम्बर मास में डीग नामक स्थान मे अंग्रेजो ने परास्त किया।

शीघ्र ही फर्रुखाबाद में फिर हार जाने से होलकर वापस आया और लेक ने भरतपुर पर घेरा डाला (१८०५)। इसके बाद भरतपुर के राजा ने अंग्रेजों के साथ संधि की। इतने में ही गवर्नर जनरल वेलेज़ली स्वदेश को वापस चला गया और उसकी जगह पर लार्ड कार्नवालिस आया। मराठों के साथ चलते हुए युद्ध अंग्रेज़ों को नहीं पसंद आये। इसलिए कार्नवालिस ने होलकर के साथ एकदम संधि करके युद्ध बन्द किया। इस युद्ध में हार जाने के दुःख से यशवंतराव होलकर शिथिल हो गया और वहीं वह सन १८११ में मर गया। यशवंतराव बड़ा पराक्रमी और शूर था।

तेरहवाँ अध्याय

महाराष्ट्र-शक्ति का अन्त

मन् १८०८-१८१८

१—तीसरा मराठा-युद्ध
२—भोंसले आर होल्कर के विरुद्ध लड़ाइयाँ
३—पि डारियों मे युद्ध
४—महाराष्ट्र शक्ति का अन्त
५—मराठा शक्ति के डूबने के कारण

(१) तीसरा मराठा-युद्ध (सन् १८१७ १८)—सन् १८०८ मे छत्रपति द्वितीय शाहू मरा और उसका लड़का प्रतापसिंह सतारा की गद्दी पर बैठा। इधर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, मराठे सरदारों की शक्ति तोड़ने के लिए अंग्रेज तैयार थे। लेकिन यूरोप में अंग्रेजों के साथ नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रेंचों का युद्ध छिड़ जाने से अंग्रेज़ लोग विपत्ति में फँस गये थे। इसी लिए तैनाती फौज की पद्धति का जल्दी प्रचार कर भारत में अंग्रेजों के सार्वभौमत्व स्थापित करने का वेलेज़ली द्वारा शुरू किया गया कार्य उस समय पूर्णरूप से सिद्ध न किया जा सका। यह काम गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज ने पूरा किया। पहले के युद्धों में मराठे सरदारों की हार हुई थी, तथापि अंग्रेजी सत्ता को उन्होंने सन्तुष्ट होकर स्वीकार न किया था। गुप्तरूप में वे लोग युद्ध की तैयारी करके अनुकूल अवसर के लिए ठहरे हुए थे। प्रत्यक्ष रूप में बाजीराव पेशवा अंग्रेज़ों से द्वेष रखता था।

वह स्वभाव से ही डरपोक और कपटी था। उसने अपनी इच्छा से अंग्रेजों से सहायता न ली थी। उसका भ्रम था कि गायकवाड़ को जैसी सहायता अंग्रेजों ने की थी उसी प्रकार वे मेरी भी सहायता करेंगे, अथवा पेशवाई के मिल जाने पर वे निकल जाँयगे। लेकिन बसई में लिखी हुई सन्धि ने उसका यह भ्रम दूर कर दिया। यद्यपि बाजीराव राज्य का कारबार करने में बिलकुल अयोग्य था, तथापि उस समय जिस नीति से अंग्रेज लोग काम ले रहे थे उसके सामने चतुर नीतिज्ञ पुरुष भी न टिक सकता था। क्योंकि अपने राष्ट्र में सब ओर से इतनी दुर्बलता आ गई थी कि अंग्रेजों के प्रभाव के सामने उसका टिकना सम्भव न था। अधिक से अधिक इतना ही सम्भव था कि यदि चतुरता से काम लिया जाता तो १०-१५ वर्ष और भी चलता, लेकिन उसका पतन आगे पीछे अवश्यम्भावी था।

बाजीराव और अन्य रजवाड़ों के बीच जो झगड़े खड़े होते, उनका निर्णय करना अंग्रेजों ने प्रारंभ किया। इसमें गायकवाड़ और बाजीराव का वाद बहुत दिनों चला। उसका फैसला करने के लिए गंगाधर शास्त्री पटवर्धन अंग्रेजों की संरक्षकता में पूना आया (सन् १८१६)। उसके जीवन की जिम्मेदारी अंग्रेजों ने ले रक्खी थी। पूना से बाजीराव और गंगाधर शास्त्री पंढरपुर गये। एक दिन वहाँ गङ्गाधर शास्त्री का खून किया गया। त्रिंबकजी डेंगले नाम का एक व्यक्ति बाजीराव का बड़ा कृपा पात्र था। उसने बाजीराव के कहने पर यह हत्या की थी। अंग्रेजों को यह बात विदित होने पर उन्होंने त्रिंबकजी को अपनी अधीनता में करने के लिए बाजीराव से उसे माँगा। बाजीराव ने पहले तो उसका पता ही न दिया, लेकिन अन्त में उसने त्रिंबकजी को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने उसे हवालात में बन्द कर दिया।

वह वहाँ से भाग निकला। इससे पूना के रेज़िडेंट एलफिन्स्टन साहब को बाजीराव को अभियुक्त से मिले रहने का सन्देह हुआ। "त्रिंबकजी को हमारे हवाले करो," यह कहकर एल्फिन्स्टन ने सिंहगढ़ और पुरन्दर के क़िलों पर अधिकार कर लिया और गायकवाड़ के साथ बाजीराव का जो झगड़ा था उसका निपटारा बाजीराव के विरुद्ध किया। इसलिए बाजीराव ने युद्ध की तैयारी करके सिन्धिया, होलकर और भोंसले को भी गुप्त रीति से अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध करने को कहला भेजा। यह देख फिर मराठों के जमाव के इकट्ठा होने के पूर्व ही अंग्रेज़ों ने अति शीघ्र प्रत्येक को घेरकर जीतने का निश्चय किया। बाजीराव ने सन् १८१७ में खिड़की में रेजीडेंसी पर हमला किया। बापू गोखले पेशवा का सेनापति था। लड़ाई में बाजीराव की हार हो जाने से कर्नल स्मिथ ने पूना शहर पर अधिकार कर लिया। अत बाजीराव सतारा के छत्रपति को साथ लेकर वापस आया। १ जनवरी सन् १८१८ के दिन बापूजी गोखले और अंग्रेजों की कोरेगाँव में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में गोखले की हार हुई। बाद को पढरपुर के पास आष्टी के पास और एक लड़ाई हुई। इसमें बापू गोखले मारा गया। अत बाजीराव के भागने पर उत्तर की ओर जाते समय नर्मदा के किनारे उसे अंग्रेज़ी फौजों ने घेर लिया। अन्य कोई उपाय न देख वह कर्नल माल्कम के अधीन हो गया। इसके बाद अंग्रेजो ने उसके राज्य को अंग्रेजी अमलदारी में मिला लिया और बाजीराव को ८ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के समीप बिठूर या ब्रह्मावर्त मे ले जाकर रक्खा। उसी प्रकार सतारा के छत्रपति प्रतापसिंह को सतारा की गद्दी देकर उसको १४ लाख का राज्य दिया।

सारांश यह कि बाजीराव ने बसई की संधि को तोड़कर

अंग्रेजों के साथ जो युद्ध किया इससे उनकी अधीनता में रह कर जो छोटा सा राज्य उसे मिला था वह भी उससे छिन गया। अन्यथा जिस प्रकार सिंधिया और होलकर के राज्य दीख पड़ते हैं, उसी प्रकार एक छोटा सा राज्य पेशवा का भी आज कदाचित् दीख पड़ता।

अंग्रेजों ने त्रिंबक डेंगल को पकड़कर चुनार के किले में कैद कर दिया। वहीं उसकी मृत्यु हुई। पूना के अंग्रेजी राजदूत एलफिन्स्टन ही अंग्रेजों द्वारा जीते हुए प्रदेश का शासन करने के लिए नियुक्त किया गया। उसने पेशवा के दरबार में आनेवाले सरदारों को उनकी पहले से मिली हुई जागीर, वार्षिक वतन और जिनको जो जो पेंशनें मिलती थीं व सब ज्यों की त्यों कायम रक्खीं। इससे पेशवाई टूटने का दुःख किसी को न खला और सम्मान के साथ रहने के लिए उनका प्रबंध हो गया। इनाम, देवस्थान, धर्मादा इत्यादि खर्च जिस तरह पेशवा के समय में दिये जाते थे, उसी प्रकार एलफिन्स्टन ने भी कायम रक्खा और देश में शान्ति तथा सुप्रबन्ध स्थापित किया। इसी से एलफिन्स्टन की कीर्त्ति का महाराष्ट्र लोग गान करते हैं।

(२) भोसले और होलकर के साथ युद्ध (सन् १८१७)—बाजीराव को सहायता देने के लिए नागपुर के भोंसले और होलकर ने उद्योग किया था। होलकर के दरबार में बड़ा कुप्रबन्ध था। यशवंतराव का दत्तक पुत्र मल्हारराव छोटी उम्र का था और फौजवाले बड़े प्रबल हो गये थे। यह फौज बाजीराव की सहायता करने के लिए जिस समय महीदपुर हो कर जा रही थी, उसका सामना कर्नल माल्कम और हिस्लप से हो गया। इस लड़ाई में होलकर की फौज हार गई। इसके बाद होलकर

ने तैनाती फौज स्वीकार कर अंग्रेजों से सुलह कर ली।

नागपुर में भोंसले के दरबार में भी बड़ा गड़बड़ फैल रहा था। सन् १८१५ में परसोजी भोंसले का ख़ून हो गया था और आप्पा साहब भोंसले गद्दी पर बैठा था। उसने अंग्रेजों के साथ मेल करके उनकी तैनाती फौज अपने यहाँ रख ली थी। बाद को बाजीराव के साथ अंग्रेजों का युद्ध छिड़ते ही आपा साहब ने अंग्रेजी छावनी पर हमला किया। सीताबलदी में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में आप्पा साहब हारकर अंग्रेजों की शरण में गया (सन् १८१७)। बाद को उसे इलाहाबाद लाते समय वह राह से ही भाग गया। तब जोधपुर के राजा की मार्फत उसको वार्षिक पेंशन अंगरेज़ों ने दी।

(३) पिंडारी-युद्ध (१८१७-१८)—मराठा शाही के अस्त होने के समय "पिंडारी" नाम के लोग मध्य भारत के भिन्न भिन्न भागों में प्रसिद्ध थे। मुग़ल-बादशाही और मराठाशाही इन दोनों की ही सत्ता नष्ट हो गई और उनके स्थान में अंग्रेज़ी सत्ता स्थापित हुई। किन्तु वह अभी पूर्णरूप से जम न पाई थी कि ऐसे अव्यवस्थित समय में लूट-पाट और दंगे करके पेट भरनेवाले लोगों का एक भिन्न समूह तैयार हो गया। यही लोग पिंडारी कहलाते थे। ये पिंडारी लोग लूट की आशा में चाहे जिसकी नौकरी कर लेते थे। गुड्डी ख़ाँ, गुलाम महम्मद, इमाम बख़्श, हीरा बर्हन, छट्टू, करीम ख़ाँ, अमीर ख़ाँ, वसील महम्मद इत्यादि पिंडारियों के सरदार थे। इनमें अन्तिम चार गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज के समय में वर्तमान थे। अंग्रेजों के जीते हुए देश में तथा उनके मित्रों के राज्यों में पिंडारियों ने बड़ा दंगा करना शुरू किया।

इसलिए इनको दबाना अंग्रेजों को आवश्यक था। गवर्नर जनरल ने पिंडारियों से युद्ध करने के लिए एक बड़ी फौज तैयार की और सभी रजवाड़ों को इस काम में शामिल होने के लिए बुलाया और चारों ओर से उनका पीछा करना शुरू किया। छट्टू हारकर जंगल में भागता हुआ बाघ से मारा गया। वसील महम्मद ने आत्महत्या की। अमीर खाँ और करीम खाँ ने अंग्रेजों की शरण ली। इन दोनों को अंग्रेजों ने जागीरें दीं। इस प्रकार पिंडारियों का नाश हुआ।

(४) मराठाशाही का अन्त—यद्यपि महाराष्ट्रों का राज्य चला गया था, तथापि महाराष्ट्रों की बस्ती सारे देश में फैल गई थी। ये बस्तियाँ आज भी सर्वत्र मिलती हैं। भारत के दूर दूर भागों में मराठी भाषा, मराठी-रवाज और मराठे घराने मिलते हैं। इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से अन्य प्रदेशों में मराठे बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इसके प्रत्यन्तर समझने के लिए अवशिष्ट मराठी राज्यों का थोड़ा परिचय यहाँ पर देना आवश्यक है।

सतारा—सन् १८१८ में मराठा-शक्ति का अन्त हुआ। इसी से यह वर्ष महत्व का है। पूना में एल्फिन्स्टन मालवा में माल्कम, नागपुर में जेकिन्स और सतारा में ग्राउ डफ ने राज्य व्यवस्था की। इससे इन लोगों के नाम इतिहास में प्रसिद्ध हैं। सतारा के छत्रपति प्रतापसिंह ने अपना कार्य भार भले प्रकार चलाया, लेकिन अन्त में उस पर अंग्रेजों को सन्देह हुआ। इसलिए वह सन् १८३९ में पदच्युत किया गया और उसके भाई शाह जी को अंग्रेजों ने गद्दी पर बैठाया। यह सन् १८४८

में मर गया। इसके कोई लड़का न होने के कारण इसका राज्य अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया। तंजौर की जागीर भी इसी तरह अंग्रेजी अमलदारी में मिला ली गई।

दक्षिण के अन्य राज्य—शाहू छत्रपति के समय में ताराबाई ने कोल्हापुर में अपना अलग राज्य स्थापित किया था। वह आज भी वर्त्तमान है। सतारा के अष्टप्रधानों में प्रतिनिधि आमात्य और सचिव इत्यादि के वंशों में थोड़ी बहुत जागीर अब भी चली जाती है। पेशवाओं ने दक्षिण महाराष्ट्र में पटवर्धन की स्थापना की थी। उस घराने की कितनी ही शाखाएँ साँगली, मिरज, कुरुंदवाड़, जमखंडी इत्यादि स्थानों में हैं और उसके अधीन छोटे छोटे राज्य हैं। उसी तरह फलटन के निंबालकर, मुधाने के घोरपड़े, अक्कलकोट के भोंसले, सावंतवाड़ी के सरदेसाई इत्यादि पहले के अनेक मराठे सरदार अपनी अपनी जागीरों में अंग्रेज-सरकार की छत्र छाया में राज्य करते हैं।

उत्तरी महाराष्ट्र-राज्य—नागपुर के भोंसलों का राज्य बहुत लम्बा-चौड़ा था। वह सन् १८५३ में अंग्रेजी अलमदारी में मिला लिया गया। इसके अतिरिक्त मराठों के अन्य बड़े राज्य अर्थात् सिन्धिया, होलकर और गायकवाड़ के तथा धार और देवास में पँवारों के राज्य वर्त्तमान हैं। बाजीराव के पतन के बाद ये राज्य अंग्रेजों की शरण में आ गये। इसी प्रकार झाँसी, सागर, जालौन, गुलसराइ इत्यादि राज्य ब्राह्मणों की अलमदारी में थे, वे सब डलहौजी के शासन-काल में अंग्रेजी अलमदारी में मिला लिये गये।

गायकवाड़ों के मूल-पुरुष **दामाजी** का उदय सेनापति खंडेराव दाभाडे की अधीनता में काम करने से हुआ था। सन् १७३१ में

उमई की लड़ाई में सेनापति त्रिंबकराव दाभाडे मारा गया। अत दाभाडों का गुजरात का काम गायकवाड़ को दिया गया। इसी प्रकार अधिक उद्योग करके इन्होंने गुजरात में अधिक देश जीता। वसई की सुलह होने के पूर्व अँग्रेजो की तैनाती फौज को स्वीकार कर गायकवाड़ों ने अँग्रेजों का सार्वभौमत्व स्वीकार किया। गायकवाडों के घराने में पहले सयाजीराव (सन् १८१९-४७), गणपतराव (सन् १८४७-५६), खण्डेराव (१८५६-७१) और मल्हारराव (सन् १८७१-७५) ने क्रम से राज्य किया। वर्त्तमान सयाजीराव सन् १८७५ में गद्दीनशीन हुए और अपने घराने की प्रतिष्ठा भले प्रकार से रक्षित किये हुए हैं।

गायकवाडों की तरह ही सिन्धिया के घराने में जयाजीराव और उसका लड़का माधवराव बड़ा प्रसिद्ध हुआ। जयाजीराव सिन्धिया, तुकोजीराव होलकर और खण्डेराव गायकवाड़ परस्पर समकालीन थे और अँग्रेजी अलमदारी में प्रधान समझे जाते थे। माधवराव सिन्धिया सन् १९२० में मरा और उसका लड़का जार्ज जयाजीराव गद्दी पर है।

(५) मराठा-शाही के अस्त होने के कारण—सन् १६६४ में शिवाजी ने मराठों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। वह लगभग १५० वर्ष रहकर अस्तप्राय हो गया। इस काल में राज्य व्यवस्था में अनेक फेर फार हुए। प्रारंभ में शिवाजी का इस राज स्थापन में क्या उद्देश था, और इसमें किस प्रकार विकार उत्पन्न हुए, ये बातें ऊपर भली भाँति समझा दी गई हैं। शिवाजी जानता था कि राज्य प्रजा के पालन के लिए होता है, सुख भोग करने और लूटने के लिए नहीं। वह लोगों को सुख देने का एक साधन है। प्रजा का पालन पोषण करना ही राजाओं का मुख्य कर्त्तव्य है। उसने किसी स्वार्थ-साधन के लिए यह राज्य स्थापित नहीं किया

था। सभी के संकटों-को दूर करने के लिए वह सदा तैयार रहता था। जब शिवाजी ऐसा उदार व्यक्ति बना तभी वह महाराष्ट्रों का राज्य स्थापित कर सका। सभाजी और राजाराम के शासन-काल में घोर संकट आ पड़ने पर मराठों ने जब शिवाजी द्वारा दिखाये गये स्वार्थ त्याग के मार्ग का अनुसरण किया तभी उनके संकट दूर हो सके और महाराष्ट्रसत्ता की रक्षा हुई।

परन्तु शाहू के आगमन के बाद उपर्युक्त मार्ग का त्याग किया गया। (१) एकतंत्री शासन का प्रारंभ हुआ। मराठे सरदार सरंजामी पद्धति का अनुसरण कर भिन्न भिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने लगे। उनपर नियंत्रण रखना भी कठिन हो गया। इसी तरह सभी प्रमुख सरदारों का कार्य परम्परानुगत उनके वंशज ही करते गये, इसलिए प्रत्येक सरदार का अपना रास्ता अलग हो गया और साम्राज्य की रक्षा करने की अपेक्षा वे लोग अपने वतन, अपने राज्य, अपनी जागीरों की रक्षा विशेष रूप से करने लगे। इससे साम्राज्य की रक्षा करनेवाला कोई व्यक्ति न रह गया। महाराष्ट्र सरदारों पर नियंत्रण करने वाली केन्द्र-शक्ति राज्य के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण अपना प्रभाव पूर्ववत् बनाये रखने में निर्बल हो गई। मराठे सरदारों ने देश भर में आक्रमण करने की धूम मचा दी। उनमें परस्पर साम्य न होने के कारण प्रत्येक सरदार यथेच्छाचार करने लगा। इससे देश की रैयत को बड़ा कष्ट हुआ। लूटपाट, मारकाट और अग्निकाण्डों की भरमार होने लगी। शिवाजी के समय की सुराज्य-कीर्त्ति लुप्त हो गई। मराठों के हमले शुरू हुए। इन हमलों ने राजपूताने इत्यादि प्रान्तों के लोगों को थर थर कँपा दिया, अर्थात् लोगों ने मराठों के इस प्रकार के अंधाधुन्ध शासन को बिलकुल नापसंद किया।

(२) मराठों के शासन में आर्थिक स्थिति विगड गई। पेशवाओं ने शिवाजी के समय के अपने जहाज़ी बेड़े की उन्नति न करके उल्टा अंग्रेजों की सहायता लेकर उसका नाश कर दिया। अत समुद्रतट का शासन अंग्रेजों के हाथ में चला गया। (३) युद्ध कला और शास्त्र के ज्ञान में वे अंग्रेजों की बराबरी बिल्कुल न कर सकते थे। (४) पास पड़ोस के राज्यों में क्या उद्योग हो रहा है—इसका उन्होंने बिलकुल ही अध्ययन न किया। साराश यह कि यूरपीयों की राज्य-व्यवस्था और प्रबंध मराठों से कहीं अधिक चढ बढ कर थे। इसीसे अंग्रेजों के प्रभाव के सामने मराठों को हार खानी पडी। (५) नारायणराव पेशवा के मारे जाने के बाद से राज्य में अनेक प्रकार का गडबड़ फैल गया। ओर दूसरे बाजीराव ने और भी अधिक अवस्था विगाड़ दी। अपने ही लोगों द्वारा उसने पूना शहर लुटवाया। शासकों के सामने अनेक बार धन का अभाव पूरा करने का मौका आया है, लेकिन स्वय अपनी प्रजा को लूटने का कुकृत्य करने से प्रजा नाराज हो गई। विदेशी लोगों का विश्वास मराठों पर से उठ गया ओर ऐसी लूट से स्वय महाराष्ट्र के रहनेवाले लोग विरुद्ध हो गये। इसी लिए (६) जब न्याय प्रिय अंग्रेजों का शासन देश में शुरू हुआ तब सेठ-साहूकार रैयत सभी आनन्द का अनुभव करने लगे। उन्हें प्रतीत हुआ कि बड़ी विपत्ति से अंग्रेजों ने उनका छुटकारा किया है। एल्फिन्स्टन, माल्कम इत्यादि नीतिज्ञ शासकों के चातुर्य, नीति, लोकहित इत्यादि कार्यों से लोगों में एक प्रकार का सतोप उत्पन्न हो गया और अंग्रेजों के शासन को दृढ करने तथा उनके राज्य को बढाने में लोगों ने तन मन से उनकी सहायता की। सारांश यह कि स्वार्थ से व अनीति से नाश होता है। यह बात ऊपर दिये गये वृत्तात से स्पष्ट है। मराठों का शासन

अस्त क्यों हुआ, यह जानने के लिए पठनपाठन और अध्ययन का अभ्यास ज्यों ज्यों बढ़ेगा, वैसे ही वैसे यह बातें भली भाँति समझ में आवेगी।

---

* प्रथम भाग समाप्त *

Printed by K P Dar at the Allahabad Law Journal Press Allahabad
Published by Sahitya Bhawan Ltd Allahabad

परिशिष्ट

१—भारत के राजवंशों की सूची

प्राचीन—	
शिशुनाग-वंश ई० स० पू०	६४२ ४१३
नंद-वंश ,,	४१३ ३२२
मौर्य-वंश ,,	३२२ १८४
शुंग-वंश ,,	१८४ ७२
आंध्र उपनाम शालिवाहन ई० स०	७२ २२५
गुप्तवंश ई० स०	३२० ६०६
राजा श्रीहर्ष (कन्नौज) ई० स०	६०६ ६४७
धार का परमार-वंश ,,	८०० १३१०
पूर्व-चालुक्य वंश ,,	६००-७४७
राष्ट्रकूट-वंश ,,	७४८ ९७३
उत्तर-चालुक्य वंश ,,	९७३ ११८९
देवगिरि के यादव ,,	११८९ १३१८
अर्वाचीन—	
१—गजनवी-वंश	९६७-११८६
२—गोरी-वंश	११८६ १२०५
३—गुलाम वंश	१२०६-१२९०
४—खिलजी-वंश	१२५० १३२०
५—तुगलक-वंश	१३२०-१४१४
६—सैय्यद-वंश	१४१४ १४५०
७—लोदी वंश	१४५० १५२६
८—मुगल-वंश	१५२६ १८०३

माण्डलिक स्वतन्त्र राज्य—

९—बहमनी राज्य	१३४७-१५२६
१०—अहमदनगर की निजामशाही	१४८९ १६३६
११—बीजापुर की आदिलशाही	१४८९-१६८६
१२—गोलकुण्डा की कुतुबशाही	१५१२ १६८७
१३—जौनपुर का शर्की वंश	१३९९-१४७६
१४—बंगाल के गौड़ सुल्तान	१३४०-१५७६
१५—खानदेश के सुल्तान	१३८८ १६०१
१६—अहमदाबाद के सुल्तान	१४०१-१५७२
१७—काश्मीर के सुल्तान	१३३४-१५८६
१८—मालवा के सुल्तान गोरी	१३८७ १४३५
खिलजी	१४३६ १५१२
१९—विजयनगर के राय संगम का वंश	१३३६-१४९०
नरसिंह का वंश	१४९० १५६५

२—वंशावली १—९

(१) मुगल-बादशाह

१ बाबर (सन् १५२६-१५३०)

२ हुमायूँ (१५३० ४०-५५ ५६) कामरा, हिन्दाल मिर्जा अस्करी

३ अकबर (१५५६ १६०५) हकीम

४ जहाँगीर (१६०५ १६२७) दानियाल मुराद

खुसरू ५ शाहजहाँ (खुर्रम) (१६२७ ५८) पर्वेज शहरयार